Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरेण्यम्

हरबंस लाल सहगल 'साधक'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वरेण्यं

प्रथम भाग

लेखक:
हरबंस लाल सहगल 'साधक'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

90151

ओ३म्

वरेण्यं

प्रथम भाग

लेखक :

हरबंस लाल सहगल 'साधक'

प्रकाशक :

एच. एल. सहगल, चैरिट्रेबल ट्रस्ट

T-1698 मल्का गंज रोड, दिल्ली-7

फोन : २५२०३८१

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक मिलने का पता --

(१) वैदिक भक्ति साधन आश्रम, रोहतक

(२) ए-६३, अशोक विहार फेस-२, दिल्ली-52
फोन : ७४४२८२

(३) सहगल इण्डस्ट्रियल वर्क्स
मलका गंज रोड, दिल्ली-7
फोन : २५२०३८१

२५.३
७८.१

प्रकाशक :

प्रथम संस्करण १२००-बसन्त १९८७

मूल्य : ४०-००

मुद्रक : अमर प्रिंटिंग प्रेस
८/२५ विजय नगर दिल्ली-९

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'समर्पण'

जिनके दर्शाए मार्ग पर चलकर, हो जाता भव-सागर पार।
उनके दिव्य चरणों में अर्पित है, मेरा यह तुच्छ उपहार॥
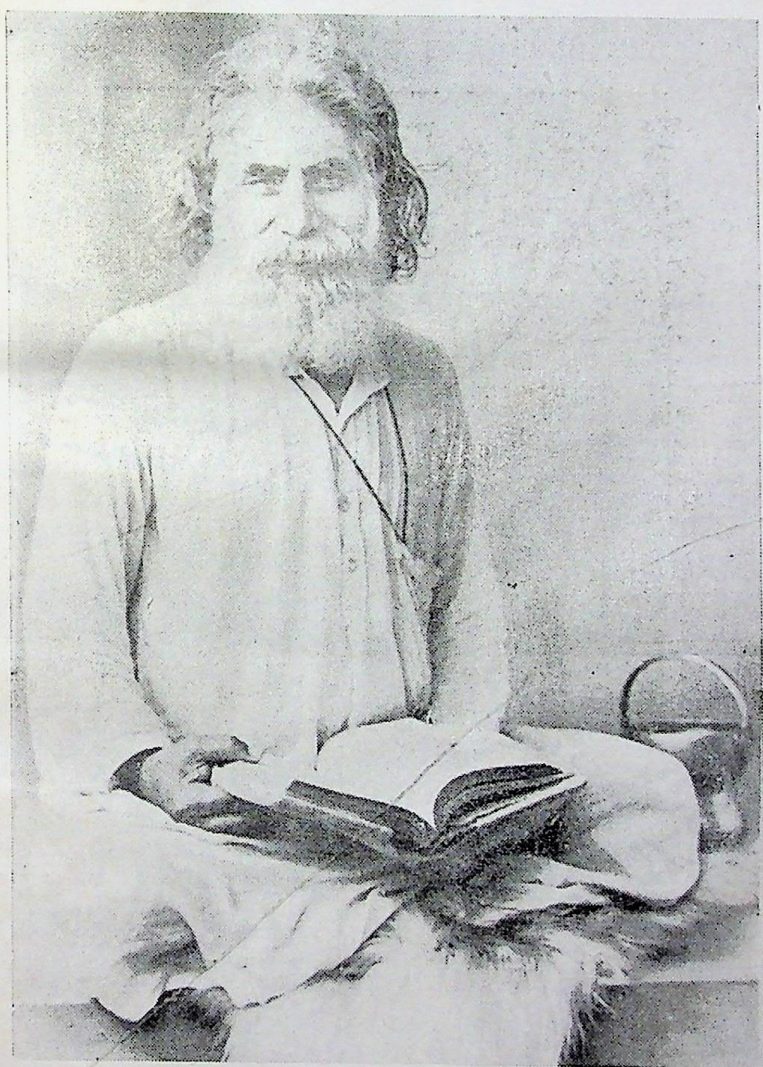
महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

जन्म १८८७ —महाप्रस्थान १९६७

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक—**हरबंस लाल सहगल 'साधक'**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
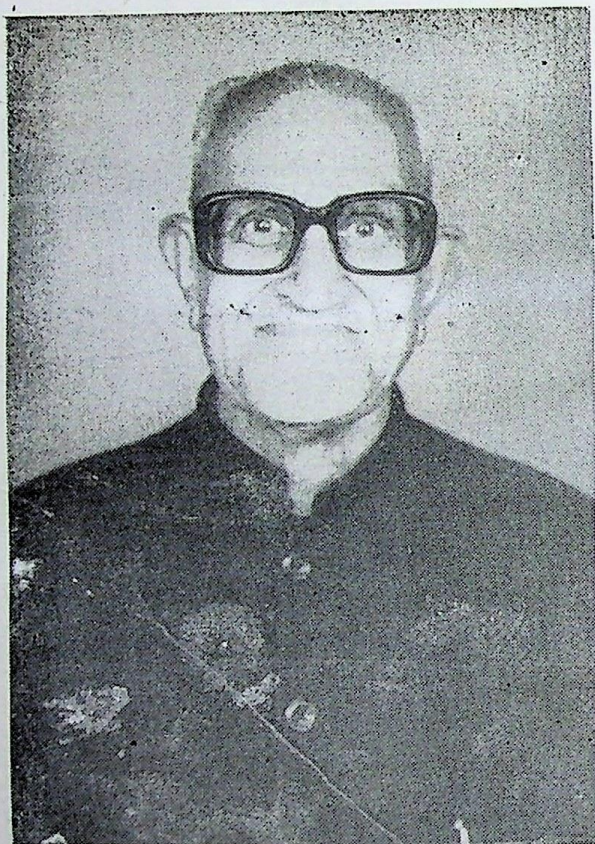
पुस्तक समर्पण के अन्तर्गत

ऋषि-मधुछन्दा, देवता-सोम

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।

इन्द्राय पातवे सुतः ।।

—(ऋ० ९-१-१, य० २६-२५, सा० ४६८-६८९)

अर्थः—

इन्द्राय = जिन निर्मल आत्माओं में

सोम = सोम प्रभु (की स्नेहमयी)

पवस्व = पवित्र करने वाली

धारया = अनवरत धारायें

सुतः = निरन्तर प्रवाहित रहती हैं ।

पातवे = उनका जीवन पात्र

स्वादिष्ठया = अति स्वादिष्ट, मधुर, सुरीले, आकर्षक, सुन्दर गुणों से सुशोभित (और)

मदिष्ठया = शाश्वत आनन्द, आह्लाद और मस्ती से भरपूर रहता है ।

इस मन्त्र में शुद्ध अन्तःकरण से उपासना का फल बताया है कि ऐसे उपासक का जीवन सद्‌गुणों और माधुर्य से भरपूर होता है । अर्थात् जो सदा तृप्त, शान्त, आनन्दित, सन्तोषी, धर्मपरायण और सात्त्विक विचारों से युक्त रहता है ।

महर्षि दयानन्द जी से किसी ने पूछा था कि "शुद्ध अन्तःकरण से सन्ध्या-उपासना होती है या सन्ध्या-उपासना से शुद्ध अन्तःकरण होता है ? उन्होंने कहा कि "ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं ।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं समझता हूँ कि जैसे अच्छे बीज से वृक्ष और वृक्ष से फिर बीज होता है। ऐसे ही यम-नियम सिद्ध करके ईश्वर-प्राणिधान, उपासना में लगना चाहिए, उससे फिर अन्तः-करण और पवित्र हो जाता है।

महाराज प्रभु आश्रित जी महाराज का महान् जीवन इस मन्त्र को चरितार्थ करता था।

अर्थ कविता में—

सोम प्रभु का भक्ति रस, बहता जिनके हृदय-सदन में।
स्वादिष्ठ-मदिष्ठ फल लगते हैं, उनके जीवन-उपवन में॥

विशेष—

ऐसे ही थे प्रभु आश्रित जी, सदाचार की अद्भुत खान।
परम तपस्वी साधक थे वे, अनेक गुणों से ज्योतिर्मान्॥

सरलता, सौम्यता, नम्रता, धीरता का था उनका जीवन तमाम
उनके चरण-कमलों में पहुँचे, मेरा शत-शत नम्र प्रणाम॥

—'साधक'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक सम्बन्धी विचार

वन्दनीय स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती (आचार्य लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित) माडल टाउन दिल्ली, जिन्होंने बहुत उच्च कोटि के अनेक ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें से "अनादि तत्त्व दर्शन" और "तत्तमो असि" की पुस्तकों पर सरकार से पुरस्कार भी मिले हैं (ये राशि उन्होंने आगे दान में दे दी) उनके द्वारा इस पुस्तक के बारे में यह समालोचना प्राप्त हुई है जिसके लिए मैं उनका हृदय से धन्यवाद करता हूं।

"अध्यात्म मार्ग के पथिकों के लिए श्री हरबंस लाल जी सहगल द्वारा रचित 'वरेण्यम्' ग्रन्थ अनेक कारणों से संग्रहणीय है। एक साधक के द्वारा प्रस्तुत रचना की उपयोगिता इसी से स्पष्ट है कि उसमें जो कुछ लिखा है वह पढ़कर नहीं, बल्कि स्वयं अनुभव करके तदनुकूल आचरण के द्वारा सिद्धि प्राप्त करके लिखा है। इस प्रकार इसमें अध्ययन और अनुभव का मणि-कांचन संयोग है।

वस्तुत: यह पुस्तक 'गागर में सागर' की लोकोक्ति को चरितार्थ करने वाली है। जो स्वयं पाया है, उसे दूसरों तक पहुंचाने की भावना से लिखे ग्रन्थ के लिए मैं लेखक को बधाई देता हूं।

—विद्यानन्द सरस्वती

१०-२-८७

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद-मन्त्र-सूची

विषय सूची (शेष)

तालिकाएँ

वेद मंत्र सूची

कृपया पृष्ठ ३७१-७२ पर लिखी अशुद्धियाँ ठीक कर लें ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद-मन्त्र-सूची

१. ईश एवं गुरु-वन्दना

२. गायत्री शब्द-अर्थ

३. गायत्री महामहिमा

४. गायत्री शब्दों की व्याख्या

५. वरेण्यं की साधना

६. उपासना से लाभ

७. अष्टांग योग व्याख्या

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८. पञ्चक्लेश व्याख्या

९. चित्तवृत्तिनिरोध व्याख्या

१०. पञ्च महायज्ञ व्याख्या

११. साधकों के गुण-कर्म-स्वभाव

१२. रहस्यमयो आध्यात्मिक जानकारियाँ

१३. उपासना विधि

१४. वरेण्यम् की सिद्धि

नम्र प्रणाम

भूमिका

पुस्तक समर्पण के अन्तर्गत

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका

१. **ऋषि काण्व, देवता-इन्द्र**

ओ३म् अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ।।

—(ऋ० ८-४५-३ सा० १३४०)

अर्थः—

येषाम् =जिनका

इन्द्रः युवा सखा =सदा युवा, अजर-अमर इन्द्र (परमात्मा) मित्र हो जाता है।

अयुद्ध इव =(वह) युद्ध विद्या न जानने वाला, अनुभव रहित भी।

शूर =महाबली, शूरवीर होकर (शारीरिक, मानसिक, आत्मिक बलयुक्त होकर)

युधावृतं =योद्धाओं को, पराक्रमी शत्रुओं को

सत्वाभिः =निज, आत्मिक बल की सहायता से, सात्विक बलों से।

आजति =परास्त कर लेता है, दूर भगा देता है।

कविता में अर्थः—

अजर-अमर इन्द्र प्रभु, जिनके मित्र बन जाते हैं।
आत्मिक बल वे इतना पाते, महाबली हो जाते हैं ।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध विद्याहीन योद्धाओं से यदि घिर जाते हैं।
वे सात्त्विक साहस पाकर के सबको मार भगाते हैं ।।

२. वेदमाता की घोषणा है कि साधारण व्यक्ति भी जब सच्चा याजक, उपासक हो जाता है तो वह परमात्मा की मैत्री पाकर मानसिक और आत्मिक बल से भरपूर होकर महान् कार्य कर सकता है, जिसकी उसमें वैसी कोई योग्यता नहीं होती। ऐसे वेद में कई मन्त्र हैं, जिनमें भिन्न-भिन्न उदाहरण हैं। इस मन्त्र में यह मिसाल दी गयी है कि युद्ध-विद्या का सर्वथा अनजान भी महायोद्धाओं को परास्त कर सकता है।

मेरी यह 'वरेण्यम्' पुक्तक भी इसी परमात्म-शक्ति का एक उदाहरण है। यद्यपि केवल मेरा मुख परमात्मा की ओर हुआ है और एक दो कदम ही चल पाया हूँ, तो भी परमात्मा ने कितनी शक्ति और प्रेरणा दी कि एक सर्वथा अविद्वान् एवं अयोग्य को पर्याप्त ज्ञान करवाया।

दूसरी बात यह थी क्योंकि यह समर्पण पुस्तक, मैं अत्यन्त श्रद्धा और लगन से अपने प्यारे गुरुवर भक्त शिरोमणि स्वर्गीय महात्मा प्रभु आश्रित जी के निमित्त लिखनी थी। इसलिए भी उनके प्यारे प्रभु ने इसे अपनी अध्यक्षता में सफल सम्पन्न करवा दिया। मैं केवल निमित्त हुआ।

मुझे इस लेखन से इतना अध्यात्मिक लाभ हुआ है कि बयान नहीं कर सकता।

यह पूजनीय महाराज जी की जन्म-शताब्दी के उपलक्ष्य में प्रकाशित हो पायी है, जो १४ फरवरी से २२ फरवरी १९८७ तक रोहतक में बड़ी धूमधाम से मनायी जा रही है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. इस पुस्तक को लिखने का विचार ऐसे बना कि पूजनीय लाला लोकनाथ जी के यज्ञ भवन दिल्ली में मैं २३-१-८५ से २७-१-८५ तक यजुर्वेद के यज्ञ में व्रती था। पूर्णाहुति वाले दिन माननीय भाई लखपति जी ने इस शताब्दि समारोह की सूचना दी। तत्काल मैं भावुकतावश संकल्प कर बैठा कि महाराज जी के प्रति श्रद्धाञ्जलि के रूप में कोई पुस्तक लिखूंगा। बाद में विचार आया कि मैट्रिक तक उर्दू पढ़ा हुआ, न कुछ ज्ञान है, यह कैसे साहस कर सकता हूं? हिन्दी आज तक नहीं लिख सकता, छपी हुई हिन्दी पुस्तक भी मुश्किल से पढ़ता हूं और संस्कृत की जानकारी का तो प्रश्न ही नहीं उठता। प्यारे प्रभु पर भरोसा किया कि पहले व्रतों के समान इस व्रत को भी सफल करेंगे।

४. मैं उन दिनों अर्य समाज-अशोक विहार फेज II, दिल्ली में प्रातः अपना नित्यकर्म किया करता था और यज्ञ के पश्चात् 'वैदिक विनय' के एक मन्त्र की विनय श्री जगदीश शरण सक्सेना जी के श्रीमुख से सुना करता था। एकमात्र यही मेरे साथ दैनिक यज्ञ किया करते थे।

कुछ महीने से मैं पूजनीया बहिन शान्तिदेवी जी अग्निहोत्री के सरस भजनों से कविता-रचना सीख रहा था। ८ अप्रैल, १९८५ को मैंने विचार किया कि प्रातः ३ बजे तक उठकर 'वैदिक विनय' के उस दिन के मन्त्र की टूटी-फूटी कविता बनाकर व्याख्या सहित समाज में सुनाया करूँगा और यदि कुछ सफलता मिली तो उसका ४ महीने (चैत्र से आषाढ़) का पहला भाग इस शुभ अवसर पर वही छपवा दूंगा।

५. नवम्बर १९८५ में मैंने महात्मा आनन्द स्वामी जी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज की पुस्तक '**बोध कथाएँ** में "पार्वती की घोर तपस्या" की कहानी पढ़ी, जिसमें लिखा था कि—

"यह सारी कहानी आत्मा और परमात्मा के प्यार का अलंकार है ।"

तुरन्त विचार आया कि मैं पूजनीया बहिन शान्तिदेवी जी का भी अत्यन्त आभारी हूं । क्यों न एक छोटी सी पुस्तक गायत्री मन्त्र के साथ '**तत्सवितुर्वरेण्यं**' की व्याख्या शिव-पार्वती के रूपक द्वारा लिख कर उन्हें भी समर्पित की जाए । इस सम्बन्ध में कुछ पुस्तकों के स्वाध्याय से शब्द सँजोकर जनवरी, १९८६ में लिख दी ।

उन्हीं दिनों पूजनीय पण्डित लखपति जी मेरी वर्कशाप में पधारे; मैंने उन्हें बताया कि रूपक द्वारा वरेण्यं की व्याख्या की एक पुस्तक लिख रहा हूं, यह नाम कैसा रहेगा? उन्होंने कहा कि इसका नाम 'वरेण्यम्' ही रखो । सो इस पुस्तक का नामकरण-संस्कार उनके मुखारविन्द से हो गया ।

६. ८ अप्रैल, १९८६ को मेरा ७३वाँ जन्मदिन था और हर वर्ष इस रोज़ मैं नित्य कर्म से पूर्व आधा घण्टा गायत्री जप-ध्यान किया करता था । इस दिन ध्यान के पश्चात् मन में आया कि 'गुरु महाराज तो गायत्री-जप, यज्ञ, योग का महत्त्व दर्शाया करते थे । मेरी केवल वेदमन्त्रों के अर्थों की पुस्तक तो उनके उपदेशों के अनुरूप नहीं होगी और उन विषयों पर मेरा अधिकार नहीं । इस अपनी अयोग्यता एवं कठिनाई के कारण मैं बड़ी कशमकश में रहा कि क्या करूँ? आखिर निश्चय कर प्रतिदिन प्रातः १-२ बजे उठकर इस सम्बन्ध में स्वाध्याय और लेखन का कार्य प्रारम्भ कर दिया ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७. **गायत्री-मन्त्र का चमत्कार**—पुस्तक को लिखने में इस मन्त्र का चिन्तन रहता था। मैंने साक्षात् किया कि कैसे परमात्मा ने अपनी अद्‌भुत, विचित्र, सद्‌प्रेरणा से इस को सम्पन्न करने में सफल किया। मैं जब भी लेखन कार्य में जटिलता अनुभव करता तो तद्विषयक निर्देशन मुझे स्वप्न में मिल जाता और जिस विषय सम्बन्धी किसी वेदमन्त्र को उद्‌धृत करने का विचार कर वेद खोलता तो वही मन्त्र उपस्थित हो आता इत्यादि। इसलिए मुझे किसी से भी ज्ञान सम्बन्धी सहयोग लेने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

८. **आभार प्रकट**—मैं माननीय शिव प्रताप जी बुद्धिराजा दिल्ली का हार्दिक अति धन्यवाद करता हूँ। जिनको मैंने "शिव-पार्वती" रूपक उर्दू में दिया और उन्होंने उसे हिन्दी में निःस्वार्थ भाव से लिख दिया और बड़ी खुशी, उत्साह और उदारता से कहा कि वे सारी पुस्तक इसी प्रकार लिख देंगे पर मैंने स्वयं उन्हें कष्ट देना मुनासिब नहीं समझा।

खुशकिस्मती से मुझे शास्त्री श्री जीतराम जी भट्ट अध्यापक महावीर विद्यापीठ शक्तिनगर दिल्ली से संयोग हुआ, जिन्होंने मेरे घर पर आकर अधिक से अधिक समय देकर इस को हिन्दी में लिखा। उनका लेखन सुन्दर है। जिसे लिखाने के बाद सुगमता से पढ़ सका और सुधार बन पाया। उनकी सौम्यता को सराहने के लिए मेरे पास शब्द नहीं। केवल धन्यवाद अर्पित करता हूँ। परमात्मा उन्हें बहुत उन्नत करें! ऐसी मेरी मंगलकामना है।

मेरा फर्ज बनता है कि अपनी बहुत नेक योग्य, बुद्धिमान बहू प्रोमिला सहगल का भी धन्यवाद करूँ, जिसने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय निकाल कर कई बार बहुत श्रद्धा से इस पुस्तक के कुछ भाग लिखने में सहयोग दिया, ऐसी देवियाँ आजकल दुर्लभ हैं।

अमर प्रिंटिंग प्रेस विजय नगर, दिल्ली के मालिक श्री हीरा लाल जी जो नाम के अनुरूप गुण-कर्म-स्वभाव में हीरा ही हैं, जिनके उदार सहयोग से यह पुस्तक छपी, उनका मैं कई प्रकार से आभारी हूँ। एक तो उन्होंने १२०० पुस्तक १००० के Rate पर छाप कर दी। दूसरे जल्दी-जल्दी मैं पाण्डुलिपि लिखवा कर भेजता था और Proof में कुछ काटना, लिखना पड़ता था, जिसे उन्होंने सहन किया। मैं इनका मुग्धकण्ठ से सम्मानपूर्वक धन्यवाद करता हूँ।

६. जैसे पैरा नं० ५ में लिखा है शिव-पार्वती रूपक तीन वेद मन्त्रों सहित 'वरेण्यम्' के दूसरे भाग में प्रकाशित कर दिया है। जो सन्ध्या के उपस्थान आदि मन्त्रों की बहुत सुन्दर, रोचक, ज्ञान, भाव और प्रयोगात्मक व्याख्या हो पायी यह। प्यारे प्रभु की विशेष देन है।

परमात्मा की कृपा से इस पुस्तक को पढ़ कर यदि किसी के हृदय में भक्ति-भाव जाग जायें तो मेरा यह प्रथम प्रयास सफल होगा। इस पुस्तक में ५० वेद मन्त्रों को उद्धृत किया है।

—**हरबंस 'साधक'**

।। ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!! ओ३म् ।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

१ ईश एवं गुरु-वन्दना

नमस्कार उस जगत् पिता को अद्भुत सृष्टि जिसने रचायी।
अग्नि, जल, वायु, आकाश भरी रत्नों से पृथ्वी बनायी ॥ १ ॥

सूरज-चन्द्र-तारामण्डल महासागर और नद-नदियाँ।
पर्वतमाला बहते झरने, वन-उपवन और वनस्पतियाँ ॥ २ ॥

लाख चौरासी योनियों में से श्रेष्ठतम मानव-देह दिलायी।
बेअन्त स्नेह, दया, करूणा, जिसकी कही न जायी ॥ ३ ॥

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सिद्धि को प्रथम वेदों का ज्ञान दिया।
वैदिक धर्म अनुयायी बनाकर प्रभु आश्रित सा गुरु दिया ॥ ४ ॥

भूले-भटके दीन जनों के थे आशा की किरण समान।
ज्योतिपुञ्ज थे ज्ञानदीप थे घोर तमस्ता में दिनभान ॥ ५ ॥

सच्चे भक्त तपस्वी योगी सदाचार की थे वे खान।
आर्य जाति के थे वे गौरव जग-जननी की अमर सन्तान ॥ ६ ॥

यज्ञों के थे परम-प्रचारक गायत्री के अद्भुत गायक।
वेद विद्या के ब्रह्मज्ञान के योगसाधना के साधक ॥ ७ ॥

प्रभु के प्यारे प्रभु-आश्रित थे हमें कल्याण-पथ दिखलाया।
सद्उपदेश और सदाचरण से मोक्ष मार्ग था दर्शाया ॥ ८ ॥

अनेक पुस्तकें रचकर प्रभु ने जीवन-ज्योति जगायी है।
ज्ञान-कर्म-उपासना की सब विद्या बतलायी है ॥ ९ ॥

मेरा था सौभाग्य अति जो प्रयाग-निकेतन के आंगन से।
शरण में उनका जाकर के दूर हटा बुराइयों से ॥ १० ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमस्कार उन दिव्य चरणों में धन्य हमारा यह सौजन्य।
याद में उनकी गद्गद होते जैसे सूरदास को लोचन॥ ११॥

शब्द नहीं कुछ पास मेरे कि मैं उनका गुण-गान करूँ।
उऋण नहीं कभी हो सकता चाहे कितना यत्न करूँ॥ १२॥

चल पाऊँ उन पथ-चिह्नों पर ऐसा ईश वरदान मिले।
यज्ञमय जीवन हो जाये और उपासना में नित ध्यान लगे॥ १३॥

प्रार्थना

देवता इन्द्र—

न घेम् अन्यत् आपपन वज्रिन् अपसो नविष्टौ
तवेदु स्तोमं चिकेत॥

(ऋ० ८.२.१७/साम० उ० ७२०/अथ० २०.१८.२)

हे सर्वसमर्थ वज्रशक्ति के धारन हारे।
आदि करता हूँ सब कर्मों को लेकर तेरा नाम प्यारे॥ १॥

पाने आशीर्वाद आपसे स्तुतियाँ तेरी गाता हूँ।
नहीं जानता और किसी को केवल तुझे रिझाता हूँ॥ २॥

तेरी अनुमति पाकर ही सभी कार्य करता हूँ।
जीत सदा निश्चित होती धारणा ऐसी रखता हूँ॥ ३॥

हे सर्वरम, विश्वरम, हृदयरम, मेरे मन-मन्दिर के उजयारे, आराध्यदेव! आप अरूपों में भी सरूपमान, सीमा में भी असीम, शेष में भी अशेष, अपूर्ण में भी पूर्ण और अशान्ति के मध्य में भी पूर्ण शान्त हैं।

आपकी अपार करुणा, दया, मिहर, कृपा, अनुग्रह, आशीर्वाद और सत्प्रेरणा से मैं अविद्वान्, अयोग्य, अल्पज्ञ इस 'वरेण्यं' पुस्तक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को आपके दिये ज्ञान प्रसाद को पाकर आरम्भ कर रहा हूँ।

आरम्भ किया है इस पुस्तक को लेकर तेरा नाम प्रभु।
विघ्न न आये इसमें कोई ऐसा दें वरदान विभु॥

इसमें मेरा कुछ नहिं अपना ऋषि मुनियों की देन सभो।
अर्पित है प्यारे गुरुवर को एहसान न भूलूँ जिनका कभो॥

हे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, महिमामहान्, ज्योतिर्मान् सर्वप्रेरक पिता आपके सर्वव्यापी सूक्ष्म अदृश्य पवित्र चरण-कमलों में नत-मस्तक हो, दो कर जोड़, हृदय के अन्तराल से अपना श्रद्धा-भक्ति भरा विनीत प्रणाम मानसिक वन्दना द्वारा अर्पित करता हूँ। मेरी इस भेंट को प्रिय ! स्वीकार करो।

महर्षि देव दयानन्दजी महाराज की अमर आत्मा को नमस्कार, जिनकी अपार कृपा कठिन तप, त्याग से लुप्त हुआ सब सत्विद्याओं का पुस्तक-वेद-ज्ञान हमें सुलभ हुआ, जिसके आलोक में ही जीवन-लक्ष्य मोक्ष का पथ प्रशस्त होता है।

परम भक्त, तपस्वी, पूजनीय, गुरुवर महात्मा प्रभु आश्रित जी के स्वर्गीय चरणों में नमस्कार; जिनके उपदेश-अमृत और आशीर्वाद से मैं अध्यात्म-मार्ग का पथिक हुआ।

उस प्रयाग-निकेतन ३१-U, B जवाहर नगर दिल्ली के पवित्र यज्ञ-आँगन को नमस्कार ; जहाँ पूजनीया बहिन शान्ति देवी जी अग्निहोत्री के मनोहर भजन के आकर्षण में तीस वर्ष पूर्व प्रथम बार उस निकेतन की दहलीज़ को लांघा और वन्दनीय महाराज जी के सौम्य दर्शन एवं दिव्य अनुभूतियों से कृतार्थ हुआ। और जहाँ लगभग १० वर्ष मुझे नित्यकर्म करने का सौभाग्य मिला, प्रतिदिन गुरु महाराज जी की पुस्तकों से उनके अद्भुत विचार सुनने को मिलते रहे और कई वेद के यज्ञ हो पाये।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे दिव्यगुण सम्पन्न, नियमों के नियामक, स्थावर-जंगम की आत्मा, आशीर्वाद दें कि वरेण्यं के पाने का मेरा जीवन-लक्ष्य मुझसे कभी ओझल न हो। समर्पण ध्येय की ओर मेरे कदम निरन्तर गतिशील रहें। महामिलन का राजपथ सदा तेरी वेदज्ञान की ज्योति से जगमगाता रहे, ताकि उसके आलोक में चलकर आपका साक्षात् बन आये।

हे अमृतमय, प्रेममय, करुणामय, आनन्दमय, दयामय, दयालुदेव! आप कृपया जीवन के झंझट-झमेलों से मुक्त करके निर्बाध अवस्था और मन की एकाग्रता बख्शो; जिससे मेरे सत्य शिव-संकल्प सिद्ध हों।

आप प्रेरणाएँ दें तो प्रीति बढ़े और भक्ति बन जाये। दिव्यदृष्टि दें तो हर वस्तु में आपकी आभा देखूं और आपका समदर्शन हो।

मेधा दो तो तेरी वेद-ऋचाओं के अनुपम रहस्य दरशा दूं।

प्यारे हृदयेश! हृदय में कविता के उद्‌गार बख्शो तो चारों वेद के मन्त्रों को कविता में कर दूं।

प्राणेश! प्राणों में बल, शक्ति और शारीरिक नीरोगिता प्रदान करो तो इस राष्ट्र में जो सत्य और न्याय सर्वथा लोप हो गया है, इस अन्याय को दूर कर दूं। भय है कि इस कारण दैवी कोप, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प आदि विपत्तियाँ प्राणियों पर न आ जायें, इसके सुधार में कई वर्षों से लेखों और न्याय-याचिकाओं द्वारा जो आन्दोलन कर रखा है, उसको अन्तिम सीमा International अथवा Humane Rights Court तक ले जाकर अपनी अत्यन्त अज्ञानी सरकार को बाध्य कर दूं कि वह न्यायालयों में न्याय देने के लिए उद्यत हो।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे न्यायकारी शक्तिशाली प्रभु ! यह आपका ही कार्य, आपको ही दी हुई शक्ति और प्रेरणा से कर रहा हूं, इसमें मेरा उत्साह बना रहे और सफलता मिले यह वरदान चाहता हूँ।

हे देव ! मेरी यह प्रार्थना विफल न हो, और यह भी स्वीकार करना !

शुद्ध हृदय-दीप में प्रेम का डालूं घृत।
श्रद्धा की अग्नि जलाऊँ विरह की माचिस से नित ॥

॥ ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!! ओ३म ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। ओ३म ।।

२ गायत्री-शब्द-अर्थ

ऋषि विश्वामित्र, देवता-सविता, छन्द-गायत्री

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

य० ३६.३

ऋ० ३.६२.१०।य० ३.३५, २२-९, ३०-२ सा० १४६२ इनमें यह मन्त्र तत्सवितुर्वरेण्यं से आरम्भ होता है। परन्तु इस मन्त्र का जप, ध्यान, अनुष्ठान भूर्भुवः स्वः व्याहृतियों सहित ही करना चाहिए।

ओं=(हे) सर्वरक्षक परमात्मा (आप हमारे)

भूः=प्राणाधार

भुवः=दुःख विनाशक

स्वः=सब सुखों के दाता (हो)

तत्=उन

देवस्य=दिव्य गुणों से युक्त, आनन्द कन्द परम पावन देव

सवितुः=जगत्-उत्पादक, स्थिति तथा प्रलय कर्त्ता, सर्वप्रेरक, सर्वप्रवर्त्तक, सर्वपालक, सर्वरक्षक, सर्वप्रकाशक, सर्वव्यापक, सर्वाधिष्ठाता, सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, सर्वान्तर्यामी, समग्र ऐश्वर्यों के दाता, कर्मफल प्रदाता, न्यायकारी, अखिल ब्रह्माण्ड के सूर्यदेव (आप)

वरेण्यं=मोहक, आकर्षक, वरणीय, पूजनीय, वन्दनीय, दर्शनीय, विचर्षणीय, अर्चनीय, अर्पणीय, समर्पणीय, महिमाशाली, सर्वश्रेष्ठ, ग्रहण करने, उपासना करने और साक्षात् करने (योग्य हैं)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भर्गः = (आपका) पाप विनाशक, विशुद्ध, तेजपुञ्ज, परम देदीप्यमान, नितान्त सुन्दर, अलौकिक, विलक्षण, विचित्र, दिव्य, पवित्र, ज्योतिस्वरूप, हिरण्यमय, आदित्यवर्ण, नूर से परनूर, सुन्दरता से भरपूर, आभा-वान् समस्त क्लेशों को भस्म करने वाला (है)।

धीमहि = (इसे हम) धारणाओं में ध्यान द्वारा धारण करते हैं।

यः = जो धारण किया हुआ तेज,

नः = हमारी,

धियो = वृत्तियों, धारणाओं और बुद्धियों को

प्रचोदयात् = सत्कर्मों में सुप्रेरित करके आपका साक्षात्कार करा दे।

अर्थ-कविता में

१. ओ३म् जो प्राणों से प्यारे दुःख के मोचन हार हो।
सब सुखों के दाता हो आनन्द के भण्डार हो॥

२. शुद्ध हो विज्ञानमय प्रकाश के प्रकाश हो।
हो प्रेरक जगत के और सबके सर्जनहार हो॥

३. दिव्य गुणों से युक्त हो भर्गः विलक्षण रूप है।
ध्यान उसका ही करें जो परम ज्योतिस्वरूप है॥

४. ऋतम्भरा, मेधा, प्रज्ञा हमको भगवन् दीजिए।
साक्षात् जिससे बने, ऐसी प्रेरणा कीजिए॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म ॥

३ गायत्री महामहिमा

१. किसी के गुणों को जानकर ही गुणी के दर्शनों की अभिलाषा उत्पन्न होती है और उसका प्रिय सखा होने की उत्कट इच्छा बनती है इसी प्रकार इस महामन्त्र के प्रति श्रद्धा, प्रेम, प्रीति, भक्ति, अनुराग उत्पन्न करने के लिए वेद, उपनिषदों, प्राचीन शास्त्रों, ब्राह्मण ग्रन्थों, गीता और ऋषि-मुनियों द्वारा गायी गयी इस महिमाशाली दिव्य ऋचा की स्तुतियों का सर्वप्रथम अवलोकन करें, जो सागर में बूंद के समान हैं।

२. यह वेद के अनन्त ज्ञान के अक्षय कोष २०३८० मन्त्रों का सार है। यह उस बाग का अनुपम पुष्प है, जिसे बागे जन्नत, गुलशने बका, ब्रह्म का उद्यान कहते हैं। जिसका स्वामी और माली स्वयं जगत्-पिता परमात्मा है। जिस पर सत्यं, शिवं, सुन्दरं की सदा बहार रहती है। जिसे आबेहयात, सोमरस ने सींचा है।

जिसकी २४ पंखुड़ियों की कलियाँ सदा खिली रहती हैं। २४ शब्दों की यह माला परम पवित्र ओ३म् के धागे में पिरोई गई है। आज सृष्टि सम्वत् १,९७,२९,४९,०८७ वर्ष हो गये यह विचित्र माला अरबों हाथों में आयी, पर इसकी तरोताज़गी, नवीनता, सुन्दरता, अरुणाई, तरुणाई, आकर्षण, महक, चमक, दमक दिवसानुदिवस बढ़ती ही जा रही है। इसके गुणों की सुगन्धि में वह जादू का-सा कमाल है कि उपासक के रोम-रोम को मस्त कर देती है, दृष्टिकोण बदल देती है। प्रकृति का अणु-अणु प्रभु की आभा से जगमगाता प्रतीत होता है। हर दृश्य में जलवागर का अद्भुत जलवा नजर आता है। हर काँटा फूल दीखता है। परमात्म-प्रेरणाएँ मिलने लगती हैं। कल्याण-मार्ग खुलता है। बुद्धि में ज्ञान का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नूर भर जाता है। हृदय में विश्व-प्रेम छलकने लगता है। चित्त की निरोध अवस्था बन आती है। मन में शिव संकल्प और भक्ति भाव उत्पन्न होते हैं। विषय-विकार, राग-द्वेष, क्लेष आदि मिट जाते हैं। अहंकार विलीन हो जाता है। अन्तःकरण पूर्ण रूप से शुद्ध, विकसित, प्रकाशक तथा समाहित हो जाता है और यह अद्भुत माता उपासक को परमात्मा का साक्षात् करा देती है।

३. यद्यपि यह मन्त्र अथर्ववेद में नहीं आया, परन्तु इस मन्त्र की महामहिमा इस वेद में इस प्रकार गायी गयी है—

ओ३म् स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्ति द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥

(इस मन्त्र का ऋषि ब्रह्मा, देवता गायत्री और छन्द जगती है) जो मन्त्र का मुख्य विषय अथवा ध्येय होता है उसे देवता कहा जाता है, इसलिए यह मन्त्र गायत्री को लक्ष्य किये है।

मन्त्रार्थः—

क्रान्तद्रष्टा आदि ऋषि ब्रह्मा उद्घोष करते हैं कि— मैं गायत्री वेदमाता की स्तुति गाता हूँ। जो वरों को देने वाली है, सत्प्रेरणा करती है, द्विज बनाती है, पवित्र करने वाली है, लम्बी नीरोग आयु, स्वास्थ्य, प्राणबल, नेक प्रजा सन्तान, गाय आदि पशु, यशमान, कीर्त्ति, धन-धान्य, ब्रह्मवर्चस्, ओज-तेज ये सात दिव्य ऐश्वर्य और वर देकर यह माता मुझे ब्रह्म लोक मुक्ति धाम में प्रवेश करा प्यारे प्रभु से मिला देती है।

इस मन्त्र से स्पष्ट है कि गायत्री के ध्यान-जप से प्रभु का साक्षात्कार और मुक्तावस्था प्राप्त होती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. **यास्काचार्य** ने इस मन्त्र की निरुक्ति करते हुए लिखा है—**गायतो मुखाः उद्पतति गायत्री** (निरुक्त ७-१२) अर्थात् गायन करते हुए परमेश्वर के मुख से सर्वप्रथम गायत्री मन्त्र निकला, इसलिए इसका नाम गायत्री है। **'गायन्तं त्रायते इति गायत्री'** अर्थात् यह अपने गायक की रक्षा, कल्याण और त्राण कराती है।

५. छान्दोग्य उपनिषद् परिपाठक ३, खण्ड १२ की ९ ऋचाओं के संक्षिप्त अर्थ इस प्रकार हैं—

(१) भगवती गायत्री सारे जगत् का सार है। वह भगवान् को गाती है और उपासक को पाप से बचाती है और उसके प्राणों का त्राण करती है। वेद-सिन्धु के मन्थन से जो अमृत निकला उसका नाम गायत्री है।

(२) पृथ्वी की भाँति भगवती गायत्री सबको पालती है इससे सारा जगत् प्रतिष्ठित है।

(३) निश्चय यह शरीर में प्राण के तुल्य है।

(४) इसका जप, ध्यान और गायन हृदय तथा प्राण से होना चाहिए।

(५) यह चार चरण वाली है।

(६) गायत्री की क्या महिमा गाई जाए वह स्वरूप और सत्ता से अनन्त है।

(७) गायत्री वर्णित सविता ब्रह्म है जिसने सारे जगत् को प्रकाशित किया है।

(८) वह सविता मनुष्य के हृदय आकाश में व्यापक है।

(९) गायत्री की उपासना का फल ज्योतिर्मय अनन्त धाम की प्राप्ति है।

६. **मनु** भगवान् द्वारा **मनुस्मृति** केअध्याय २ श्लोक ७७ से ८२ के अर्थ इस प्रकार हैं—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७७) परमेश्वर प्रजापति ने तीन वेदों से तत् शब्द से आरम्भ होने वाली गायत्री मन्त्र का एक पाद दुआ।

(७८) ओ३म् अक्षर को और भूः भुवः स्वः इन तीन महा-व्याहृतियों सहित गायत्री को प्रातः सायं दोनों समय जपने वाला वेद के स्वाध्याय के पुण्य को प्राप्त होता है।

(७९) जो द्विज एक मास तक बाहर एकान्त स्थान में नदी के किनारे प्रतिदिन एक हजार बार गायत्री मन्त्र का जप करता है, वह बड़े भारी पाप से भी इस प्रकार छूट जाता है जैसे सांप केंचुली से।

(८०) इस गायत्री के जप ध्यान से रहित कर्तव्य कर्म से छूटा हुआ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, श्रेष्ठ लोगों में निन्दा का पात्र बनता है।

(८१) ओ३म् से आरम्भ होने वाली तीन महाव्याहृतियों वाली और तीन पाद वाली गायत्री को वेद का मुख जानना चाहिए।

(८२) जो साधक तीन वर्ष तक प्रतिदिन बिना किसी प्रमाद के गायत्री-मन्त्र का जप करता है, वह वायु के समान आकाश रूप होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है।

७. **अत्रि महार्षि** के **अत्रिस्मृति** में एक श्लोक इस प्रकार है —

"सावित्री यास्तु परं नास्ति पावनं परमं स्मृतम्।"

अर्थात् गायत्री सावित्री से बढ़कर और कोई मन्त्र नहीं। ये परम पवित्र करती है।

८. **शंख ऋषि** ने **शंखस्मृति** में इस मंत्र को इस प्रकार सराहा है—

गायत्री वेद जननी, गायत्री पापनाशिनी।
गायत्री परमं नास्ति दिवि चेह च पावनम्॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् गायत्री की माता वेद है, गायत्री सब पापों का नाश करने वाली है। गायत्री से बढ़कर देवलोक और पृथ्वी पर और कोई पवित्र करने वाली वस्तु नहीं।

९. आगे महामुनि फरमाते हैं—

हस्तत्राण प्रदा देवी पततां नरकार्णवे

अर्थात् जो पतित जन अपने दुष्कर्मों के कारण नरक का दुःख भोगते हैं, उन्हें गायत्री देवी अपने हाथ का सहारा देकर उठाती है।

१०. गायत्री महिमा गाते हुए **महर्षिशंख** पुनः इस श्लोक में कहते हैं कि इस मन्त्र द्वारा यज्ञ करने से कितना लाभ होता है—

हुता देवी विशेषेण सर्वकाम प्रदायिनी।
सर्वपापक्षयकारी वरदा भक्तवत्सला॥

अर्थः—वरों को देने वाली भक्तवत्सला गायत्री मन्त्र की यदि यज्ञ द्वारा आहुति दी जाए, वह माता सब पापों को क्षीण करके होता की समस्त शुभकामनाओं को पूरा करती है।

११. सामवेदीय श्वेतरोपनिषद के ऋषि ने लिखा है कि गायत्री के उपासक की प्रज्ञा प्रतिष्ठित होती है और वह पूर्णकाम होकर कुण्डलिनी को जागृत कर देता है तथा मृत्यु को जीत लेता है।

१२. **सत्पथब्राह्मण** (१४-८-१५-७) गायत्री विषय में गाता है '**तस्य प्राणान्त्रायते**' गायत्री प्राणों की रक्षा करती है और तार देती है।

१३. देवी भागवत के खण्ड ११, अध्याय १६ का १५ श्लोक है—

सर्ववेद सारभूता गायत्र्यास्तु समर्चना।
ब्रह्मादयोऽपि सान्ध्यायां तां ध्यायन्ति जपन्ति च॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् गायत्री की आराधना सब देवों का सार रूप है। सन्ध्याकाल में ब्रह्मादिक भी जप और ध्यान करते हैं।

१४. इसी भागवत के १२ स्कन्ध, ८ अध्याय के ८९, ९०, ९१ श्लोक इस प्रकार हैं—

"गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता।
यया विना त्वधः पातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा॥ ८९॥

तावता कृतकृत्यत्वं नान्यापेक्षा द्विजस्य हि।
गायत्रीमात्रनिष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात्॥ ९०॥

कुर्य्यादन्यन्न वा कुर्य्यादिति प्राह मनुः स्वयम्।
विहाय तां तु गायत्रीं विष्णुपास्ति परायणः"॥ ९१॥

अर्थात्—गायत्री उपासना तो सनातन है, सब वेदों में इसी का प्रतिपादन किया है। जिसके बिना ब्राह्मण का सर्वथा अधःपात हो जाता है। अन्य उपासना और दीक्षा की आवश्यकता नहीं। गायत्री उपासक, द्विज निश्चय मोक्ष को प्राप्त होता है। अन्य उपासना करे या न करे, ऐसा स्वयं मनु भगवान् ने कहा है।

१५. महर्षि देव दयानन्द जी ने **पञ्चमहायज्ञ विधि** में गायत्री मन्त्र को गुरु मन्त्र और सर्वोत्कृष्ट लिखा है। पूना में चौदहवाँ व्याख्यान देते हुए कहा कि 'इस मन्त्र द्वारा सारे विश्व को उत्पन्न करने वाले परमात्मा का जो सर्वोत्तम तेज है उसका ध्यान करने से बुद्धि की मलिनता दूर हो जाती है तथा धर्माचरण में श्रद्धा, प्रीति और योग्यता उत्पन्न होती है।'

१६. स्वर्गीय गुरुवर महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज ने 'गायत्री कुसुमांजलि' में पृष्ठ २१-२२ में कहा है—

"पूज्य महात्मा हंसराज महाराज ने लिखा है कि इस मन्त्र के शब्द सम्मोहक हैं, मैंने तो सचमुच ही यह अनुभव किया है और अपने ५६ वर्ष के निरन्तर जप और मनन के आधार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर कहता हूँ कि सम्मोहक व्यक्ति तो अपनी आन्तरिक मानसिक शक्ति का प्रभाव क्षण भर के लिए ही दूसरों पर डाल सकता है, परन्तु यह मन्त्र तो स्थायी रूप से दूसरों पर और अपने पर जादू का प्रभाव कर देता है"।

"गायत्री निःसन्देह तीर्थ है, क्योंकि यह आत्मा का कल्याण करती है। इसके 'ग' से गंगा, 'य' से यमुना और 'त्र' से त्रिवेणी बनती है।"

[पूज्य महाराज जी की "**गायत्री रहस्य**" पुस्तक इस मन्त्र पर अद्‌भुत रचना है पाठक उसे अवश्य पढ़ें।]

१७. (क) यह प्रसिद्ध है कि गायत्री साधना द्वारा महर्षि वशिष्ठ ब्रह्म-तेज बल से युक्त हुए और इस ब्रह्म दण्ड से उन्होंने आसुरी बलों को पराजित किया एवं अनिष्ट के अकर्मण्यों से सुरक्षित रहे।

(ख) पाणिनि महामुनि ने इस मन्त्र के जप से महा विद्वान् और बुद्धिमान् होकर अष्टाध्यायी रची; जो वेदों के अर्थों की कुञ्जी है।

(ग) गायत्री साधना से महर्षि विश्वामित्र ने ब्रह्मत्व को प्राप्त किया। प्रज्ञा चक्षु स्वामी विरजानन्द जी और महाराज गंगेश्वरानन्द जी ने गंगा के तट पर गायत्री मन्त्र के जप-ध्यान से बुद्धि की परिकाष्ठा को प्राप्त किया, जिससे उन्होंने वेद ऋचाओं को कंठस्थ किया और उनके रहस्यों को जाना। उनका कथन है कि गायत्री सभी दिव्य शक्तियों से ओत-प्रोत है, यह ब्रह्मनाद है, यह अन्तःकरण को शुद्ध, बुद्धि को मेधावी और आत्मा को प्रकाशित करती है, इसकी साधना से अनेक ऋषि-मुनि, निर्मल निष्पाप और वीतराग होकर जीवनमुक्त हुए। इससे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारों पदार्थ सुलभ होते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८. गायत्री गुरु मन्त्र के नाम से प्रसिद्ध है, कारण उपनयन संस्कार के समय अथवा ज्ञान की दृष्टि देते समय गुरु अपने शिष्य को गायत्री मन्त्र देता है।

गायत्री को जीवन का पथ प्रदर्शक बनाने वाला जीव ब्रह्म को प्राप्त होता है। जैसे वाणी मन के भाव प्रकट करती है, वैसे गायत्री ब्रह्म की अनुवादिनी है।

१९. भक्ति के तीन अङ्ग हैं स्तुति, उपासना प्रार्थना। जो इस मन्त्र में विद्यमान हैं।

ओ३म् से वरेण्यं तक स्तुति भाग है।
भर्गो देवस्य धीमहि उपासना पद है।
धियो यो नः प्रचोदयात् प्रार्थना है।

२०. जैसे युगों में सत्युग श्रेष्ठ है
आयन में उत्तरायण श्रेष्ठ है
पक्षों में शुक्ल पक्ष श्रेष्ठ है
दिन-रात में उषा वेला श्रेष्ठ है
ज्योतियों में सूर्य-ज्योतिश्रेष्ठ है
शरीर में प्राण श्रेष्ठ हैं
भगवान् कृष्ण के अनुसार—
नक्षत्रों में चन्द्रमा श्रेष्ठ है (गी० १०-२१)
वेदों में सामवेद श्रेष्ठ है (गी० १०-२२)
देवों में इन्द्र श्रेष्ठ है (" ")
इन्द्रियों में मन श्रेष्ठ है (" ")
जलाशयों में समुद्र श्रेष्ठ है (गी० १०-२४)
सब वृक्षों में पीपल श्रेष्ठ है (गी० १०-२६)
पशुओं में कामधेनु श्रेष्ठ है (गी० १०-२८)
पक्षियों में गरुड़ श्रेष्ठ है (गी० १०-३०)
नदियों में गङ्गा श्रेष्ठ है (गी० १०-३१)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्याओं में ब्रह्मविद्या श्रेष्ठ है (गी० १०-३२)
अक्षरों में ओंकार श्रेष्ठ है (गी० १०-३३)
ऋतुओं में बसन्त ऋतु श्रेष्ठ है (,,)
महीनों में मार्गशीर्ष श्रेष्ठ है (,,)
(ऐसे ही) छन्दों में गायत्री छन्द सर्वश्रेष्ठ है। (गी० १०-३५)

२१. समस्त दुष्कर्मों का त्याग और शुभ कर्म करते हुए परमात्मा के स्वरूप और उसके गुणों की प्रीति में खो कर भावना सहित अर्थों का विचार करते हुए जो इस महामन्त्र का विधिपूर्वक जप, ध्यान, अनुष्ठान रूप में करते हैं, उन्हें ५ यम और ५ नियमों की सिद्धि होती है तथा ५ विकारों से निवृत्ति, ५ क्लेशों का दमन तथा ५ ईष्णाओं से छुटकारा और ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है। जिसे इस प्रकार स्पष्ट कर दिया है—

२२. (तालिका अगले पृष्ठ पर देखें)

२३. इस चार्ट की व्याख्या इस प्रकार है—

ओ३म् के जप से ईश्वर का पुनः-पुनः ध्यान रहता है। समर्पण होने लगता है। यही **ईश्वर प्रणिधान** है। तब साधक का योग-क्षेम स्वयं भगवान् के अपने अमृतमय हाथों में हो जाता है। अप्राप्ति की प्राप्ति योग है और प्राप्त की रक्षा को योग-क्षेम कहते हैं। अर्थात् परमात्मा जो अप्राप्त है उसकी प्राप्ति कराते हैं। जो प्राप्त है उसकी रक्षा करते हैं। जिससे संग्रह की इच्छा ही नहीं रहती, जो **अपरिग्रह** की सिद्धि है।

ओ३म् के अनन्त अक्षय ज्ञान-बल समर्थ पराक्रम को जान कर उपासक का **अहङ्कार** उसके नयनों के प्रेम भरे जल में डूब जाता है और वह नम्रता के आभूषण से अलंकृत हो जाता है, इसे तब **लोकेषणा** की चाह ही नहीं रहती।

ओ३म् अव् धातु से बना है, जिसका अर्थ है जो सबकी रक्षा करता है। ओइम् का उपासक रक्षक की रक्षा में रहता है,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२. गायत्री मन्त्र

गायत्री मन्त्र	नियम	यम	विकार	क्लेश	ईषणाएँ
ओ३म्	ईश्वर प्राणिधान	अपरिग्रह	अहंकार	अभ्नवेश	लोकेषणा
भूर्भुवः स्वः	शौच	सत्य	मोह	असमता	पुत्रेषणा
तत्सवितुर्वरेण्यं	सन्तोष	अस्तेय	लोभ	राग	वित्तेषणा
भर्गो देवस्य धीमहि	स्वाध्याय	अहिंसा	क्रोध	अविद्या	
धियो यो नः प्रचोदयात्	तप	ब्रह्मचर्य	काम	द्वेष	

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा उसे विश्वास होता है। तब मृत्यु का भय कैसे ? सो **अभिनवेश** मिट जाता है बल्कि सारी ईषणायें मिट जाती हैं।

प्रेम गली अति साँकरी इसमें दो न समाय।
प्रभु-ईषणा जाग गयी तो और ईषणा जाय ।।

भूर्भुवः स्वः

२४. ये महाव्याहृतियाँ ओ३म् की व्याख्या है, सत् चित् आनन्द इनका अर्थ है।

सच्चिदानन्द शुद्ध स्वरूप का जब ध्यान चिन्तन बन आता है तो परमात्मा के दिव्य गुण, कर्म और स्वभाव साधक में आने लगते हैं और प्रकृति के तम एवं रज गुण विलीन होने लगते हैं। यथा चिन्तन तथा विचार। विचारों की शुद्धि हो जाने से उपासक के अन्तः और बाह्यकरण पवित्र और निर्मल हो जाते हैं, इसी का नाम **शौच** है। परमात्मा का गुण सत् है। निश्चय ही उपासक जैसा जानता और विचारता है, वैसा कहता और करता है। यही **सत्य** का आचरण है। सत्य आचरण के आलोक में उसका अज्ञान दूर होता है; जिससे उसे स्पष्ट जान पड़ता है कि शरीर इन्द्रियों और अन्तःकरण से वह जीवात्मा पृथक् है। द्रष्टा और दर्शन शक्ति अलग-अलग हैं, एक चेतन है, दूसरा जड़ है। वह जानता है कि सुखी-दुःखी, मोटा-पतला, बलवान्-दुर्बल होना ये शरीर के गुण हैं, आत्मा के नहीं। यही **असमता** क्लेश की निवृत्ति है।

भूर्भुवः स्वः अर्थात् प्राणों से प्यारे सर्व दुःख हर्ता, सब सुखों के दाता के उपकारों का चिन्तन-ध्यान जब बन जाता है तो उसका संसारिक **मोह** प्रभु-प्रेम में बदलना निश्चित है। यही मोह पर विजय पाना है। इसी से **पुत्रेषणा** विलीन हो जाती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्सवितुर्वरेण्यं

२५. भक्ति-भाव के उदय में इस पद के आह्वान से देव सविता (समग्र ऐश्वर्यों का दाता) अपनी दिव्य विभूतियों से उपासक को दिव्य देनों से तृप्त व भरपूर कर देता है। उसे यह भी ज्ञान होता है कि प्रारब्ध निश्चित है उसे कोई नहीं घटा सकता तो **लोभ** नहीं रहता। उसमें **संतोष** आ जाता है; जिससे चोरी की भावना ही नहीं रहती। यही **अस्तेय** की सिद्धि है।

सुख भोगने के पीछे पुनः सुख भोगने की इच्छा और तृष्णा का होना राग कहलाता है। लोभ जाने और सन्तोष आने पर मानव तृष्णा-रहित हो जाता है। जब भौतिक सुखों की लालसा ही नहीं रहती तो कोई वासना और संस्कार नहीं बनता, तब **राग** कहाँ से उत्पन्न होगा।

सन्तोषी को अपने भोगों और प्रभु के न्याय पर अटल अटूट विश्वास होता है; इसलिए वह सत्य और न्याय के आचरण से धन कमाएगा और **वित्तेषणा** से रहित होता जाएगा। वह भौतिक धनी होने की अपेक्षा अध्यात्म ऐश्वर्यों का स्वामी बनना चाहता है और उसकी मान्यता होती है—

बिन धन कौन धनपति कोषी।
आशा रहित महा सन्तोषी॥

भर्गो देवस्य धीमहि

२६. देव सविता के वरेण्यं भर्गः स्वरूप का आत्मीय ध्यान करते-करते उपासक समाहित और समादिष्ट हो जाता है और उसके मन में वेद ज्ञान स्वतः उत्पन्न हो जाता है **यस्मिन्नृचः**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामयजू[१]—य० ३४-५) और **स्वाध्याय** का फल प्राप्त होता है। तथा आत्मनिरीक्षण के अभ्यास से विवेक ख्याति उत्पन्न होती है एवं उसमें **अहिंसा** के गुण आ जाते हैं जिससे हिंसा-वृत्ति को त्याग देता है, फलस्वरूप उसमें **क्रोध** भी नहीं रहता।

भय बिन प्रीति नहीं।

वेद के चेतावनी मन्त्र सावधान करते हैं कि हिंसक आगामी जन्म में मनुष्य जाति से वंचित हो जाता है—

(**यश्चकार न शशाक**[२] अ० ४-१८-६)

यह ज्ञान उसे हिंसा के प्रति वैराग्य ला देता है और अभ्यासी विवेक की सुबह में जाग कर अज्ञान-अन्धकार को मिटा **अविद्या** को निर्मूल करने में समर्थ हो जाता है।

धियो यो नः प्रचोदयात्

२७. भर्गः के निरन्तर ध्यान के अभ्यास से उपासक का अन्तःकरण शुद्ध, पवित्र और प्रकाशक हो जाता है। वह जान पाता है कि ऋतम्भरा सुमेधा बुद्धि की याचना से बढ़ कर और कोई प्रभु से प्रार्थना नहीं हो सकती। उस महादेन को पाकर मेधावी का दृष्टिकोण बदल जाता है वह विषयों के दोषों को जान लेता है कि **कामवासना** सब विकारों की जननी है। **ब्रह्मचर्य** के **तप** से उस पर विजय पा लेता है—

---

१. यजुर्वेद अध्याय ३४ के पहले ६ 'शिव संकल्प मंत्र' 'मनवशीकरण साधन' के अन्तर्गत लिखकर इनके अर्थ कविता में कर लिए हैं।

२. यह मन्त्र और इसके अर्थ 'योग के अंग'—'अहिंसा' की व्याख्या में पढ़ लें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

12.2
62.1

ब्रह्मचर्येण तपसा[1] —अ० ११-५-१९)

रोग शोक, दुःख-सन्ताप से बचता है। दुःख के अभाव हो जाने पर जब साधक को कहीं से दुःख नहीं मिलता तो द्वेष किससे होगा, निश्चय वह इस क्लेश से बच जाएगा।

२८. गायत्री माता के अनेक गुण होने से ही यह अनेक नामों से प्रसिद्ध है।

अनन्त महिमाशाली होने के कारण स्वयं वेद भगवान् ने इसे वेदमाता कहा है।

90.51

(ओ३म् स्तुता मया वरदा वेदमाता—अथ० १९-७१-१)

इस मन्त्र का देवता सविता होने से इसका नाम सावित्री हुआ। शृङ्गि ऋषि ने कहा कि गायत्री मोक्ष-द्वार की चाबी है। महादेव योगेश्वर शिवजी महाराज ने पार्वती से कहा कि गायत्री कामधेनु है, कल्पवृक्ष है। शङ्कराचार्य जी महाराज ने कहा कि गायत्री माता है एवं ओ३म् पिता है और ऋषि-मुनियों ने कहा कि यह मोक्षधाम का पासपोर्ट है, ब्रह्मास्त्र, ब्रह्म-कवच, मल-मन्त्र, वेद-मुख, गुरु-मन्त्र, महामन्त्र है।

यह वरों को देने वाली होने से इसे वरदायिनी, अन्तःकरण को पवित्र करने वाली होने से इसे पतित-पावनी, पापों से बचाती है, इसलिए पापनाशिनी, दुःख दूर करने वाली होने से कष्ट निवारिणी, संकटमोचनी, त्रिलोकतारणी, मुक्तिदायिनी इत्यादि अनेक नामों से सम्मानित किया गया है।

---

१. इस मन्त्र की व्याख्या 'योग के अंग—ब्रह्मचर्य' के अन्तर्गत की गई है। गायत्री मन्त्र के इन अंगों की विस्तृत जानकारी 'गायत्री शब्दों की व्याख्या' में कृपया पढ़कर गायत्री मन्त्र की तालिका (चार्ट) में उन गुणों की उपलब्धि को और स्पष्ट जान लें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२९. यज्ञोपवीत धारण करते समय और वेद के आरम्भ से पूर्व आचार्य इसी पवित्र महामन्त्र का उच्चारण कराते हैं।

सन्ध्या के आदि में और मध्य में भी इस मन्त्र को पढ़ा जाता है।

(क) इस मन्त्र के वाचक जप का नाम गायत्री है। इससे वाणी तेजस्वी और प्रभावशाली हो जाती है और यम-नियम सिद्ध हो जाते हैं।

(ख) इसके मानसिक जप का नाम सावित्री है। इससे काम, क्रोध आदि मल अथवा अवर्ण और विक्षेप दूर होते हैं, और प्रत्याहार की सिद्धि होती है।

(ग) ध्यान-जप का नाम सरस्वती है। इससे धारण, ध्यान, समाधि की सिद्धि होती है।

३०. गायत्री उपासना महामहिमा का संक्षिप्त में वर्णन किया। सार यह निकला कि—

गायत्री के अनुष्ठान से मिटें सकल सन्ताप।
प्रेम मगन हो भक्त जब जपें निरन्तर आप॥

वरेण्यं को सिद्धि हो आवागमन मिट जाय।
इस मन्त्र की कीर्ति मुझसे कही न जाय॥

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!! ओ३म्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

४. गायत्री-शब्दों की व्याख्या

इस पवित्र महामन्त्र का प्रत्येक शब्द अनेक अर्थों का वाचक, रहस्यमय, महत्वपूर्ण, यौगिक और ब्रह्ममय है। अब इनकी व्याख्या की जाती है—

ओ३म्

१. **योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म।**

—(यजु० ४०-१७)

यजुर्वेद की अन्तिम पंक्ति से यह ज्ञात है कि सब गुणों से सम्पन्न, आकाशवत्, व्यापक, ईश्वर का निज नाम ओ३म् है।

२. **ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतँ् स्मर।**

—(य० ४०-१५)

मन्त्र के इस भाग में कहा गया है कि 'हे कर्मशील, प्रज्ञावान् जीव ! तू अजर-अमर है और तेरा शरीर भस्म होने वाला है। तू ओ३म् नाम से ईश्वर का स्मरण कर, जप कर, अपनी सामर्थ्य को जान, अपने को पहचान और अपने पिछले किए कर्मों को याद कर। इसी में तेरा कल्याण है।

३. **तस्य वाचकः प्रणवः**

—(यो० द०-१-२७)

उस ईश्वर का बोधक शब्द ओ३म् है, अर्थात् ओ३म् शब्द से ईश्वर का बोध होता है। शब्द और अर्थ का सम्बन्ध नित्य होता है। इसलिए ईश्वर और ओ३म् का वाच्य-वाचक सम्बन्ध भी नित्य है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. छान्दोग्योपनिषद प्रपाठक-१ खण्ड-१

(१) इसकी प्रथम तीन ऋचाओं का अर्थ इस प्रकार है—इस उपनिषद के आरम्भ में ही कहा है कि एक ओ३म् ही उपास्य देव उद्गीथ (गायन-योग्य) है और इसी की उपासना करनी चाहिए।

(२) पाँच महाभूतों का सार पृथ्वी है, पृथ्वी का सार जल है। जल का सार अन्नादि औषधियाँ हैं। औषधियों का सार पुरुष है—मनुष्यदेह है। पुरुष का सार उसकी वाणी है। वाणी का सार ऋग् भगवान् की स्तुति है। ऋग् का सार साम है—स्तुति को स्वर में गाना है। साम का सार ईश्वर का नाम है और सब सारों का सार ओ३म् है।

(३) यह जो आठवाँ सार भगवान् का नाम है, यह सारों का सार परम सार है, परम आनन्द है, परम धाम है, परम उत्कृष्ट स्थान है और मनुष्य-जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त कराता है।

अन्य सब नाम परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभावों के अनुसार गौण हैं।

५. प्रश्नोपनिषद

प्रश्नोपनिषद में पाँचवें प्रश्न के उत्तर में महर्षि पिप्पलाद ने सत्काम को बताया 'जो ३ मात्रा वाले ओ३म् का मनसा, वाचा और भाव से मग्न होकर उस परम पुरुष का स्मरण चिन्तन और ध्यान करे, वह तेजस्वी हो कर सूर्यलोक को प्राप्त करता है और जैसे साँप केंचुली से पृथक् हो जाता है; निश्चय ही वैसे उपासक पाप से मुक्त हो जाता है।'

ओ३म् के मानसिक जप से आत्मशक्ति बलवान् और प्रभावशाली हो जाती है, जिससे सब विकार, राग, द्वेष आदि दूर हो जाते हैं।

६. ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म……

(गी० ८-१३)

इस सारे श्लोक का अर्थ है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म् एक अक्षर ब्रह्म है, मेरी तरह जो इसका जप, चिन्तन, स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है, वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है।

७. ......गिरामस्म्येकमक्षरम्, यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि......
(गी० १०-२५)

अर्थात् ओ३म् का जप सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है।

८. ओ३म् तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥
(गी० १७-२३)

ओ३म् तत्सत् ये तीनों अक्षर ब्रह्म तत्त्व के वाचक हैं, इससे परमात्मा के नाम का निर्देश होता है। सृष्टि के आदि काल में उसी से ब्राह्मण[1], वेद और यज्ञ प्रकट हुए।

९. तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥
(गी० १७-२४)

इसलिए उस ब्रह्म के प्रति कृतज्ञता प्रकाशन अर्थ वेदों के कथन करने वाले ब्रह्मवादी ईश्वर की प्राप्ति के लिए सदा ओ३म् के उच्चारण से ही यज्ञ, दान, तप आदि क्रियायें आरम्भ करते हैं।

१०. पञ्चमहायज्ञविधि

पञ्चमहायज्ञविधि में गायत्री मन्त्र के अर्थ करते हुए महर्षि दयानन्द ने ओ३म् की व्याख्या काफी विस्तृत की है, वहाँ से पढ़

१. भगवान् श्री कृष्ण महाराज इस श्लोक में फरमाते हैं कि सृष्टि के आरम्भ में जो पुरुष उत्पन्न हुए; वे ब्राह्मण थे। अर्थात् उनमें तप, त्याग और बेद-विद्या थी, क्योंकि इन गुणों के होने से ब्राह्मण कहते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लें। उसका मुख्य भाग इस प्रकार है—'जो अकार, उकार, मकार के योग से ओ३म् यह अक्षर सिद्ध है। सो यह परमेश्वर के सब नामों में उत्तम नाम है। जिसमें सब नामों के अर्थ आ जाते हैं। जैसे पिता-पुत्र का प्रेम-सम्बन्ध है, वैसे ही ओङ्कार के साथ परमात्मा का सम्बन्ध है। इस एक नाम से ईश्वर के सब नामों का बोध होता है।"

भूर्भुवः स्वः

१. महर्षि दयानन्द द्वारा अर्थ—"(भूरिति वैप्राणाः) जो सब जगत् के जीने का हेतु और प्राण से भी प्रिय है, इससे परमेश्वर का नाम भूः है।"

"(भुवरित्यपानः) जो मुक्ति की इच्छा करने वालों भक्तों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःखों से अलग करके सर्वदा सुख से रखता है, इसलिए परमेश्वर का नाम भुवः है।"

"(स्वरितिव्यानः) जो सब जगत् में व्यापक होकर सबको नियम में रखता और सबका ठहरने का स्थान तथा सुख-स्वरूप है, इससे परमेश्वर का नाम स्वः है।"

२. ये तीन महाव्याहृतियाँ ओ३म् का परिचय देती हैं, इनसे परमात्मा के गुणों का बोध होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा गया है कि भूः ऋग्वेद का सार है, भुवः यजुर्वेद का सार है, स्वः सामवेद का सार है।

३. भूः का अर्थ है—भूसत्तायाम्-परमात्मा स्वयं सत्ता वाला है, अर्थात् तीनों लोकों और तीनों कालों में उसका अस्तित्व है, वह सदा विद्यमान है, सत् स्वरूप है।

भुवः का अभिप्राय है कि परमात्मा सृष्टि की रचना करने वाला है, चित स्वरूप है, स्वः का अर्थ है—परमात्मा आनन्द-स्वरूप है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् ओ३म् सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है।

४. ब्राह्मण ग्रन्थों में 'भूर्भुवः स्वः' से अस्ति, भाति और प्रीति परमात्मा के तीन रूप दर्शाये हैं।

अस्ति का अर्थ है कोई सत्ता है। भाति का अर्थ है कि वह सत्ता अनादि है, प्रीति का अर्थ है, उससे सदा आनन्द की प्राप्ति होती है।

५. **यथा याचना तथा संबोधनः—**

जब कभी कोई दुष्ट हमें सताता है, तो हम किसी पहलवान व्यक्ति के पास जाकर पहले उसकी प्रशंसा करते हैं कि आप बड़े महावीर, पहलवान हो, शेर हो, दिलेर हो, निर्बलों के सहायक गुण्डागर्दी मिटाने वाले हो, तब उससे सहायता के लिए प्रार्थना करते हैं।

ऐसे ही जब हमें किसी से दान लेना होता है, तो पहले उसकी बढ़ाई करते हैं कि आप कर्ण-समान दानी हो, उदार हो, परोपकारी हो, आदि कहकर तब याचना करते हैं कि आप के समाज की यज्ञशाला अधूरी पड़ी है, इसे बनवा दें।

इसी प्रकार साधक चाहता है कि मेरे प्राणों की रक्षा हो तो प्रभु को संबोधन किया कि आप भूः हो !

क्योंकि वह आधि भौतिक आधि दैविक, अध्यात्मिक दुःखों से छूटना चाहता है। इसलिए कहा प्रभु आप भुवः हो।

उपासक शारीरिक सुख, मानसिक शान्ति और आत्मिक आनन्द पाना चाहता है, इसलिए कहा कि प्रभु आप स्वः हो, अर्थात् मेरे जीवन की रक्षा करो। कष्टों, क्लेशों का निवारण करो और अपना सुखद हस्त मेरे सिर पर रखो एवं अपने दिव्यानन्द का अमृत पिलाओ।

६. साधक का इन महाव्याहृतियों द्वारा विश्वास बढ़ता है कि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि संसार में पूर्णतया प्राणों की रक्षा और दुःखों की निवृत्ति तथा सम्पूर्ण वास्तविक सुख, शान्ति, आनन्द की उपलब्धि हो सकती है तो केवल प्यारे प्रभु का साक्षात् करके और उसके दिव्य चरणों में समर्पित होने से ही हो सकती है।

सवितुः

१. यह शब्द गायत्री मन्त्र का देवता है और परमात्मा के अनेक नामों का प्रतीक है, जो आरम्भ में मन्त्र के अर्थों में लिख दिए हैं।

२. **ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद् भद्रं तन्न आ सुव ।**

—(य० ३०-३)

इस मन्त्र से सविता के ये अर्थ भी निकलते हैं कि सकल जगत् के उत्पत्ति कर्त्ता, समग्र ऐश्वर्य युक्त, शुद्ध स्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर सवितादेव हैं; जो सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर करते हैं।

३. ब्राह्मण-ग्रन्थ का वाक्य है—

सुवतिः प्रेरयति कर्माणि इति सविताः

अर्थात् जो सबको प्रेरणा देता है और कर्मों में लगाता है, वह सविता है।

जैसे सूर्य के उदय होने पर उसके प्रकाश में सभी प्राणी अपने-अपने कार्यों में लग जाते हैं, मनुष्य अपने धन्धे शुरू करते हैं, पक्षी चहचहाने लगते हैं। प्रकृति के अणु-अणु में शक्ति भरती है, कायनात का ज़र्रा-ज़र्रा जगमगा जाता है, फसलें पकती हैं, पुष्प खिलते हैं, संसार में चहल-पहल होने लगती है। वैसे ही सविता देव वह ब्रह्मसूर्य है, जिसकी सत्प्रेरणा से इस अखिल ब्रह्माण्ड की प्रत्येक गति-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि, क्रिया, हरकत, चेष्टा, दिन-रात के चक्र, मौसमों के परिवर्तन बड़े वैज्ञानिक ढंग से हो रहे हैं। जिसकी इच्छा के बिना घास का पत्ता तक नहीं हिल सकता और उसके अटल नियमों का कोई भी शक्तिशाली उल्लंघन नहीं कर सकता और उसी के नियमानुसार प्रलय के दृश्य, दैवी प्रकोप भी आते हैं।

४. **गोपथ ब्राह्मण** में सविता और गायत्री सावित्री को आलंकारिक भाषा में एक संवाद द्वारा समझाया है। महात्मा मैत्रेय के प्रश्न पर मौद्गल्य महर्षि ने उत्तर दिया (इसमें कुछ विस्तार लेखक का भी है)—

वेद	सविता है,	गायत्री	सावित्री	है।
अग्नि	,,	पृथ्वी	,,	,,।
वायु	,,	अन्तरिक्ष	,,	,,।
आदित्य	,,	द्यौ	,,	,,।
सूर्य	,,	ज्योति	,,	,,।
चन्द्रमा	,,	चाँदनी	,,	,,।
मेघ	,,	वर्षा	,,	,,।
यज्ञ	,,	दक्षिणा	,,	,,।
पुरुष	,,	स्त्री	,,	,,।
दिन	,,	रात	,,	,,।
ताप	,,	शीत	,,	,,।
बिजली	,,	गर्जना	,,	,,।
प्राण	,,	अन्न	,,	,,।
मन	,,	वाणी	,,	,,।

(क्योंकि वाणी मन के भावों की अनुवादिनी है)

मनो वै सविता

—(शतपथ ६-३-१-१३)

अर्थात् मनुष्यों में सविता उसका मन है। सविता मूल शक्ति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उसका गुण सावित्री है। दोनों से वस्तु का महत्त्व बनता है।

५. सविता वह है जो मनुष्य के अन्तःकरण के दोष (मल, अवर्ण, विक्षेप) को दूर करके दिव्य शक्ति, दिव्य प्रेरणा और दिव्य संकल्पों से भरपूर करता है।

६. सविता अन्तःप्रेरक देव हैं। जब मनुष्य शुभ कर्म करता है तो उसे अन्दर से प्रसन्नता, निर्भयता, उत्साह, उल्लास, आनन्द देते और बुरे कर्म करने पर ग्लानि, घृणा, लज्जा, शङ्का और भय उत्पन्न कराते हैं।

वरेण्यं

१. वरेण्यं शब्द योग की भाषा में ईश्वर-प्रणिधान है। गीता के शब्दों में शरणागती है। उपासक के लिए अनन्य भक्ति द्वारा समर्पण है। देव दयानन्द ने इसे प्रेमा-भक्ति कहा, श्रद्धालु प्रेमी के लिए वाह ! वाह !! है।

२. जैसे दो व्यक्तियों की परस्पर मित्रता तब होती है, जब उन के गुण, कर्म, स्वभाव अथवा विचार, आचार, व्यवहार समान हों। स्वजातीय परमाणु स्वजातीय परमाणुओं को आकर्षित करते हैं, यह सिद्धान्त है। एक फारसी कवि ने कहा है --

कुनिन्द हम जिन्स बाहम परवाज़ ।
कबूतर रा कबूतर बाज़ रा बाज़ ।।

अर्थात् समान जाति वाले पक्षी ही आपस में मिलकर उड़ते हैं। जैसे कबूतर कबूतरों के साथ बाज बाजों के साथ।

ऐसे ही जब तक साधक में परमात्मा के गुण, कर्म , स्वभाव नहीं आते; वह उसका प्रिय सखा नहीं बन सकता। परमात्मा में अनन्त गुण हैं, परन्तु मुख्य गुण है सत्य, कर्म है न्याय, स्वभाव है दया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य और न्याय एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ये गुण तप और संयम से आते हैं। कबीर का यह दोहा प्रसिद्ध है—

सत्य बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जिनके हृदय सत्य है, उनके हृदय आप॥

दया के सम्बन्ध में महाकवि रामभक्त तुलसीदास ने फरमाया है—

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जब लग घट में प्राण॥

सत्य और न्याय का पालन करना ही धर्म कहलाता है।

३. सत्य के अनुष्ठान का आरम्भ पवित्र कमाई से है। ऐसा अन्न ही सात्त्विक गुण लायेगा और अन्तःकरण को पवित्र करेगा।

'जैसा अन्न वैसा मन' प्रसिद्ध कहावत है। इसी से दया, नम्रता, नमस्कार और उपासना के भाव बनेंगे, अन्तःकरण शुद्ध होगा। वरेण्यं की सिद्धि के लिए **यह पहला कदम** है।

अन्तःकरण के शुद्ध होने पर साधक को परमात्मा की प्रेरणायें मिलने लगती हैं, जिनसे उसमें प्रभु के प्रति श्रद्धा और प्रेम बढ़ता है और उसके आज्ञाओं को पालन करने लगता है। यह वरेण्यं की सिद्धि का **दूसरा कदम** है।

वेदोक्त आज्ञाओं का पालन करते-करते अभ्यासी परमात्मा के प्रेम का पात्र हो जाता है और उसके प्रति समर्पण होने लगता है। यह वरेण्यं की साधना का **तीसरा कदम** है।

वरेण्यं को उपमा एक उदाहरण से लें—जैसे कोई कविता-प्रेमी जब किसी महाकवि के तरन्नुम से गायी हुई अनोखी, विचित्र, रोचक, हास्य-रस कविता को सुन कर आनन्द से ऐसे भरपूर हो जाते हैं कि बरवश उनके हाथों से ताली पिट जाती है; मुंह से वाह-वाह निकल आती है, हृदय गद्‌गद् हो उठते हैं, एक बार और! एक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार और !! once more—once more के नारे हाल में गूंजने लगते हैं, कवि का जयघोष होता है, वातावरण में रोमांच आ जाता है और कवि के प्रति श्रद्धा और प्रेम का दरिया उमड़ आता है। उसको मिलने की उत्कंठा और मैत्री पाने की चाह बन आती है। कवि-सम्मेलन के पश्चात् वे प्रशंसक उससे मिलते हैं, श्रद्धा से नमस्कार करते हैं, और सम्मान में मस्तक झुका देते हैं। उसकी पुस्तक खरीदते हैं और कवि के हस्ताक्षर (Auto graph) लेते हैं, उसकी फोटो माँगते हैं और लेकर अपने कमरे में सजाते हैं। पुनः उसको सुनने का अवसर ढूंढ़ते रहते हैं।

५. (१) ऐसे ही गायत्री उपासक कविता-प्रेमी की तरह जब सर्वरक्षक ओ३म् सच्चिदानन्द स्वरूप का चिन्तन, मनन, निधि-ध्यासन करते हुए उसके प्राण रक्षक सर्वदु:ख भंजक, सब सुख-शान्ति-आनन्द और समग्र ऐश्वर्यों के देने वाले देव सविता के वरेण्यं, अलौकिक, परम सुन्दर, परम तेजस्वी ज्योति स्वरूप की दया, करुणा और महिमा का आह्वान करता है एवं उसकी अद्‌भुत कृतियाँ अनेक उपकारों, असंख्य कल्याणमयी, प्रतिक्षण प्रसारित होने वाली अनन्त देनों के स्मरण से उसके अन्तःकरण में प्रेम, श्रद्धा, भक्ति और अनुराग का दरिया उमड़ आता है। उसका शुद्ध कोमल विनीत हृदय द्रवित हो जाता है।

(२) तब उसे प्रतीत होने लगता है कि कोई अदृश्य शक्ति उसे बरबश अपनी ओर प्रेरित तथा आकर्षित कर रही है। वह दयालु माँ उसे अपनी वात्सल्य भरी गोद में ले रही है और वह स्वयं उसकी दर्शनीय रूप सुधा के आकर्षण में उसके प्रति अर्पण हो रहा है तथा उसकी प्रत्येक गतिविधि माँ सविता की अध्यक्षता में हो रही है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके भाव संकल्पों का नृत्य उस देव की निराली तान पर हो रहा है।

देदीप्यमान ज्योति के अक्षय स्रोत में उसका सम्पूर्ण अन्तःकरण डूब कर जगमगा उठा है।

विलक्षण आभा में समाहित हो रहा है।

उसके अविद्या, राग-द्वेष आदि क्लेश और विषय-विकार विलीन हो गए हैं। बुद्धि में सत्प्रेरणाओं की सरिता बह रही है। दिव्य गीत सुनाई देते हैं। दिव्य दर्शन हो रहे हैं।

ऐसी उन्माद भरी मस्ती छा जाती है कि वह अपनी सुध-बुध खो देता है। सहसा उसके दोनों हाथ बरबस जुड़ जाते हैं। मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है। विषयों से पृथक् हुई इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हैं—प्राण सम हैं, मन निर्विचार है, चित् की निरोध अवस्था है, मौन भरा सन्नाटा है, बुद्धि में विवेक का उदय है, विरक्ति छा रही है, अहंकार नम्रता का परिधान पहन कर नयनों के प्रेम भरे जल में डूब चुका है, वाणी अवाक् है और अवर्ण्य का वर्णन करने में असमर्थ है।

ऐसी विदेहमयी, शान्तमयी, आनन्दमयी स्थिति में असम्पर्ग्यात् समाधि बनती है। ब्रह्मपरायण आत्मा में ज्योतिर्मय के दर्शन होते हैं और चिरकाल से बिछुड़ी हुई आत्मा को अपने प्यारे प्रियतम का साक्षात्कार हो जाता है।

वैरागी को शरीर का भान न होते हुए भी उसके नयन सजल हो जाते हैं, केवल उन प्रेम भरे आँसुओं की नमन प्रणाम-भेंट ही उसके पास होती है। जिसे प्रीतम के दिव्य चरणों में अर्पित कर देता है और उसकी परावाणी से झंकार निकलतो है—

वरेण्यं ! वरेण्यं !! वरेण्यं !!!

यही वरेण्यं की सिद्धि है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भर्गः

१. यह शब्द परमात्मा के रूप को दर्शाता है, जो आदित्य वर्ण है, जैसा कि इस वेदमन्त्र से ज्ञात है—

ओम् वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वाति मृत्यु मेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।

—(य० ३१-१८)

अर्थः—

साक्षात् करो उस परम देव के, सूर्य सम तेजस्वी रूप को।
अज्ञान-अन्धकार से सदा रहित जो, ज्योति के अक्षय स्रोत को ।।
नहीं रास्ता कोई दूसरा, मृत्यु से तर जाने का।
सर्व दुःखों से छूटने का और मुक्ति सुख को पाने का ।।

इस मन्त्र में वेद के परम ज्ञानी महर्षि सावधान करते हैं कि बिना परमात्मा का साक्षात् किए कोई भी दुःखों और जन्म-मरण के बन्धन से नहीं छूट सकता, इसके सिवा मुक्ति पाने का अन्य कोई उपाय नहीं।

२. निरुक्तकार के अनुसार भर्गः भर्जस् धातु से बना है, जिसका अर्थ है परिपाक करना अर्थात् पकाना। जो पापों, तापों और सन्तापों को भून देता है तथा ज्ञान, ध्यान, भक्ति के संस्कारों को परिपक्व करता है। तप इसका साधन है।

३. भर्गः को ऐसा समझें कि जैसे तीन प्रकार का अन्धकार होताहै—एक दिन में लूट-खसूट, चोरी-ज़ारी, गुण्डा-गर्दी, छुरेबाज़ी, गोली-बारी का अन्धकार जो आजकल पंजाब में हो रहा है। जिसे राजा (महामन्त्री) न्यायाधीश अत्यन्त कठोर दण्ड की किरण से दूर करता है।

दूसरा रात्रि का अन्धकार होता है। जिसे परमात्म देव

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं सूर्य की चमकीली किरणों से दूर करते हैं।

तीसरा अविद्या का अन्धकार है। जिसे देव सविता अपने निज स्वरूप को दर्शा कर, ज्ञान की दिव्य ज्योति की किरण से विलीन करते हैं, जिससे विवेक-ख्याति उत्पन्न होती है। इस किरण का नाम भर्गः है। परम वैराग्य की माचिस पर ध्यान की तीली के अभ्यास से जो प्रकाश निकलेगा, उस ज्योति का नाम भर्गः है।

देवस्य

यह शब्द महिमाशाली सविता की स्तुति-रूप में आया है। इसका अर्थ है, जो दिव्य गुणों से युक्त है। दिव्य देनों, ऐश्वर्यों का दाता है। दिव्यताओं से भरपूर है। जीवात्मा में ज्ञानप्रकाश को देने वालो, प्रकाश-पुन्ज, सर्व सुखों को दाता, आनन्द-प्रदाता होने से देवस्य कहा गया।

देव शब्द दिवु धातु से बना है। जिसके अर्थ स्तुति, मोद, कान्ति और गति हैं।

देव वह होता है जो बिना बदले के, दया के स्वभाव से देता है। कृपा से देना यह होता है कि थोड़े के बदले में अधिक देना। मानो कोई मज़दूर थोड़ा कार्य करके किसी कारण चला गया, उसे सारे दिन की मज़दूरी देना कृपा है।

परमात्मा के अत्यन्त दयालु होने से उसे देवस्य सविता कहा गया है।

सब दिव्य गुणों की देनों में दिव्यता प्यारे प्रभु की है। मेधावियों की मेधा में, यतियों के संयम में, संतों की सात्विकता में, वीरों की विजय में, मातृ हृदय की ममता में, पिता के वात्सल्य में इत्यादि। इसलिए उपासकों ने कहा—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवस्य सविता वरेण्यं भर्गः

हे अनंत दिव्यताओं, दिव्य गुणों, दिव्यदेनों के दाता परमेश्वर सविता देव ! हम आपको वर कर अपने आपको समर्पण करते हैं; जिससे आपके भर्गः स्वरूप को धारण कर सकें।

धीमहि

इसका अर्थ है धारणा तथा ध्यान करना और इसके द्वारा समाहित तथा समाधिष्ट हो जाना। धारण किया जाता है परमात्मा के गुणों को, ध्यान किया जाता है परमात्मा के स्वरूप को और गायत्री मन्त्र के अनुसार देव सविता के वरेण्यं भर्गः को। परमात्मा के गुणों को धारण करने और उसके भर्गः स्वरूप को ध्यान करने से साधक का देवत्व भाग बन जाता है विपत्ति पड़ने पर सहज-सुगमता से ऐसा अवसर बन आता है कि वह संकट ऐसे दूर हो जाता है, जैसे वायु के वेग से बादल हट जाते हैं।

धारणा और ध्यान की व्याख्या 'योग के अंग—धारणा और ध्यान'. इसके अन्तर्गत आगे विस्तार से पढ़ें।

धियो यो नः प्रचोदयात्

1. साधक ने बड़े तप एवं परिश्रम से ध्यान द्वारा देव सविता के वरेण्यं भर्गः तेज को धारणाओं में धारण किया। जिससे उसके मल, अवर्ण, विक्षेप दूर हुए और अन्तःकरण शुद्ध हुआ, उसको समाहित अवस्था प्राप्त हुई। समर्पण बना। अब प्रभु का संकेत होने लगा—'वत्स ! माँग, क्या चाहते हो।' तत्काल पवित्र बुद्धि से याचना उभरी—**धियो यो नः प्रचोदयात्**।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभु हमारे ज्ञान और कर्मों को सत्प्रेरणा से अपने साक्षात् की ओर ले चलो। हमारी बुद्धि को अपनी दिव्य प्रेरणा से अपनी इच्छा के अधीन चलाएँ।

> **देव और कछु नहीं चाहिए, मेधा-ऋतम्भरा दीजिए।**
> **दर्शन हों जिससे आपके, ऐसी प्रेरणा कीजिए॥**
> **तेरे दामन को पकड़ कर, मैं सदा चलता रहूँ।**
> **जिस तरफ ले जाओ, बस उधर ही जाता रहूँ॥**

२. उपासक ने जान लिया था कि—

जब तक प्रज्ञा का उदय नहीं।
अविद्या आदि क्लेशों का होता नाश नहीं।
मल, आवर्ण विक्षेप मिटते नहीं।
अज्ञान अन्धकार जाता नहीं।
जाज्वल्यमान ज्ञान का दीपक जलता नहीं।
विवेक-ख्याति उत्पन्न होती नहीं।
आत्म-दर्शन सम्भव नहीं।
ब्रह्म-स्वरूप दीखता नहीं।
समर्पण बन सकता नहीं।

तो फिर परमात्म-साक्षात्कार कैसे हो सकता है?

इसीलिए साधक ने प्रभु से ऋतम्भरा मेधा माँगनी थी।

३. साधक ने यह भी सुन रखा था—

ऋते ज्ञाने न मुक्ति

अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती और ज्ञान, कर्म, उपासना का आधार शुद्ध मेधा-बुद्धि है, जिसके बिना जगत् की प्रदर्शनी में मनुष्य का कुछ भी मूल्य नहीं। इसलिए वह हमेशा सुमेधा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कामना करता है, ताकि उसके सारे धर्म, कर्त्तव्य-कर्म निष्काम आसक्ति रहित, निःस्वार्थ भाव से फल की आशा त्याग भगवान् की आज्ञानुसार उसकी प्रेरणा से हों; उसे लक्ष्य कर हों; उसके निमित्त हों, उसकी ओर ले जाने, ससर्ग, समस्वर और उसका साक्षात् कराने वाले हों, इसीलिए उपासक को यही वर माँगना प्रिय था।

४. उपासक के सामने ब्राह्मण-ग्रन्थ का यह वाक्य भी था—

प्रज्ञया बलमुच्यते।

बुद्धि बल सब बलों से श्रेष्ठ है।

५. भगवान् कृष्ण चन्द्र जी महाराज का अमर उपदेश भी उसे याद था—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गी० १०-१०)

अर्थ—

प्रेम-भाव से जो सदा करते प्रभु का ध्यान।
मेधा-बुद्धि वह मिले जो पा सके भगवान्॥

स्पष्ट है कि प्रभु के ध्यान-स्मरण से मेधा-बुद्धि प्राप्त होती है, जिससे उसके दर्शनों से कृतार्थ होते हैं।

६. गायत्री मन्त्र की रहस्यमयी देन, बुद्धि की महामहिमा को जान कर उपासक भगवान् से संगीत के स्वरों में यह वरदान माँगते हैं—

प्रभु आपके चरणों में आकर, हम तेरे उपासक माँग रहे।
प्रिय आपके जिससे दर्शन हों, भगवान् ऐसी सद्बुद्धि दो॥१॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप भूर्भुवः स्वः महः जनः तपः और सत्यं हो।
सब कष्ट-क्लेश मिटें जिससे, भगवान् ऐसी सद्बुद्धि दो ॥२॥

तत्सवितुर्देव जगत् के पालक रक्षक हो आप सबके।
हो वरेण्यं की सिद्धि हमें, भगवान् ऐसी सद्बुद्धि दो ॥३॥

आप भर्गः देव उपासक के, सब पाप ताप को हरते हो।
निज स्वरूप का जिससे ध्यान बने, भगवान् ऐसी सद्बुद्धि दो ॥४॥

देवस्य अनुपम ज्योति स्वरूप, हे अरूपों में भी सुन्दर रूप।
धारें तेरे दिव्य गुणों को, भगवान् ऐसी सद्बुद्धि दो ॥५॥

हे सर्व व्यापक अन्तर्यामी, आप सम नहीं कोई महादानी।
धर्म मार्ग के पथिक बनें, भगवान् ऐसी सद्बुद्धि दो ॥६॥

जिससे ज्योति जगे ज्ञान की, पायें नित्य प्रेरणा आपकी।
मिले ऋतम्भरा मेधा वह, भगवान् ऐसी सद्बुद्धि दो ॥७॥

प्रज्ञा ऐसी चाहते हैं, जो ऋषि-मुनियों ने पायी थी।
कल्याण जिससे सब होता है, भगवान् ऐसी सद्बुद्धि दो ॥८॥

बुद्धि-बल से ही मानव का, उत्थान यथावत् सम्भव है।
महामन्त्र जो वर देता है, भगवान् ऐसी सद्बुद्धि दो ॥९॥

आप पिता दयालु हो स्वामी, और करुणा सब पर करते हो।
हम भद्र कहें और भद्र सुनें, भगवान् ऐसी सद्बुद्धि दो ॥१०॥

सद्ज्ञान विवेक समृद्धि हो, तन मन और धन की शुद्धि हो।
वैराग्य त्याग की वृद्धि हो, भगवान् ऐसी सद्बुद्धि दो ॥११॥

जीवन क्या है, मृत्यु क्या है, क्यों आये मानव-योनि में।
इन गूढ रहस्यों को समझें, भगवान् ऐसी सद्बुद्धि दो ॥ १२ ॥

इस सुन्दर पावन वेला में, हम यही याचना करते हैं।
भवसागर पार उतारे जो, भगवान् ऐसी सद्बुद्धि दो ॥१३॥

॥ ओ३म् शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!! ओ३म् ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५ वरेण्यं की साधना

१. वरेण्यं (समर्पण) उसके प्रति होता है, जिसे हम जानते हों और उसके विशेष गुणों के कारण श्रद्धापूर्वक आकर्षित हों। प्रायः हम भगवान् को मानते हैं कि वह है, किन्तु उसे जानते नहीं। मौत को हम जानते हैं, क्योंकि हमेशा मरते देखते हैं, किन्तु उसे मानते नहीं कि हमने भी सब कुछ छोड़कर किसी भी क्षण चले जाना है। वरना हमारी व्यर्थ की भोग-इच्छायें और संग्रह की भावनायें समाप्त हो गयी होतीं। इसलिए सबसे पहले आओ! परमात्मा को जानें कि वे कैसे हैं? क्या करते हैं? और फिर उस ओर बढ़ने के उपाय सोचें!

२. वेद माता उनका इस प्रकार परिचय देती हैं—

देवता-आत्मा

ओ३म् स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्ध-मपापविद्धम् ।

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधा-त्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

(य० ४०-८)

(i) **स पर्य्यगात्** = वह परमात्मा सर्वत्र व्यापक

(ii) **शुक्रम्** = शीघ्रकारी सर्वशक्तिमान्

(iii) **अकायम्** = स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित

(iv) **अव्रणम्** = शारीरिक विकार रहित, छिद्र रहित, नहीं छिद्र करने योग्य

(v) **अस्नाविरँ** = नस-नाड़ी के बन्धन से रहित

(vi) **शुद्धम्** = अविद्या, अवर्ण आदि दोषों से रहित, शुद्ध पवित्र, निर्मल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(vii) **अपापविद्धम्** =पाप से रहित

(viii) **कविः** =सूक्ष्म, क्रान्तदर्शी

(ix) **मनीषी** =सब जीवों के मनों की वृत्तियों को जानने वाला ज्ञानी

(x) **परिभूः** =दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला सब पर स्वामित्व रखने वाला, शासन करने वाला

(xi) **स्वयम्भू** =अनादि स्वरूप, जिसके संयोग से उत्पत्ति, वियोग से विनाश और माता-पिता द्वारा न जन्म, न वृद्धि, न मरण होता है तथा स्वयं सिद्ध एक ही अपनी सत्ता से सदा वर्त्तमान रहता है

(xii) **शाश्वतीभ्यः** =सनातन अनादि स्वरूप आदि रहित उत्पत्ति और विनाश रहित।

समाभ्यः =(जो) प्रजाओं, जीवों के लिए

याथातथ्यतः =ठीक-ठीक यथावत् भाव से

अर्थान् =कर्म फलों का

व्यदधात् =विधान करता है।

इस मन्त्र से ब्रह्म के विषय में यह जानना है कि वह विभु है, परिच्छिन्न नहीं। सर्वदेशीय है, एकदेशीय नहीं।

ब्रह्म एक ही है, दूसरा-तीसरा और कोई नहीं।

वह जगत् का आदि-मूल कारण है, इत्यादि।

इसे विश्वासपूर्वक मानना चाहिए और साधक को इसका ज्ञान निश्चयात्मक होना चाहिए। **यह साधना का प्रथम चरण है।**

३. वह परमात्मा कैसे जाना जाता है, इसका उत्तर मुण्डकोपनिषद् का तीसरा मुण्डक, पहला खण्ड, पाँचवीं ऋचा से लें—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येणनित्यम् ।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥
(मु० ३-१५)

यह भगवान् सदा सत्य से, तप से यथार्थ ज्ञान तथा ब्रह्मचर्य से प्राप्त किया जाता है। परमेश्वर शरीर के भीतर प्रकाशमय और शुद्ध है; अर्थात् सबके भीतर पवित्र साक्षी है। इस ईश्वर को निर्दोष यतिजन देखते हैं।

सत्य से मनुष्य का मन क्षीण दोष होकर शुद्ध होता है।

तप से द्वन्द्वरहित होकर बलवान् आत्मा वाला बनता है।

सम्यग्ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है।

ब्रह्मचर्य से जीवन संयमित होता है।

सत्य व ब्रह्मचर्य यम के अङ्ग हैं। तप नियम का प्रतिनिधि है और सम्यग्ज्ञान गायत्री मन्त्र की ओर संकेत करता है। अर्थात् यम-नियम का पालन और गायत्री की उपासना वरेण्यं की **साधना का दूसरा पुरुषार्थ** है। ये चारों गुण भौतिक व लौकिक उन्नति के लिए भी आवश्यक हैं।

४. महात्मा बुद्ध एक नहर के किनारे घूम रहे थे। एक जिज्ञासु ने आकर उन्हें प्रणाम किया और पूछा 'महाराज परमात्मा को कैसे पाया जा सकता है?' उन्होंने कहा—'आओ पहले नहा लें, फिर बताऊँगा।' जब पानी में नहाने को उतरे, नहर के बीच में पानी बहुत गहरा था। वहाँ उस व्यक्ति को ले जाकर डुबकी दी और कुछ देर पानी में डुबोये रखा, वह बेचैन हुआ, घबराया, तिलमिलाया और फिर उसे किनारे की ओर ले आये। तब उसे साँस आया। भगवान्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्ध ने पूछा, 'जल के गोते में आपकी क्या स्थिति थी ?' उत्तर मिला कि 'अत्यन्त व्याकुल था; कि किसी भी तरह जल से बाहर निकलूं वरना दम घुटकर मर जाऊंगा।' इस पर उन्होंने उपदेश दिया कि 'बस जिस दिन इतनी ही उत्कट इच्छा, प्रबल चाहना और आवश्यकता इस निस्सार संसार में दम घुटने की-सी बात होगी और इस भव-सागर से निकलने का पूरा प्रयत्न होगा; फिर परमात्मा के दर्शन हो जायेंगे ।'

अर्थात् ईश्वर को पाने की उत्कट इच्छा और हार्दिक लग्न **तीसरा आवश्यक साधन** है।

५. वरेण्यं के तीन प्रकार हैं—प्रभु के आश्रित होना, शरणागत होना, समर्पित होना।

१. आश्रित

जैसे निर्बल, अशक्त, निःसहाय बच्चा अपने को माता-पिता के आश्रित रखता है, तो उसकी सारी ज़िम्मेदारी उन पर होती है; वैसे ही साधक जब शिशु की तरह परमात्मा को आत्मीय-अपना एकमात्र आसरा और सहारा जान और मानकर उसके पूर्णतया आश्रित हो जाता है और उसकी वेद विहित आज्ञाओं का पालन करता रहता है; तो उसके सारे योग क्षेम की चिन्ता परमात्मा पर हो जाती है। उसकी गतिविधि वरेण्यं देव की देख-रेख और अध्यक्षता में होने लगती है। उसके कार्य का भार ऐसे हल्का हो जाता है; जैसे मन भर जल भरी बाल्टी नदी के अन्दर जल के आश्रय होने से उसके बहाव के साथ केवल अंगुली के सहारे उसे सुगमता से दूर तक ले जाता है। उसके जीवन-रथ का संचालन प्यारे प्रभु के अमृतमय हाथों में चला जाता है और उसकी छत्र-छाया

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोक्ष सुखदायक होती है। वेदमाता स्वयं ऐसा कह रही है—

"यस्य छायाऽमृतम्"

(य० २५-१३)

२. शरणागत

६. जैसे ब्रह्मचारी गुरु की चरण-शरण में जाकर तप और नम्र भाव से विद्याओं को पढ़ कर उसकी ज्ञानाग्नि से अपनी आत्मा प्रकाशित कर देता है। अथवा अग्नि में जाकर लोहा अग्निमय हो जाता है। वैसे ही परमात्मा को अर्पण होकर साधक विवेक से प्रकाशित परमात्मा का साक्षात् कर लेता है।

७. वेद भगवान् ने परमात्मा की शरण को दैवी नाव कहा। क्योंकि यही सब दुःखों से छुड़ा; भव सागर पार करा, आनन्द धाम पहुँचा देती है। स्वस्ति वाचन का सोलहवाँ मन्त्र इस प्रकार है—

देवता-विश्वेदेवा

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् । दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥

(ऋ० १०-६३-१०, य० २१-६, अ० ७-६-३)

(i) **सुत्रामाणं**= सब प्रकार रक्षा करने वाली, सृष्ट-रक्षणों से युक्त

(ii) **पृथिवीं**= पृथिवी की तरह आश्रय देने वाली विस्तृत, फैली हुई

(iii) द्याम्= ज्ञान-प्रकाश वाली, सूर्यवत् ज्ञान से आलोकित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(iv)	अनेहसं =	अहिंसिनी, कभी हानि न पहुँचाने वाली
(v)	सुशर्माणम् =	अत्यन्त सुख देने वाली, परम सुखदायी
(vi)	अदिति =	अखण्डित, परिपूर्ण
(vii)	सुप्रणीतिम् =	सर्वश्रेष्ठ मार्ग से ले चलने वाली
(viii)	स्वरित्राम् =	समस्त सद्गुणों वाली, सर्वगुण सम्पन्न
(ix)	अस्रवन्तीम् =	छिद्र रहित, कभी न धोखा देने वाली
	दैवीं नावम्[1] =	परमात्मा की शरण रूपी नाव (पर)

---

१. मैं (लेखक) १९८४ में आर्य समाज मन्दिर, अशोक विहार फेज II दिल्ली में नित्यप्रात: ५ से ६.१५ तक सन्ध्या, हवन और आचार्य अभय देव जी की पुस्तक 'वैदिक विनय' के दैनिक मन्त्र की व्याख्या और अधिकतर मन्त्रों के अर्थ कविता में सुना दिया करता था। रात को अगले दिन का मन्त्र देखकर सोता था। १७ श्रावण के मन्त्र जब मैंने पढ़ा, तो पूज्य आचार्य जी ने 'दैवीं नावम्' का अर्थ प्राकृतिक नाव, महर्षि दयानन्द जी के यजुर्वेद में इसके अर्थ **'विद्वान् पुरुषों की प्रेरणा करने हारी नाव'** और उनके भावार्थ भी देखे। फिर मैंने ऋग्वेद में श्री विहारी लाल जी शास्त्री, काव्य-व्याकरण तीर्थ के अर्थ—**'जल, अग्नि, भाप, विद्युत से चलने वाली'**, अथर्ववेद में श्री क्षेमकरण दास जी त्रिवेदी द्वारा अर्थ— **'देवताओं, विद्वानों की बनायी हुई नाव'** पढ़े। इनके अलावा अन्य किसी विद्वान् के अर्थ मेरी दृष्टि में नहीं थे। समझ में नहीं आया कि 'दैवीं नावम्' के मन्त्र में दिये गए गुण विद्वान् पुरुषों की बनायी नौका में कैसे हो सकते हैं? यह चिन्तन करते सो गया। (मुझे ३५ साल से सुषुप्ति-अवस्था कभी प्राप्त नहीं हुई। निरन्तर स्वप्न आते रहते हैं, जो भयानक, डरावने और बुरे नहीं होते। यह मानसिक रोग यदि नहीं होता तो प्रभु की कृपा से इस जन्म में योगी बन जाता। यह विघ्न की वेदना मुझे अक्सर बेचैन करती है। ५० वर्ष की आयु के पश्चात् वेद-आज्ञानुसार ब्रह्मचर्य का पालन, देवी शकुन्तला जी धर्मपत्नी के तप, संयम और सहयोग तथा थोड़ा भक्तिभाव होने से फिर भी कुशल जीवन चल रहा है। यह आश्चर्य दयालु देव की देन है।)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनागसम् = अपराध रहित निष्पाप होकर
स्वस्तये = सर्वकल्याण के लिए, मुक्ति, आनन्द के लिए
आ रुहेम = सवार हों।

हे मनुज ! भव-सागर पार करना चाहता है तू अगर।
ईश की तुम शरण रूपी दिव्य नाव को पकड़॥

जो सर्वरक्षक-अतिविस्तृत-परम सुखदायी स्वरूप से अखण्ड है।
गुण सम्पन्न छिद्र-रहित-अहिंसक ज्ञान से पुर नूर है॥

श्रेष्ठ मार्ग से ले जा कर, मुक्तिधाम पहुंचाती है।
इस पर चढ़ सकता वही, जो सर्वथा निष्पाप है॥

८. महर्षि देव दयानन्द जी ने इस मन्त्र के भाव-अर्थ इस प्रकार किए हैं ये (आदिभौतिक हैं, मेरे किए आध्यात्मिक अर्थ हैं)—"हे मनुष्यो ! जिसमें बहुत घर, बहुत साधन, बहुत रक्षा करने हारे, अनेक प्रकार का प्रकाश और बहुत विद्वान् हों, उस छिद्ररहित बड़ी नाव में स्थित होकर समुद्र आदि जल के स्थानों में पारावार देशान्तर और द्वीपान्तर में जा-आ के भूगोल में स्थित देश और द्वीपों को जानकर लक्ष्मीवान् होवें ?"

९. मन्त्र के आधार पर कविता:—

१. खोज प्रियतम को था निकला, अरमानों की झोली लिए।
विश्व-सिन्धु पर खड़ा था, सोच में डूबे हुए॥

२. उस पार है प्रियतम मेरा, बिन जाय सुख-शान्ति नहीं।
पर भयंकर तूफानों-भँवरों से गुजरना भी कोई आसान नहीं॥

३. इस कशमकश में था खड़ा तो देववाणी से सुना।
पार जाना चाहते हो तो सोच में न रह खड़ा॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. एक प्रभु की शरण रूपी दिव्य नौका ही,
करा सकती है भव सागर से पार।
जो दिव्य ज्योति से अलंकृत-अतिविस्तृत-
उस पर करो सब कुछ निसार॥

५. सुत्रामाणं-सुशर्माणं-सुप्रणीतिं-अरूवन्तीं-
स्वस्ति का जो है आधार।
जिसमें सब सुख-साधन हैं, जिनका नहीं कोई शुमार॥

६. शर्त यह है कि निष्पाप होकर उस पर तुम चढ़ पाओगे।
एक ही है योग मार्ग जिस पर चलकर जाओगे॥

३. समर्पित

१०. जब कोई साधारण कन्या पति को स्वीकार हो कर विवाह कर लेती है, तो उससे उसका तन-मन से समर्पण बन जाता है। वह चाहे अनपढ़ हो पर डाक्टर, वकील, प्रोफेसर के साथ शादी हो जाने पर डाक्टरनी, वकीलनी, प्रोफेसरनी कहलाने लग जाती है। यदि राजा उसे स्वीकार कर लेता है तो वह रानी बनकर सम्मान पाती है। पत्नी पति के सर्वस्व की मालिक हो जाती है और उसके देख-रेख की सारी जिम्मेदारी पति पर हो जाती है। इसी प्रकार उपासक

स्वप्न में देव-सविता की प्रेरणा से 'दैवीं नावम्' का अर्थ 'प्रभु की शरण' का संकेत हुआ। नित्य की भाँति प्रातः २ बजे उठकर प्यारे परम पिता परमात्मा का धन्यवाद किया और सबसे पहले—'खोज प्रियतम को था निकला, अरमानों की झोली लिए' यह ६ पदों की कविता बना दी। मन्त्र-अर्थ की कविता बाद में लिखी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब शुद्ध आचरण और तन्मयता से ईश्वर के प्रति ध्यान-स्मरण द्वारा सर्मपित हो जाता है, तो उसके गुण, कर्म, स्वभाव, ज्ञान, बल, पराक्रम और उत्साह उसमें आ जाते हैं और उसके योगक्षेम की चिन्ता परमात्मा पर हो जाती है। ऋणों से उर्ऋण होने लगता है। उसका बोझ हल्का हो जाता है और उसके कार्य सुगमता से होने लगते हैं। जैसे ढलान की ओर मंजिल हो, पीछे से वायु का भी वेग हो, तो साइकिल सवार बिना पैडल मारे लक्ष्य तक पहुँच जाता है। समर्पण का यह फल है।

११. तात्पर्य यह है कि परमात्मा से हमें आज्ञाकारी होकर अपना नाता ऐसा बनाना चाहिए, जैसे पिता-पुत्र का या गुरु-शिष्य का अथवा पति-पत्नी का अर्थात् शिशुभाव, शिष्य भाव और पत्नीभाव ये वरेण्यं की **चौथी साधना** है।

लेखक को तो माता का सम्बन्ध अधिक प्रिय लगता है; कारण कि परमात्मा का हृदय माता से भी अधिक कोमल है। इस भावना से दृष्टि मातृवत्, विकार रहित, पवित्र हो जाती है।

१२. वरेण्यं की सिद्धि परमात्मा की भक्ति से होती है। भक्ति का अर्थ है वेद में दी गयी परमात्मा की आज्ञाओं का पालन करना और उसके प्रति अनन्य श्रद्धा और प्रेम रखना। भक्ति के तीन अङ्ग हैं—

(i) स्तुति (ii) प्रार्थना (iii) उपासना।

जैसे आम के तीन भाग होते हैं—

(i) छिलका (ii) गुठली (iii) गुद्दा।

ये तीनों इकट्ठे हों तो आम कहलाता है। अब इन अङ्गों की व्याख्या की जाती है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. स्तुति

१३. भगवान् के गुणों का कथन, कीर्त्तन, श्रवण, सत्य उपदेश करना और उनकी देनों, उपकारों एवं अद्भुत महिमा को अनुभव करके आत्मीय प्रेम, श्रद्धा, प्रीति से मधुर स्वरों में भक्ति-गायन को स्तुति कहते हैं।

स्तुति का फल

१४. इससे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव स्तोता के जीवन में आते हैं। छान्दोग्य-उपनिषद का पहला प्रपाठक, पहला खण्ड और छठीं ऋचा के अर्थ हैं—

'जब भगवान् की स्तुति संगीत में, प्रेम भरी वाणी द्वारा प्राणशक्ति से गायी जाए तो मनुष्य पूर्णकाम हो जाता है। जैसे दो मित्र परस्पर मिलते हैं तो दोनों एक दूसरे की कामना को पूर्ण करते हैं, इसी प्रकार जब संगीत के साथ भगवान् का नाम मिल जाए तो सकल मनोरथों की सिद्धि होती है।'

२. प्रार्थना

१५. ऋषियों ने कहा कि—अपने पूर्ण पुरुषार्थ करने के उपरान्त यदि इष्ट सिद्धि में विघ्न आते हों या सफलता दिखायी न देती हो तो सिद्ध गुरुजनों से अथवा आत्मभाव से प्रभु के ध्यान में मग्न होकर, उसके सम्मुख बैठकर अपने कल्याण और उत्थान के लिए याचना करना, सहयोग माँगना प्रार्थना कहलाती है। जो अपने कल्याण और सबके उपकार के लिए हो, वह निश्चय पूर्ण होती है। वैदिक प्रार्थनाएँ ऋतुमयी होती हैं, अर्थात् तदनुसार कर्म की उपेक्षित हैं। इस महत्त्व को अवश्य जान लें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना का फल

१६. प्रार्थना से अहंकार, अभिमान और दोषों की निवृत्ति होती है और हृदय द्रवित होता है। शान्ति मिलती है, नम्रता आदि सद्गुणों की प्राप्ति, उत्साह, उल्लास आनन्द की उपलब्धि तथा अन्तःकरण की शुद्धि होती है, जिससे उपासना की योग्यता बनती है और परमात्मा से प्रीति बढ़ती है।

प्रार्थनाएँ कैसी हों ?

१७. वेद में सेकड़ों मन्त्र प्रार्थना के हैं। महर्षि देव दयानन्द जी ने उपासना-मन्त्रों का प्रारम्भ भी प्रार्थना से किया है, कुछ और मन्त्र भी दिए जाते हैं:—

देवता-सविता

(i) **ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आ सुव।** —(य० ३०-३)

अर्थः—हे सकल जगत् के उत्पत्ति कर्त्ता, समग्र ऐश्वर्य युक्त, शुद्ध स्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कीजिए, जो कल्याण-कारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं, वह सब हमको प्राप्त कीजिए।

इस मन्त्र से स्पष्ट होता है कि जब तक दुर्गुण दूर नहीं होते, सद्गुण नहीं आ सकते और बिना इन गुणों के लाये उपासना-भक्ति से कोई लाभ नहीं हो सकता। इसलिए विषय-विकारों को दूर करने, जीवन में सात्विकता लाने और यम-नियम-पालन के लिए प्रार्थना सहायक है।

१८. बृहदारण्यकोपनिषद, अध्याय १, ब्राह्मण ३ ऋचा २८ में सत्य-आचरण की पवित्र प्रार्थना इस प्रकार है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असतो मा सद् गमय ।
तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
मृत्योर्माऽमृतं गमय ।

(बृ. उप. १-३-२८)

अर्थः – हे परमात्म देव ! आप कृपा करके मुझको
असत्य से सत्य की ओर ले चलें ।
अंधकार से ज्योति की ओर ले चलें ।
और **मृत्यु से अमृत की ओर ले चलें ।**

इस पवमान मन्त्र का भाव यह है कि असत्य ही अन्धकार है, मृत्यु है । अर्थात् असत्य आचरण से सर्वनाश है और सत्य से ही ज्ञान की ज्योति जगमगाती है । जिसके अनुपम प्रकाश में मोक्ष में प्रवेश और अमृत का पान होता है । अमृत का अर्थ है-सब दुःखों से छूटना तथा आनन्द की प्राप्ति करना ।

अपने कल्याण की प्रार्थना—

१६ **देवता-सोम**

(iii) ओ३म् तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ।
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ।

हम अपने प्रातः समाज के दैनिक सत्संग में हवन की समाप्ति पर यज्ञ का शेष घृत दोनों हाथों से लगा, पूजा की अग्नि से तापते हैं, जब तक यह (असस्तो मा-) और अगला लिखा मन्त्र (य०—१६-६) गाये जाते हैं । फिर हाथों को मल कर मुख में ज्ञानेन्द्रियों पर फेरते हैं ।

इन प्रार्थना-मन्त्रों के अर्थ और उसकी अन्तर्निहित भावना इस सारी क्रिया में यदि एकाग्रता से ध्यानमय रहें तो मेरा अपना अनुभव है कि इस सूक्ष्म प्रसाद से याजक का मस्तिष्क तेजवन्त हो जाता है और वह वेदमन्त्रों के आध्यात्मिक अर्थों और रहस्यों को सुगमता से जान लेता है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलमसि बलं मयि धेहि ।
ओजोऽस्योजो मयि धेहि ।
मन्युरसि मन्यु मयि धेहि ।
सहोऽसि सहो मयि धेहि ।।[1]

(य० १९-९)

अर्थः—

हे ब्रह्म तेज के परमविभु, तेजवन्त हमको कर दो ।
ओ वीर्य से भरपूर प्रभु, एक कन इसका दे दो ।।

हो सर्व बलों के तुम स्वामी, हमको भी बली बना देना ।
और दिव्य ओज के महाधनी, इससे भी हमें सजा देना ।।

हे मन्युवर प्रीतम हमरे, निज दात यह भी प्रदान करो ।
और सहनशील अद्भुत प्यारे, सहन शक्ति का दान करो ।।

तुम सर्व वरों के दाता हो, ये दान तुम्हारे मिल जायें ।
जिससे कि तेरे सुजाता हो, भवसागर से हम तर जायें ।।

वेद में भक्त की यह एक सुन्दर प्रार्थना है—

२०. **देवता-इन्द्रः**

ओ३म् त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो

---

१. मयि धेहि = मुझ में धारण कराओ । सत्संग में यज्ञ के पश्चात् हम इस मन्त्र की प्रत्येक पंक्ति के साथ ओ३म् लगाकर पढ़ते हैं और सम्मिलित पढ़ने के कारण 'मैं' की जगह 'हम' का प्रयोग किया है । साधक जब अकेला हो तो अर्थों के अनुसार 'मैं' लगा लें । यदि प्रार्थना के इन मन्त्रों के अर्थों की ऐसी कविता 'यज्ञ रूप प्रभो हमारे भाव उज्ज्वल कीजिए' के विकल्प में गायी जाए, तो याजक को इससे अधिक आध्यात्मिक लाभ और उन्नति हो सकती है, यह लेखक का अपना विचार है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बभूविथ । अधा ते सुम्नमीमहे ।

(ऋ० ८-९८-११, सा० ११७०, अ० २०-१०८-२)

त्वं हि नः पिता—हे परमेश्वर ! आप निश्चय ही सबके (पिता) पालक हो ।

वसो= निवास दाता, वसाने वाले वसुपति, धन-ऐश्वर्य देने वाले

त्वं माता शतक्रतो= आप सेकड़ों प्रज्ञाओं और कर्मों से युक्त हैं, अनन्त क्षमताओं से सम्पन्न हैं। हमारे शरीर, बुद्धि और चरित्र का निर्माण करने वाली माता निर्माता हैं।

बभूविथ= इसलिए आपसे

मीमहे= याचना, कामना तथा प्रार्थना करते हैं

सुम्न= (कि)आप हम पर सदा सुप्रसन्न रहें तथा हम आपसे आनन्दित हों।

इस मन्त्र में परमात्मा के चार सम्बोधन हैं—पिता, माता, वसो और शतक्रतो।

२१. सम्बोधन का अर्थ है सम्यग्बोध। सम्बन्ध होने पर माता और शिशु के हृदय में स्नेह और संवेदन के भाव बन जाते हैं। सम्बोधन के अनुसार अभिलाषायें सँजोते हैं। इस मन्त्र में प्रार्थना का कमाल है कि उपासक सुपुत्र बनकर पिता से केवल उनकी प्रसन्नता की कामना करता है। जैसे बालक नचिकेता (कुछ पुस्तकों में नचिकेता की आयु ८ वर्ष लिखी है और कुछ में १० वर्ष) ने यम से पहला वर माँगा था कि 'जब मैं अपने पिता वाजश्रवस् से मिलूं तो वे शान्त-संकल्प क्रोध-रहित और प्रसन्नमन हों।'

वैवस्वत (यम) ने कहा—'तथास्तु।' --(कठोपनिषद् १-१०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२. पितृनिष्ठा और मातृश्रद्धा से सुमति बनती है, जिससे कल्याण और त्राण होता है। नचिकेता का यह वर माँगना, उसकी पितृभक्ति को दर्शाता है।

कविता में अर्थः—

वसु हो प्यारे भगवन् ! आप जो सबको बसाते हो।
पिता बन कर के पालन, निरन्तर सबका करते हो॥
ऋतम्भरा-प्रज्ञा देती हो, ऐसी तुम अद्भुत माता हो।
अनन्त उपकारों की वर्षा, सदा तुम हम पर करती हो।
बिना माँगे ही माँ तुम तो हर इक पात्र को देती हो।
हमें दो दान भक्ति का, यदि कुछ देना चाहती हो॥
बनें हम आज्ञाकारी, तेरी प्रसन्नता को पायें।
दो आशीष माँ प्यारी, हमारी हों सुगम राहें॥

भक्त-याचना

२३. भक्त-शिरोमणि वरदाता से अपने परम-कल्याण की शिक्षा अथवा वरदान माँगा करते हैं। भौतिक पदार्थों और क्षणिक सुखों की कभी याचना नहीं करते, बल्कि ब्रह्मविद्या के गहनतम रहस्यों को जानना चाहते हैं, जैसे कि बालक नचिकेता ने यम से दूसरा वर यह माँगा था—"देव ! अग्निहोत्र यज्ञों से स्वर्ग-सुख की प्राप्ति होती है, इसे कृपया समझाइये।"

(कठो० १-१३)

यम ने उसका उपदेश देकर अन्त में यह कहा कि "हे नचिकेता ! यह तेरा स्वर्गसाधक यज्ञ प्रश्न बहुत सराहनीय है, मैं तुझे अपनी ओर से वर देता हूँ कि यह यज्ञ अग्नि तेरे नाम से प्रसिद्ध होगी।" (कठो० १-१६)

नचिकेतन-अग्नि का निष्काम भाव से श्रद्धापूर्वक जो चयन करेगा, वह ज्ञान, कर्म, उपासना तीनों विद्याओं को संजोएगा, माता-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिता और गुरु भक्ति का फल पाएगा और तीनों लोकों को पार कर मृत्यु के बन्धन से मुक्त, शोक रहित हो कर याजक स्वर्ग-लोक में आनन्द सहित रहेगा। (कठो० १-१७)

स्वर्गलोक से यहाँ ऋषि का अभिप्राय ब्रह्मलोक से है।

२४. नचिकेता ने तीसरा वर माँगा कि "मृत्यु के पश्चात् आत्मा की क्या गति होती है ? कृपया इसे बतायें।"

(कठो० १-१९,

इस पर महर्षि ने कहा कि "यह सूक्ष्म विषय है, सुगमता से जानने योग्य नहीं। देवों को भी इस में सन्देह है, कोई और वर माँगो।"

नचिकेता ने उत्तर दिया कि "आप से बढ़कर इस रहस्यों को दर्शाने वाला और कोई नहीं एवं इसके अतिरिक्त और कोई वर माँगना इतना महत्वपूर्ण नहीं।"

पुनः ऋषि ने इस जिज्ञासा से हटाने के लिए अनेक प्रलोभन दिए (प्रतीत होता है कि महर्षि नचिकेता को आत्मा और ब्रह्मज्ञान का अधिकारी जान कर ही देना चाहते थे)—

"नचिकेता ! सौ वर्ष तक जीने वाले पुत्र-पौत्रों को माँगो।"
"बहुत पशु, घोड़े, हाथी, स्वर्ण, ऐश्वर्य, रमणीय सुन्दर स्त्रियाँ, पृथ्वी का राज्य, जितना वर्ष जीना चाहो उतनी आयु, जो भी कामनायें मनुष्यलोक में दुर्लभ हैं, उन सबको माँग लो, पर मृत्योपरान्त आत्मा की क्या गति होती है ? इसे मत पूछो।"

महर्षि ने नचिकेता को इस प्रश्न को न पूछने का तीसरा प्रयास किया, तो उस पर—

नचिकेता ने यम से कहा—"महाराज ! ये सब वस्तुयें नश्वर, क्षणिक, निःसार, निस्प्रयोजन हैं, इनसे मनुष्य की तृप्ति कभी नहीं हो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती, इन्हें लेकर क्या करूँगा। इसलिए मैं ज्ञानप्राप्ति के वर को क्यों न मागूं, जिससे अमर पद की प्राप्ति हो सकती है।"

२५. परम भक्त की क्या याचना होती है। इसका दूसरा उदाहरण लीजिए—

राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं, बड़ी सुनीति, जिसके लड़के का नाम ध्रुव था। दूसरी सुरुचि, जिसके लड़के का नाम उत्तम था। इस छोटी रानी से राजा अधिक प्रेम करते थे। एक दिन उत्तम अपने पिता की गोद में खेल रहा था, इतने में पाँच वर्षीय बालक ध्रुव विद्यालय से आकर पिता की गोदी में बैठने लगा, किन्तु रानी सुरुचि ने उसको नहीं बैठने दिया, निराश होकर ध्रुव ने अपनी माता सुनीति से जाकर कह दिया कि 'उसे पिता की गोद में बैठने से वञ्चित कर दिया गया।' सुनीति माता ने कहा कि 'उस परमपिता परमात्मा की प्रार्थना करो, जिसकी विस्तृत गोद से कोई नहीं उतार सकता।'
दोनों जंगल की ओर चल दिए, रास्ते में नारद मुनि ने इन को लौट चलने को कहा कि 'बच्चा इतनी छोटी उम्र में तपस्या के योग्य नहीं है, वे नहीं माने। तब उनकी अगाध प्रभु-भक्ति देखकर उन्होंने योग की शिक्षा दी। यमुना के किनारे मधुवन में वे योग-साधना करते रहे।

कुछ साल बाद ध्रुव के वियोग में राजा उत्तानपाद व्याकुल हो गए। नारद मुनि जी ने उन्हें बता दिया था कि 'वे मधुवन में तप कर रहे हैं।' राजा वहाँ जाकर ध्रुव और सुनीति को घर ले आए और बाद में उसका राजतिलक कर दिया। किन्तु, ध्रुव में वैराग्य उदय हो चुका था, उसका मन राज्य-शासन के कार्यों में नहीं लगा और अशान्त रहने लगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब वह अपने भाई उत्तम को राजगद्दी पर बैठा कर पुनः जंगल में तप साधना, उपासना करने लगा।

उसकी भक्ति की पराकाष्ठा को देखकर उसके इष्ट भगवान् विष्णु वहाँ आए, और कहा—

'वत्स ! हम तुम्हारी महान् भक्ति से बहुत प्रसन्न हैं, माँग, क्या चाहते हो ?'

उत्तर मिला—

"नहीं चाहना है कोई और दिल में।
तुम्हें चाहता हूँ यही कामना है॥"

२६. तीसरा उदाहरण देखिए—

परमहंस रामकृष्ण जी को गले का कैंसर था, बहुत इलाज कराया ठीक नहीं हुए। उनके भक्तों ने कहा कि "महाराज यदि आप जगत्-जननी मां से प्रार्थना करें तो यह रोग ठीक हो जाएगा।"

उन्होंने उत्तर दिया—

"वह मेरी प्यारी दयालु माँ मेरे कल्याण को मुझसे अधिक जानती है, मुझे इस बीमारी से कोई कष्ट नहीं है।"

२७. साधक हर हाल-काल में महर्षि दयानन्द की तरह विष दिए जाने पर भी मरते हुए कहा करते हैं—प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो, बस हमारी यही कामना है कि हम तेरे आशीर्वाद के पात्र बने रहें।

वरेण्यं के साधकों को प्रभु से ऐसी प्रतीति और प्रीति, उसकी दया एवं न्याय पर इतना अटल, अटूट विश्वास होता है, कि उनके हृदय से आत्मीय ऐसी प्रार्थनायें निकला करती हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२८. (३) उपासना

मन और इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाकर, एकाग्र मन से परमात्मा के स्वरूप और गुणों का ध्यान-चिन्तन द्वारा समीपस्थ होकर, उसमें प्रेम-मग्न और समाहित होना और रहना उपासना कहलाती है। योग के शब्दों में इसे प्राणिधान कहते हैं।

उपासना का फल

२९. छान्दोग्योपनिषद् के ७वें प्रपाठक २६वें खण्ड में लिखा है कि एक समय नारद जी ने सनत कुमार के पास जाकर कहा कि 'हे भगवन् ! मुझे ब्रह्मविद्या का ज्ञान दें', इस पर उन्होंने पूछा कि 'आप पहले जो जानते हैं, उसे सुनाइए, उसके आगे मैं बताऊँगा।' (बहुत लम्बा उपदेश है वह वहाँ पढ़ें) तब सनत कुमार जी बोले 'इन्द्रियों से जो विषय ग्रहण किए जाते हैं उनका नाम आहार है। उपासना से आहार-शुद्धि होती है, जिससे फिर अन्तःकरण निर्मल होता है, अन्तःकरण के पवित्र होने पर ध्रुवस्मृति हो जाती है। स्मृति-ज्ञान के लाभ होने पर अज्ञान, पाप आदि सारी ग्रन्थियों का सर्वनाश हो जाता है। अविद्या आदि क्लेश एवं काम, क्रोध आदि दोष मिट जाते हैं। विवेक-ख्याति उत्पन्न होती है। परम वैराग्य बन जाता है, ब्रह्म से मेल और परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है'। इस प्रकार आत्म-परमात्म स्वरूप को दर्शा कर महात्मा सनतकुमार जी ने हम सबका कल्याण किया।

३०. गायत्री जप, ध्यान, योगाभ्यास, सन्ध्या, हवन-यज्ञ भी उपासना के अङ्ग हैं। ये सब स्तुति, प्रार्थना सहित ब्रह्म-यज्ञ कहलाते हैं। इसी का नाम नित्यकर्म है। जिसका सबसे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक प्रचार स्वर्गीय पूज्य महात्मा प्रभु आश्रित जी ने किया।

३१. जो साधक स्नेह, प्रेम, भक्तिमय भावों को संजोकर एकाग्र-मन, सुमन हृदय से उषाकाल में प्रतिदिन इस त्रिवेणी में डुबकी लगाते हैं तो उन्हें प्रतीति होती है कि यह भक्ति की परम रसायन—

हर रोग की अचूक औषधि है।
प्रत्येक कठिनाई का सरल हल है।
सब समस्याओं का निश्चय-समाधान है।
दुःखों के भँवर से बचना है।
प्रत्येक साधना का अमोघ साधन है।
और परमात्मा का साक्षात्—
वरेण्यं की सिद्धि निश्चय इसी से प्राप्त होती है।

स्तुति, प्रार्थना, उपासना का नित्यकर्म, **यह साधना का पांचवा अभ्यास है।**

३२. कुछ और भाव ग्रहण करें—

जैसे सजग, प्रकाशित और द्रवित हृदय से सरस कविता का जन्म होता है अथवा नृत्य और संगीत दोनों एक ही लय स्वर और तान में बंधे हों; तो श्रोता व दर्शक आनन्दित होते हैं। ऐसे ही जब स्तुति, प्रार्थना, उपासना से एक तत्त्व ब्रह्म की स्वरमयी झंकार निकलती है तो परमात्मा प्रसन्न हो साधक पर आशीर्वादों की सुमन-वर्षा करते हैं।

यह जानकर उपासक के प्रभु प्रेम में तरंगित हृदय से यह विचार मुखरित होते हैं—

शरीर और आत्मा का मेल प्राणों से है जैसे,
आत्मा और परमात्मा का मिलन उपासना से है वैसे॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए—

पिला दो भक्ति का मेरे साकी मुझे इक जाम।
ताकि पहुँचूं मैं बहुत ऊँचे ब्रह्म-धाम॥

तो गगन से देव वाणी सुनाई देती है—

जिन्दगी के हर श्वांस में मौत छुपी बैठी है।
तू सदा याद रखे तो लिपट वो बन जाती है॥

॥ ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!! ओ३म् ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

६ उपासना से लाभ

१. साधक ने स्तुति और प्रार्थना के अभ्यास से अपने दोष, दुर्गुण, अवगुण दूर करके अन्तःकरण को शुद्ध किया, जो अब उपासना के योग्य हुआ। अब जानें कि उपासना से क्या लाभ हैं, क्योंकि नफा जाने बिना शुभ कर्मों में भी प्रवृति-प्रीति नहीं बनती। लोग बहुधा कहते हैं कि 'परमात्मा के उपासना की आवश्यकता क्या है? जब किए हुए पाप तो माफ होते नहीं और कर्मों के अनुसार फल मिलता है।' वे तनिक विचार करें कि जिस परम दयालु के सुख प्रदान करने वाले अनेक पदार्थों की पुष्कलवृष्टि में वे मौज उड़ाते हैं, उसका धन्यवाद न करना कितनी कृतघ्नता है, जो महापाप है। शास्त्रों ने इसे महती विनष्टि कहा है।

२. **इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।**
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥
(केनो० २-५)

अर्थ—

सब भूत-प्राणियों में भगवान् की सत्ता का चिन्तन कर के धीर जन उपासना द्वारा परमात्मा का साक्षात् कर मुक्त हो जाते हैं। यदि इस मानव-जन्म में भगवान् को न जाना, न आराधा तो महती विनष्टि, सर्वनाश है। फिर ऐसा अवसर पाना कठिन है। आत्मा, परमात्मा का चिन्तन-मनन करना ही परम अमृत पद की प्राप्ति का पथ है।

३. हमारी जीवन-यात्रा बड़ी लम्बी और विकट है। यह संसार युद्ध-क्षेत्र है, जहाँ प्रत्येक विजय पाने के लिए बड़ा संघर्ष

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना पड़ता है। झंझट-झमेले, विघ्न-बाधायें, रोग-शोक उपस्थित होते हैं। हम बहुत अल्पज्ञ, असमर्थ और अयोग्य हैं। कभी ऐसी दीन-हीन अवस्थायें बनती हैं कि समस्याओं का कोई हल दिखाई नहीं देता। बुद्धि का प्रकाश मन्द है, तिमिर घना है, उसके निवारण में मेधा अशक्त है, आँखों के आगे अन्धकार छा जाने के कारण क्लेशों से छूटने का कोई मार्ग दृष्टिगोचर नहीं होता! महत्वाकांक्षा मुरझा जाती है। कल्पना के पंख टूट जाते हैं। आशा का दामन छूट जाता है। निराशा के बादल छा जाते हैं। विषाद-अवसाद की स्थिति बन जाती है। अपने पराए हो जाते हैं। कोई साधन और प्रयास सफल नहीं होते।

इस दशा में उपासक अपने प्रियतम का विनीत आह्वान करता है। गायत्री माँ की शरण लेता है, तो उसे निश्चित प्रेरणा मिलती है और उसका कल्याण-मार्ग प्रशस्त होता है। परमात्मा का अदृश्य वरद हाथ उसकी रक्षा के लिए किसी रूप में अनायास प्रकट हो जाता है, जिसका अनुमान नहीं हो सकता था।

४. महाभारत काल में कौरवों की सभा में जब द्रौपदी की लाज दुष्ट दुःशासन के द्वारा लूटी जा रही थी और उसका चीर-हरण हो रहा था तो भगवान् कृष्ण की याद करते ही उन्होंने उनकी लाज बचायी थी। ऐसे दयालु परमात्मा सच्चे साधक की धार्मिकता में श्रद्धा-विश्वास बढ़ाने के लिए सपनों, दृश्यों, घटनाओं या उपदेशों द्वारा प्रेरणायें दिलाते हैं। पूज्य गुरु महाराज जी की 'ईश्वर का स्वरूप' पुस्तक में इसके कई उदाहरण अवश्य पढ़ें। वेद के बहुत मन्त्र इस सत्य की पुष्टि करते हैं। जैसे—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता-इन्द्रः

५. बृबदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये साधु कृण्वन्तं अवसे ॥

(ऋ० ८-३२-१०)

बृबदुक्थं =	स्तुति करने योग्य इन्द्र को
हवामहे =	हम पुकारते हैं।
सृप्रकरस्नम् =	सब जगह जिसकी भुजाएँ फैली हैं।
ऊतये =	अपनी रक्षा के लिए
अवसे =	पालन-पोषण के लिए
साधु कृण्वन्तं =	जो सदा कल्याण ही करते हैं।

ईश हमारा पालन-पोषण और कल्याण सदा ही करते हैं।
विपत्ति पड़े तो सुन पुकार, शीघ्र रक्षा को आते हैं ॥ १ ॥

विशाल भुजाएँ सर्वत्र इतनी, जिनका नहीं कोई शुमार।
देख भक्तजन चकित रह जाते, महिमा इतनी अपरम्पार ॥२॥

६. इन्हीं भावों को कवियों ने ऐसा दर्शाया है:—

इन्सान की अज़्मो हिम्मत से, जब दूर किनारा होता है।
तूफान में टूटी किश्ती का, भगवान सहारा होता है ॥ १ ॥

खुदी को कर बुलन्द इतना कि, हर तकदीर से पहले।
खुदा बन्दे से, खुद पूछे, बता तेरी रज़ा क्या है ॥ २ ॥

कबिरा जब हृदय निर्मल भया, जैसे गङ्गा नीर।
पीछे-पीछे हरि फिरें, कहत कबीर कबीर ॥ ३ ॥

भक्ति में यह ताकत है कि बन्दे को खुदा कर दे।
मुहब्बत में यह लाज़म है कि जो कुछ है फिदा कर दे ॥ ४ ॥

७. वेद का यह मन्त्र उपासना का महत्त्व इस प्रकार दर्शा रहा है—

ओ३म् य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्य देवाः । यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

(य० २५-१३)

जो आत्मज्ञान का दाता, शरीर, आत्मा और समाज के बल देने हारा, जिसकी सब विद्वान् लोग उपासना करते हैं और जिसका प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन, न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं। जिसका आश्रय ही मोक्ष-सुखदायक है। जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही मृत्यु आदि दुःख का हेतु है। हम लोग उस सुखस्वरूप सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए आत्मा और अन्तः करण से भक्ति विशेष करें अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें। (अर्थः—महर्षि दयानन्द)

८. भगवान् कृष्ण का भी ऐसा उपदेश है:—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यम् ।।

(गी० ९-२२)

जो अनन्य भाव से भक्तजन, स्मरण करते सुबह-शाम।
उनके संरक्षण की जिम्मेवारी, ले लेते भगवान् तमाम ।।

९. ईश्वर-विश्वासी रोगों को वेदमन्त्रों के जप और यज्ञों से ठीक कर लेते हैं। जिन्हें डाक्टर जवाब दे दें। श्रद्धा युक्त विश्वास साकार होता है। मेरा अपना अनुभव ऐसा है।

लेखक का सुपुत्र श्री विजय सहगल नवम्बर-दिसम्बर १९८४ में सेंट स्टीफन हॉस्पिटल, तोस हजारी, दिल्ली में Pankreon के भयानक रोग का इलाज करा रहा था। पहला

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऑपरेशन असफल रहा, अवस्था खतरनाक हो गयी। डाक्टर फिलिप कौशिक जो दिल्ली के बेहतरीन सर्जन हैं; उन्होंने मुझसे कहा कि 'अब इसके बचने की एक ही उम्मीद हो सकती है कि पेट का दुबारा एक और ऑपरेशन किया जाय।' मेरे पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया कि 'इससे १० प्रतिशत ठीक होने की आशा है' इसके अलावा और कोई चारा नहीं है' (इस रोग में खून के बजाय पीप बन जाती थी)।

१०. मैं नित्य की भांति अगली प्रभात जब वेद का स्वाध्याय करने लगा तो यह मन्त्र मेरे ध्यान में आया—

देवता=सोम

अभ्यूर्णोति यन्नग्नं भिषक्ति विश्वं यत् तुरम् ।
प्रेमन्धः ख्यत् निःश्रोणो भूत् ॥

(ऋ० ८-७९-२)

वेदमाता इस मन्त्र में कितना स्पष्ट कह रही हैं कि उस करुणा परायण की दया अवर्णनीय है, जो भी उसकी शरण में जाता है, अपनी न्यूनताओं को पूर्ण कर लेता है।

यत्=जो	जो किसी भी गुण वस्त्र से नग्न
नग्नम्=नग्न है (उसे ईश)	है, तो उसे दयालु प्रभु ढक देते
अभ्यूर्णोति=ढक देते हैं,	हैं और उसकी कमी को पूरी कर
आच्छादित कर देते हैं	देते हैं।
यत्=जो	जो बीमार, रोगी हैं
तुरम्=आतुर, रुग्ण पीडित दुःखी	उन सबको
विश्वं=उन सबकी	रोग रहित और
भिषक्ति=चिकित्सा कर देते हैं।	तन्दुरुस्त कर देते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्धः=अन्धे	जो किसी प्रकार से भी असमर्थ
प्रेख्यत्=देखने लगते हैं	हैं, उसे शक्तिशाली समर्थ बना
श्रोणः=लूले, पङ्गु	देते हैं।
निःभूत=चल निकलते हैं।	

अर्थात् उसकी कृपा के पात्र बनने पर हर प्रकार के दुःख, रोग, शोक, कमियां, कष्ट क्लेश, आधिव्याधि सब मिट जाते हैं।

सोम प्रभु की चरण-शरण में, जो अर्पित हो जाते हैं।
वाणी से है अगम-अगोचर, कल्याण जो उससे पाते हैं॥ १॥

जिस भी गुण से नग्न दीखते, आच्छादित हो जाते हैं।
परमचिकित्सक ऐसे दयालु, रोग सभी मिटाते हैं॥ २॥

नेत्रहीन ज्योति पा लेते, पङ्गु चलने लगते हैं।
सोम प्रभु की चरण-शरण में, जो अर्पित हो जाते हैं॥ ३॥

११. इस मंत्र पर श्रद्धापूर्वक विश्वास कर मैंने 'अग्निहोत्र यज्ञ' में आया हुआ मन्त्र पर विचार किया।

देवता—वरुण

स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसोव्युष्टौ।
अवयक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि॥

(ऋ० ४-१-५, य० २१-४)

अर्थः—

स त्वं नो अग्ने=	हे ज्योति स्वरूप प्रभु! हमारे
अवमो भवोती नेदष्ठिो=	अति निकट आओ अपने रक्षा-साधनों के साथ
अस्या उषसो व्युष्टौ=	इस प्रभात की सुनहरी वेला में हे प्रचण्ड ज्योति से देदीप्यमान!

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवयक्ष्व नो वरुणम् =	याजकों के वरुण-पाशों बन्धनों को काटा दो
रराणो=	प्रसन्नता से रमण करो।
वीहि=	स्वीकार करो
मृडीकं =	(हमें) सुखी करो।
सुहवो=	सुगमता से बुलाने योग्य
न एधि=	हमें प्राप्त हो जाओ।

प्रचण्ड ज्योति से देदीप्यमान, तुम अग्ने बड़े दयालु हो।
याजकों के आह्वान पर, अति समीप आ जाते हो॥ १॥
इस उषा की सुनहरी वेला में, यह विनय प्रभु स्वीकार करो।
प्रीति-रीति दर्शाओ आकर, अन्तर में प्रिय रमण करो॥ २॥

सुखी करो सब बन्धन काटो, निज रक्षा से भरपूर करो।
आत्म-बलिदान की हूं भेंट लिए, आओ इसे स्वीकार करो॥ ३।

१२. इन अर्थों से स्पष्ट था कि इस मन्त्र के यज्ञ से जीवन की रक्षा होगी, रोग का बन्धन कटेगा और शरीर नीरोग और सुखमय हो जायेगा। उसी रोज (५-१२--८४) को समाज में जाकर अपने सहयाजक श्री जगदीश शरण सक्सेना जी से मैंने कहा कि विजय के स्वास्थ्य के उपलक्ष्य में लगभग एक माला '**स त्वं नो**'—मन्त्र की गायत्री मन्त्र के साथ सम्पुट करके आज से आहुति दिया करूंगा। उन्होंने भी पूरा सहयोग दिया और विजय के ठीक होने तक ऐसी आहुतियां देते रहे।

१३. हस्पताल में जाकर मैंने डॉ. कौशिक जी से कह दिया कि आप ऑपरेशन कर दें। ऑपरेशन के २४ घण्टे बाद मैं सांयकाल ६-१२-८४ को Intensive care में उसे देखनें गया। हालांकि मुझे कहा गया था कि वह अभी खतरे में है, होश नहीं है। परन्तु मैं जब उसके पलंग के पास गया तो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी हैरानी की कोई हद नहीं रही, जब मेरे कानों में आवाज़ आई "पिताजी ! आपकी प्रार्थना स्वीकार हुई, मैं बिल्कुल ठीक हो गया।"

१४. मैं अचम्भे में था कि स्वर विजय का है, पर वह बोलता दिखाई नहीं दिया, न उसने पूरी तरह आँखें खोली हैं। मैं समझ गया कि यह **देववाणी** है। मुझे मन्त्र की चिकित्सक शक्ति में विश्वास दिलाने के लिए और भक्ति में उत्साह बढ़ाने के लिए प्यारे प्रभु ने यह चमत्कार दिखाया है। मेरे नयन सजल हो गए। मस्तक ईश प्रेम में झुक गया और मैं उस शान्त ध्यान-मुद्रा में कुछ देर रुक, बाहर निकला। आकर मैंने विजय की धर्मपत्नी प्रोमिला जी और माता जी को बताया कि वह निश्चय ठीक हो जाएगा, चुनांचे ३१ दिसम्बर १९८४ को हम विजय को घर ले आए। प्रोमिला जी ने कई महीने उसकी जितनी अगाध सेवा की, उसकी सराहना के लिए मेरे पास यथार्थ शब्द नहीं।

१५. कई दिन हस्पताल का वह ब्रह्मघोष—"पिताजी ! आपकी प्रार्थना स्वीकार हुई, मैं बिल्कुल ठीक हो गया।' मेरे कानों में गूंजता रहा। सप्ताह बाद एक प्रभात उसी याद को लेकर उठा, हृदय इतना द्रवित हो गया कि प्रभु-कृपा से यह कविता बन आयी—

परम पिता के उपकारों की, जब स्मृति बन आती है।
देववाणी की गूंज मेरे कानों में समायी रहती है।। १।।
वह प्रेम की मस्ती आती है दीवानी दशा हो जाती है।
रोमाञ्चित हर अंग होता है दिव्य दृष्टि बन आती है।। २।।
जल-थल में, वन उपवन में, सागर की उठती लहरों में।
पहाड़ों, रेगिस्तानों में, वीरानों और शहरों में।। ३।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्णिमा को चाँदनी में, अमावस् की अन्धेरी रातों में।
सावन को बरसातों में, आँधी और तूफानों में ॥४॥

हर वस्तु और हर जलवे में, प्रभु रूप सुधा लहराती है।
हर सू उस प्यारे प्रीतम की, छबि मुझे हरषाती है ॥५॥

सुध-बुध अपनी खोता हूँ, जब शरण ईश की होता हूँ।
धन्य क्षण वह कहता हूँ और भाग्य अपना सराहता हूँ ॥६॥

उस अवर्ण्य की महिमा का, क्या वर्णन कर सकता हूँ।
अनुभव की जो वस्तु है, नहीं शब्दों में ला सकता हूँ ॥७॥

ब्रह्ममयी स्थिति होने पर भावुकता में खो जाता हूँ।
भाव समाधि बनती है, उसका कुछ चित्रण करता हूँ ॥८॥

कि नैन सजल हो जाते हैं, उन्माद ऐसा छा जाता है।
निष्प्राण मानो बन जाता हूँ और कण्ठ रुद्ध हो जाता है ॥९॥

मन मौन अवस्था पाता हैं; चित् चिन्तन सभी गँवाता है।
विवेक बुद्धि में आता है, अहंकार विलीन हो जाता है ॥१०॥

दिव्य गीत सुनाई देते हैं, ऐसी श्रुति बन आती है।
दिव्य दर्शन होने लगते हैं, ऐसी अनुभूति होती है ॥११॥

रस, गन्ध-स्पर्श की दिव्यता से, भक्त हृदय हो जाता है।
आनन्द ऐसा छा जाता है, श्रद्धा से मस्तक झुकता है ॥१२॥

वह प्यारा ऐसा भाता है, कुछ और नज़र नहीं आता है।
उस देव की अतिशय कृपा का, जब भी आवाहन होता है ॥१३॥

१६. हस्पताल में विजय ने सुगमता से उस बीमारी को झेला, उस का रहस्य यह था कि वह हर समय मौन रह कर भक्ति संगीत के टेप सुनने में मग्न रहता था। केवल आध्यात्मिक चर्चा करना ही उसे प्रिय लगता था। पूजनीया बहन शान्ति देवी जी अग्निहोत्री देर तक बैठकर आशीर्वाद दे जाती थीं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रिय बन्धु श्री खैराती लाल जी सब्बरवाल के क्या गुण गाऊँ। जिनकी शारीरिक सेवा उपमा रहित है। वे आकर विजय के शरीर को दबाया करते थे। जाने-अनजाने रोगियों की हर प्रकार से सेवा करना यह उनकी दिनचर्या है।

सेवा-धर्म महान् है। इसके पालन से सुन्दर, नीरोग शरीर, लम्बी आयु और उपासना का फल प्राप्त होता है।

१७. परमात्मा की अपार रक्षा का प्रमाण एक और मन्त्र से लें—

देवता-अग्नि

अग्ने त्वं सु जागृहि वयं सु मन्दिषीमहि।
रक्षाणोऽअप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि॥

(य० ४-१४)

पुनस्कृधि=	बार-बार निरन्तर शुभ कर्मों को करते हुए।
वयं सुमन्दिषीमहि=	जब हम बड़े आनन्दपूर्वक सोते हैं।
अग्ने=	हे तेजस्वरूप प्रभु !
त्वं सु जागृहि=	आप अच्छी तरह जागते हो, सदा जागरूक रहते हो।
अप्रयुच्छन्=	और प्रमाद रहित होकर
नः रक्षाणो=	हमारी रक्षा करते हो
प्रबुधे=	जागने तक।

हे अग्ने ! सत्कर्मी उपासक, जब आनन्दपूर्वक सोते हैं।
प्रमाद रहित हो जागने तक, आप रक्षा उनकी करते हैं॥

वेद का उद्‌गाता दिव्यदृष्टि प्राप्त महर्षि, मन्त्रदृष्टा प्रेमविभोर होकर; उस दयालु प्रभु की अपार अनुकम्पा का हमें भान करा रहे हैं कि वे अपने याजक भक्तों की कैसे जागरूप होकर रक्षा करते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८. इस मन्त्र की व्याख्या में अनेक उदाहरण हैं, उनमें से चन्द सच्ची घटनायें इस प्रकार हैं—मुसलमान सूफियों में एक बहुत ऊँचो सन्त रबिया हो चुकी हैं। जिन दिनों भारतवर्ष में मुस्लिम शासन था। वह देवी योग-अभ्यासिनी, ब्रह्मचारिणी, कवयित्री, मधुर गायिका और बहुत बड़ी ईश्वर भक्त थीं, उसका आश्रम जंगल में एक नदी के तट पर रमणीक स्थान था। वार्षिकोत्सव पर उसके मुरीद (शिष्य) बहुत मूल्यवान् वस्तुएँ लाकर उसके निवास-स्थान के साथ वाले कमरे में रख दिया करते थे। वे प्राय: जलसे के अन्तिम दिन अपनी महिला गुरु की भेंट के लिए होती थीं। वहाँ कोई ताला नहीं लगता था, न कभी चोरी होती थी।

१९. एक ऐसे अवसर पर जब रबिया जी रोज़ की भाँति प्रात: ३ बजे ध्यान में बैठने के लिए अपनी उपासना की चदरिया को न पाकर, बाहर देखा तो उसमें कुछ सामान बँधा पड़ा था और साथ में एक अज्ञात नौजवान मूर्च्छित पड़ा था। उसे पानी का छींटा देकर सचेत किया तो उसने बताया कि "मैं चोर हूँ। यह सामान बाँधकर जब चलने लगा तो मेरी आँखों के सामने अंधेरा छा गया। निकलने का मार्ग नजर नहीं आया तो हाथों से गठरी गिर गयी। मैंने आंखें मलीं। बाहर जाने का दरवाजा देखा और जब उठाने लगा तो बांहों में उठाने की ताकत न थी। बेबस हो कर गिर पड़ा। कोई आवाज़ आयी 'जब मेरा भक्त सोता है, तब मैं उसके माल की हिफाज़त करता हूँ, तुम कुछ नहीं ले जा सकते', और मैं सुनकर बेहोश हो गया।" इसे जानकर सन्त रबिया के आंखों में अल्लाह के प्यार के आँसू उमड़ आये, बोली—"बेटा इसे अब ले जाओ, मैं खुशी से देती हूँ।" देवी की दृष्टि, वचन और स्पर्श से उस चोर में अब चोरी की भावना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं रही और उसने ले जाने से इन्कार कर दिया। बाद में वह भी उसका अनुयायी हो गया।

वह कुछ न ले जाकर भी अपने जीवन-परिवर्तन से सब कुछ ले गया, जिसका मिलना इस संसार में दुर्लभ है।

२०. परमात्मा की ऐसी रक्षाओं के नमूने गुरुवर महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज की पुस्तकों में पढ़ें। एक घटना को उन्होंने कविता में दर्शाया है, जो संक्षेप में इस प्रकार है—

शोर कोट की थी एक देवी, सफर अकेली कर रही।
गोद में था एक नन्हा बच्चा, भूषणों से थी लदी हुई ॥१॥

रात थी बाकी गाड़ी पर से उतरी, सामान ज़्यादा था।
ताँगा किया किराये पर, घर जो जाना जल्दी था ॥२॥

गाड़ीवान् की नीयत बदली, छोड़ सड़क एक ओर चला।
जंगल में ठहराया ताँगा, धमकी देकर कहने लगा ॥३॥

देवी उतार दो जेवर सारे, वरना कदापि बच न सकोगी।
बच्चे को मारने की दी धमकी, सोचा सब कुछ दे देगी ॥४॥

पर ताँगे का चाबुक देवी ने, हाथों में था पकड़ लिया।
कोचवान पर टूट पड़ी, वह पत्थर उठाने चल दिया ॥५॥

तभी नाग ने पाँव में, जौलान लगा बेबस किया।
इतने में गश्ती सिपाही आये, उन्होंने उसे पकड़ लिया ॥६॥

देवी को उसके घर पहुंचाया, उसे थाने में बन्द किया।
ऐसे हैं प्रभु रक्षा करते, साँप को था निमित्त बनाया ॥७॥

२१. लेखक ने दयालु परमात्मा की दया और रक्षा का वरद हस्त साढ़े अढ़तीस साल पहले देखा। जब मेरी ढाई वर्ष की लड़की उमा दूसरी मंजिल की छत (जिस पर जंगला नहीं था) पर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मकान की पिछली तरफ कटड़े के आँगन में, जहाँ रोड़ी का ढेर पड़ा था, उस पर जा गिरी। यह जगह ढलान पर होने से एक मंजिल और नीची थी। गर्मियों के दिनों की शाम थी। हम (मैं और मेरी पत्नी) भक्ति-गीत गाकर आरती कर रहे थे। हमारे दौड़कर पहुँचने तक उसे एक सज्जन ने उठा लिया था। समझा यह गया कि शायद वह मर गयी है। डॉक्टर भटनागर के पास घंटाघर सब्जी मंडी ले गये। उसने कहा 'दिमाग पर बहुत गम्भीर गुम चोट है। सुबह तक होश आएगी और उम्मीद है ठीक हो जाएगी।' तब हम १६४८, कृष्णा गली सोहनगंज, सब्जी मण्डी, दिल्ली स्वर्गीय माननीय नारायण दास जी के मकान में रहते थे।

रात परमात्मा से प्रार्थना करके गुज़री और हमारी हैरानी की कोई हद न हुई जब आधी रात बाद होश आने पर वह बोली कि 'मैं ठीक हूं।' हमारे मुंह से निकला--'वाह प्रभु तेरी लीला, ३५ फुट की ऊँचाई से गिरने पर न कहीं चोट का निशान, न खून निकला, न मांस फटा, न कहीं दर्द था, इस घटना ने हमें अधिक आस्तिक बना दिया।

धार्मिक संस्कारों वाली उमा बड़ी भाग्यशाली निकली कि इसको श्री रमेश खन्ना जी (प्रो० खन्ना पब्लिशर्स) दिल्ली जैसा उदार, दानी, धर्मात्मा, सुशील वर मिला, जो इसे सुखों और ऐश्वर्यों के हिंडोले में झुला रहा है।

जब उमा की सगाई निश्चित करनी थी तो मैं पूज्य गुरु महाराज जी के पास सुन्दरपुर कुटिया (रोहतक) इस रिश्ते की सलाह लेने गया। उन्होंने कुछ देर मौन हो कर फिर प्रसन्नपूर्वक कहा—"यद्यपि इस वक्त लड़के का मकान आदि नहीं है, पर शादी के बाद ये कार और कोठी वाले प्रतिष्ठित हो जायेंगे। ईश की कृपा से उनका आशीर्वाद सत्य सिद्ध हुआ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७-७-१९६३ शादी (दिवस) पर महाराज प्रभु आश्रित जी का आशीर्वाद-कार्ड वैदिक-भक्ति-साधन-आश्रम रोहतक से मिला, जिसकी नकल इस प्रकार है—

"श्री रमेश चन्द्र जी—श्रीमती उमारानी; प्रभुदेव वर-वधू को दीर्घायु और गृहस्थ का पूर्ण सुख प्रदान करें। वे सद्गृहस्थी बनकर इस आश्रम को स्वर्ग धाम बनायें। धर्मानुकूल अपना जीवन-यापन करते हुए संसार और प्रभुदेव के आशीर्वाद के पात्र बनें। अपने यौवन, सौन्दर्य, विद्या, शक्ति और सम्पत्ति को मानवता की रक्षा में प्रयोग करें।"

—**प्रभु आश्रित**

दि० ७-७-१९६३
२३ आषाढ़ २०२० विक्रमी

२२. मैं अपने बच्चों की (दो लड़की, एक लड़का) शादी का निमन्त्रण और प्रत्येक उत्सव-कार्ड वेदमन्त्र और ईश्वर-वन्दना से प्रारम्भ करता रहा हूँ, बेटी उमा का कार्ड इस प्रकार प्रकाशित किया था—

(i) **प्रथम पृष्ठ पर:—गायत्री मन्त्र**

(ii) **द्वितीय पृष्ठ पर:—वन्दना** जो कि निम्नलिखित थी:—

परम पिता परमेश्वर की, यह हुई कृपा अति भारी।
गुरुदेव का आशीष देवों की दया-दृष्टि है न्यारी॥

कन्या-ऋण से उऋण हो रहा, पाकर उनकी कृपा महान्।
नमस्कार उस देव प्रभु को, जो करते हैं नित्य कल्याण॥

(iii) **तृतीय पृष्ठ पर:—सादर स्नेह निमन्त्रण—**

प्रभु की अपार दया से, यह मङ्गल अवसर आया है।
वर्षा ऋतु में प्रकृति वधू ने वातावरण सजाया है॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रिय सुपुत्री उमाकुमारी का आया शुभ प्रसंग।
खन्ना पब्लिशर्स के मालिक श्री रमेश चन्द्र के संग॥
इसलिए निमन्त्रण दे रहे, आइए कृपा-निधान।
धन्य भाग्य हो जायेंगे, बढ़े हमारा मान॥
दो आशीष कि ये दो राही, साथ रहें हो धर्म परायण।
और शरण प्रभु की जायें, नित्य प्रातः-सायन्॥

(iv) **चतुर्थ पृष्ठ पर:—कार्यक्रम** था।

सभी धर्मप्रेमी उत्सवों पर ऐसे कार्ड छपवाया करें, इसलिए यह दर्शाया है।

२३. जब थोड़ा-सा भी आध्यात्मिक जीवन बनता है और त्याग होता है तो परमात्मा की प्रेरणा से कैसी विचित्र सहायता मिलती है। इसका (मैं) कृतज्ञ अपना उदाहरण देता है, ताकि इससे साधकों की श्रद्धा-विश्वास बढ़े, उत्साह और प्रेरणा मिले और जिस प्यारे गुरुभक्त ने सहायता की; उसकी कीर्ति को कहकर अपना आभार प्रकट करूँ एवं अर्थशुचि के महत्व को दर्शाऊँ।

२४. १९५६ में मेरे सौभाग्य का उदय हुआ, जब मैं वन्दनीय गुरुदेव महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज के पवित्र चरणों में आया। १९५७ में मैंने उनको अपने यहां भोजन करने को कहा, जिसका उत्तर उन्होंने स्पष्ट 'न' दिया। विचार करने लगा कि 'मेरा अब सात्त्विक जीवन है। दैनिक यज्ञ करता हूं, गाय के दूध से घी तैयार कर रखा है, श्रद्धा से उनके उपदेश सुनता हूं, फिर उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार क्यों नहीं की ?' इन्हीं विचारों में सो गया। प्रभात में उठने से पूर्व स्वप्न आया कि वर्कशॉप के लोहे के कोटे का कुछ भाग ब्लैक में बेच देता हूं, कमाई पवित्र नहीं है, इसलिए मेरे यहाँ खाना स्वीकार नहीं हुआ। मैं शुरू से ही भावुक था। उसी दिन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र लिखकर Director of Industries के दफ्तर में Dy Director को दे दिया कि 'मेरा इतने टन कोटा इन-इन स्टाक होल्डर्स के पास जमा है, आधा मैं त्यागता हूं, कैंसिल कर दिया जाय, वे मेरे परम हितैषी थे, हैरान हुए उसे फाड़ दिया और मुझे सावधान करते हुए चेतावनी दी कि 'मैं पुनः विचार करूँ, वरना पछताऊँगा।' कई दिन इस पर मेरे मन में, खासकर नित्य कर्म के पश्चात् उथल-पुथल होती रही कि 'धन और धर्म की साधना एक साथ नहीं हो सकती, न जाने पहले कितने जन्मों में कितनी बार मेरे दोनों हाथ रोज़ की आय से भरे और खाली हुए होंगे।' इन विचारों से उदासी छायी रहती कि 'ऐसी कमाई से क्या लाभ ? जिसका अन्न महात्माओं के योग्य नहीं', कुछ वैराग्य हुआ और एक सप्ताह के बाद पुनः वैसा पत्र लिखकर Reciept Section में दे आया और तब शान्ति मिली। (१९६० में सारे कोटे और लाइसेंस त्याग दिये और आज तक नहीं लिए। विजय बेटा भी आध्यात्मिक विचारों के कारण नहीं लेता, हालांकि मैं उससे कहता हूं कि दस-बारह हज़ार रुपये मासिक तुम्हें अधिक कमाई हो सकती है, जिसमें से दान कर दिया करो, किन्तु वह थोड़ी आमदनी में सन्तुष्ट है।)

२५. पूजनीय गुरुजी महाराज को जब मैंने यह बताया तो उन्होंने कहा:—

"इससे आपकी माली हालत बिगड़ जायेगी और बहुत तंगी आ जायेगी, किन्तु दयालु परमात्मा आपकी आवश्यकताओं को पूर्ण करते रहेंगे, जिससे आपकी श्रद्धा, प्रेम और भक्ति बढ़ेगी और आध्यात्मिक उन्नति हो जायेगी।"

२६. मैं उन दिनों Steel Building materials बनाने के अलावा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Electroplating का भी काम करता था, उसके लिए १९६० में मेरे imported chemicals का माल बम्बई आया तो मुझे अपने Importers & clearing Agents का तार आया कि पन्द्रह हज़ार रुपये फौरन भेजकर माल मंगवा लें। Demurrage लग रहा है। वर्कशॉप का एक भाग छिन जाने से M/s Tru-Temp Industries के साथ मुकद्दमे-बाजी शुरू हो गयी थी और नुकसान हो गए थे। परेशानी में था कि इतने रुपये का कहाँ से इन्तज़ाम करूँ। अगले दिन एक बुजुर्ग सरदार साहब मेरे पास आये कहने लगे कि— "मैं महिन्दर सिंह का बाप हूं। जिसके मकान बी-२/६, माडल टाउन; दिल्ली में आपने गेट, जालियाँ और Railing लगाने का काम किया था। उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है कि आपकी वाकफियत Architects से है, मैं बर्मा में ठेकेदारी करते हुए आया हूँ। आजकल सुना है, मथुरा रोड पर नुमायश की बिल्डिगें बन रही हैं। आप उनमें से किसी एक का काम ले लें, जिसमें लोहे का काम आप कर लेना," मैंने उत्तर दिया कि "आजकल मेरी आर्थिक अवस्था बिगड़ी हुई है, मेरा इंग्लैंड से माल आया हुआ है, छुड़ाने के लिए दस हजार रुपये की कमी है, उसकी फिक्र में हूं, इसलिए आपकी सेवा करने में असमर्थ हूँ।" वे चले गए। अगले दिन उन्होंने मुझे अपनी Fixed diposit के ऊपर कर्ज़ लेकर दस हज़ार रुपये नकद ला दिये। मैं हैरान था और उनसे कहा कि "आप इतने उदार हैं, कि अनजान को इतना रुपया दे रहे हैं, इस आदत से तो कभी आपने बहुत धोखा खाया होगा," उन्होंने इसका समाधान किया कि—"मैं ऐसे अपने रिश्तेदार को भी नहीं देता हूँ। मेरे भतीजे ने मुझसे अपने काम के लिए पाँच हजार रुपये माँगे थे; मैंने उसके बहुत

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहने पर एक हजार रुपये दिया है। बीती रात को सपने में मुझे गुरु नानकदेव जी महाराज के दर्शन हुए, आपकी आकृति दिखाई और कहा—'जाओ उनकी सहायता करो,' कुछ देर बाद पुनः ऐसा आदेश हुआ और मैं उठ बैठा, मेरे घर में 'गुरु ग्रन्थ साहिब' रखा है। मैं रोज़ उसका पाठ करके जलपान करता हूं, उसके पढ़ते समय भी वही प्रेरणा हुई, सो मैंने गुरुदेव की आज्ञा का पालन किया है।'' सुनकर प्रभु की दया, करुणा और प्रेरणा को देखकर उनके प्रेम में नयन सजल हो गये। सरदार जी का धन्यवाद करते हुए, जब मैंने रुपये की रसीद देने के लिए उनका नाम पूछा तो कहने लगे कि ''मुझे रसीद का क्या करना है। हाँ मेरा नाम जानना चाहते हो तो मुझे मेलासिंह कहते हैं।'' ६ महीने में मैंने उनका सारा रुपया वापिस अदा कर दिया, 'ब्याज' बहुत कहने पर भी नहीं लिया। दो साल बाद ८-ई रानी झाँसी रोड, झण्डेवालान, दिल्ली में उनको एक प्लॉट मिल गया और उसमें लागत मात्र पर सारा लोहे का काम कर कुछ ऋण से उऋ्रण हुआ। उस महान् ईश्वर और गुरुभक्त का देहान्त १९८० में हुआ।

२७. परमात्मा न्यायकारी भी हैं और दयालु भी; जिसका भान सब साधकों को होता है। मुझे Enlargrment of Prostrate glands की कई वर्षों से बीमारी थी। पर यह रोग उस वक्त गम्भीर हुआ, जब विजय बेटे ने वर्कशॉप सम्भाली थी; जिससे कारोबार वैसा ही चलता रहा और मेरी सारी गृहस्थ की जिम्मेदारी उतर चुकी थीं। इसके इलाज के लिए अप्रैल १९८० में मैं ३ हफ्ता सर गंगाराम हस्पताल के नर्सिंग होम में पड़ा रहा और ऑपरेशन कराया। मेरे कचहरी में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई मुकद्दमे चल रहे थे। मैंने अपने क्लर्क श्री श्याम सुन्दर को मुख्यतयार नामा दे रखा था जो मेरी बीमारी के कारण तारीखें ले लिया करता था। मेरी याददाश्त शुरू से ही रात्रि को स्वप्नावस्था रहने और सुषुप्ति न होने से खराब थी। म्युनिस्पल कार्पोरेशन, के साथ एक 'केस' था वह किस 'सब जज' के पास था, नाम याद नहीं था। उसके कमरे का कुछ पता बताया पर वह उसे जान नहीं पाया; इसलिए वह उस दिन उस केस में उपस्थित नहीं हो सका, मैंने समझ लिया कि मुकद्दमा अदम पैरवी खारिज हो गया होगा। ठीक होने के बाद जब मैंने रीडर के पास जाकर पता किया तो उसने मुझे अगली तारीख बता दी। केस फाइल देखने पर मैंने पढ़ा तो कौंसल मुदई की हाज़िरी लिखकर तारीख दे दी गयी थी हालांकि मैंने कोई वकील नहीं किया हुआ था। ऐसी परमात्मा की प्रेरणा जज साहब को हुई।

२८. दयालु परमात्मा की प्रेरणा की एक और मिसाल देता हूं। ७ ४/१९८५ को मैं अपनी फर्म सहगल इन्डस्ट्रियल वर्क्स की इन्कमटैक्स Return तीन बजे दाखिल करने गया, बाहर खिड़की के ऊपर नोटिस लगा हुआ था कि '१-४-८५ से १५-४-८५ तक डाक एक बजे दोपहर तक ली जाया करेगी।' तीन-चार व्यक्ति ऐसे काम के लिए खड़े थे और क्लर्क से विनती करते हुए खिड़की खोलने को कह रहे थे। उसने खिड़की खोलने से इन्कार कर दिया और 'नोटिस' पढ़ने को कहा। मैं भी सुनकर साथ के कमरे में बैठकर डायरी में और प्रोग्राम देखने लगा। वह क्लर्क मेरे पीछे आ गया और मेरे से Return ले कर कहा कि 'वह मुझे रसीद वहीं पहुंचा देगा, मैं खिड़की पर न आऊँ।' मैंने समझा कि यह सज्जन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे जरूर जानते होंगे, अगरचे मैं भूल जाता हूँ, जब वह मुझे रसीद देने आये तो मेरे पूछने पर कहा कि "मैं भी आपको नहीं जानता हूं। क्योंकि आप बुजुर्ग थे, मैंने सोचा आपको दुबारा आना पड़ेगा, इसलिए ले लिया।" मैं हैरान था, कि जिनको मना किया था उसमें से एक व्यक्ति मुझसे अधिक अवस्था का और कमजोर था, जिससे कागज़ नहीं लिये थे, मुझे निश्चय हुआ कि यह परमात्मा की प्रेरणा और दया है।

२६. हम समझें कि सब उपलब्धियाँ परमात्मा की देन होती हैं; इसलिए साधक को प्रत्येक छोटी-से-छोटी सफलता में भी परमात्मा की दया-करुणा का भान और उसका सारा श्रेय दयालु देव को ही देना चाहिए। उनके प्रति हृदय से बारम्बार धन्यवाद निकलें। इससे प्रभु के पवित्र चरणों में अगाध प्रीति, प्रतीति, अनुराग बनता है और हम उनके आशीर्वाद के पात्र बनते हैं। उनकी ओर बढ़ते हैं, वे कई गुणा हमारी ओर आकर्षित होते हैं तथा अपनाते हैं। इससे बढ़कर और क्या सौभाग्य हो सकता है?

३०. लगभग २२ वर्ष हुए मैंने एक अखबार में पढ़ा कि लन्दन की अदालत में दो मुल्ज़िमों को इकट्ठे चोरी करने के अभियोग में एक को तीन साल की सज़ा दी, दूसरे को एक साल की। मजिस्ट्रेट ने कारण यह दिया कि पहला मुल्ज़िम बड़े अभिमान से आकर खड़ा होता था और दूसरे की नज़र नीची होती थी। प्रतीत होता था कि वह अपने जुर्म के लिए शर्मिंदा है, पश्चाताप करता है। इसलिए उसे सज़ा कम दी गयी है। सिर्फ पहले मुल्ज़िम ने अपील की कि एक सा अपराध होने पर उसे तिगुना दण्ड दिया गया और उसकी जो वजह दी गयी है; वह ग़लत है।'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपील कोर्ट ने जेल से दोनों की रिपोर्ट मँगवाई। पहले के विषय में जेल सुपरिन्डेंट ने लिखा कि 'यह अब भी शरारतें करता और दूसरों से लड़ता-झगड़ता रहता है तथा दूसरा हर रोज़ सुबह-शाम बाइबिल पढ़ता है, कम बोलता है और उसका स्वभाव सबसे अच्छा है'। फलस्वरूप उसकी अपील रद्द हो गई और दूसरे की बाकी सज़ा बिना अपील किए माफ़ हो गई और वरी हो गया।

३१. मैंने गुरु जी महाराज को यह खबर सुनाई तो उन्होंने कहा कि "परमात्मा भी ऐसे ही न्याय करते हैं। यदि किसी ने पूर्वजन्म में ऐसा अपराध किया हो कि उसे जेल की सज़ा होनी थी, पर वह नहीं पकड़ा गया, तो इस जन्म में उसे वैसा दण्ड ज़रूर भुगतना पड़ता। किन्तु यदि वह अब धार्मिक होकर सदाचरण से भक्ति करने लगा तो परमात्मा उसकी लाज रखेंगे तथा कारागार की बजाय बीमारी के बन्धन में डाल देंगे और वह भी उस समय जब उसकी जिम्मेदारियां खत्म हो चुकी हैं। यदि उसका पिछला कर्म बीमारी का है और इस जन्म में उपासना, सेवा, धर्म कार्य करता है तो उसका बदल रोग से हटकर धन की हानि पर आ जाएगा। परमात्मा उसके मान की हानि नहीं होने देते।"

३२. मैंने इस सम्बन्ध में बहुतों को कई साल से चारपाई पर बीमार पड़े देखा है। जिनका इस जन्म में कोई पाप दृष्टि-गोचर नहीं होता; किन्तु मैंने जाँच की कि इस जन्म में उनकी कोई भी भक्ति उपासना-धर्म के आचरण सहित नहीं थी। जिन उपासकों को भी कोई गम्भीर बीमारी भुगतनी पड़ती है, तो वे यह समझें कि उनका पूर्वजन्म का कोई जुर्म

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दण्ड टल गया। ऐसे रोगी को हर प्रकार की सहायता मिल जाती है, उसे दु:ख का भान नहीं होता।

३३. मेरा अपना विश्वास है कि मनुष्य अपने शुभ कर्मों के फल को जिसमें चाहे, धन में, अच्छी सन्तान में, गाय-भैंस के दूध में, गाड़ी के सुख में, यश-मान-कीर्ति में, महल-माड़ियों में, बुद्धि और विद्या आदि में ले सकता है, जैसे 'रिज़र्व बैंक' से किसी ने ५००० का चैक कैश कराया तो उस रुपये को सौ, पचास, बीस, दस, पाँच, दो, एक के नोटों में इच्छानुसार ले सकता है, रेज़गारी के सिक्के भी ले सकता है, ऐसे ही यदि उपासक की मेरी तरह यह भावना हो कि 'प्रभु मुझे आगामी जन्म में सभी पुण्य-कर्मों का फल केवल मेधा-बुद्धि में और ब्रह्मविद्या में देना! हृदय में कविता के उद्गार भरना! जिससे मैं वेदों का हिन्दी कविता में भाष्य कर दूं'। इस समय मन्त्रों के आध्यात्मिक अर्थ नहीं मिलते। यदि मेरी यह प्रबल कामना अन्त तक रही तो निश्चय परमात्मा इसे पूर्ण करेंगे।

प्राय: विद्वान् धनी नहीं होते, क्योंकि उनकी विद्या-धन की ही कामना संस्कारों में थी, जैसे किसी का सञ्चित धन एक लाख रुपया हो और उस राशि से मकान खरीद ले तो वह अन्य सामान नहीं ले सकता। ऐसे ही कर्मों की पूंजी का हिसाब है।

३४. संसार की दरिया से उपमा लें—

मोह-ममता इसके दो किनारे हैं।

मनोरथों का जल इसमें बहता है।

आशा-तृष्णा की इसमें लहरें उठती हैं।

राग-द्वेष के भँवर हैं।

काम-क्रोध आदि के मगर-मच्छ हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कष्ट-क्लेशों के तूफान आते हैं।
नदी का वेग बड़े-बड़े वृक्षों के समान धैर्य को ले जाता है।

ऐसे नरक में हम फँसे हैं, जिससे बचकर पार होने का एक ही उपाय है—कि ज्ञान की नौका पर बैठें।
हाथ में सुकर्म का चप्पू हो।
और भक्त आत्मा मल्लाह हो।
तो निश्चय उस पार ब्रह्मलोक में पहुँच जायेंगे।

३५. **ओ३म् नाम जहाज़ है, जो चढ़े सो उतरे पार।**
जो निश्चय कर सेव दे, वे पार हैं उतरनहार।। १ ।।

उपासना का गर करें श्रृंगार।
हो जायें प्रीतम बलिहार ।। २ ।।
मिलने पर प्यारा करतार।
मिट जाए संकट अपार ।। ३ ।।
जैसे नारी सेवा से, वश करती पतिदेव।
वैसे साधक भक्ति से, पा लेते महादेव ।। ४ ।।

।। ओ३म शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!! ओ३म् ।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

७ अष्टाङ्ग-योग-व्याख्या

१. ऋग्वेद भाष्य भूमिका के 'वेद विषय विचार' शीर्षक में महर्षि देव दयानन्द जी ने लिखा है—"उपासना अर्थात् ईश्वर में मग्न होना। यह उपासना वेद और पातञ्जल-योग शास्त्र की रीति से ही करनी चाहिए"।

सन्ध्या में उपस्थान के तीसरे मन्त्र—'**चित्रं देवानामुदगादनीकं**···' (य० ७-४२) के भावार्थों के अन्त में लिखा है कि "जिस किसी पुरुष को परमेश्वर को जानने की इच्छा हो, वह योगाभ्यास करके अपनी आत्मा में उसे देख सकता है, अन्यत्र नहीं।"

२. योगियों के मुकुट मणि महर्षि पतञ्जलि के योग-दर्शन के चार पाद हैं—

पहला-समाधिपाद, जिसमें ५१ सूत्र हैं।
दूसरा-साधनपाद, जिसमें ५५ सूत्र हैं।
तीसरा-विभूतिपाद, जिसमें ५५ सूत्र हैं।
चौथा-कैवल्यपाद, जिसमें ३४ सूत्र हैं।
कुल १९५ सूत्र हैं।

मानव जाति के सर्व कल्याण हित की इस अनुपम रचना का सारा जगत् महर्षि की इस देन के ऋण से उऋण नहीं हो सकता।

३. पतञ्जलि जी ने योग का स्वरूप बताया है—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः (यो० द० १-२)

अर्थात् चित्तवृत्तियों को रोकने को योग कहते हैं। यह परमात्म-साक्षात् के लिए अन्तर्साधना है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—

'योगः कर्मसु कौशलम्' (गी० २-५०)

अर्थात् कर्मों में योग्यता, कुशलता और दक्षता का नाम योग है। जो कर्मबन्धनों से छूटने का उपाय है। यह अदिभौतिक बाह्ययोगवृत्ति का फल है। इन दोनों अर्थों से स्पष्ट है कि योग-अभ्यास से लौकिक और परलौकिक दोनों प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

४. योग का एक और अर्थ है—

'युज्यतेऽसो योगः'

अर्थात् जो युक्त करे, मिला दे उसे योग कहते हैं। मिलना हमेशा दो का आपस में होता है। इसलिए यहाँ योग का अर्थ है—जो साधन आत्मा को परमात्मा से मिला दें, उसे योग कहते हैं। महर्षि ने अपने सूत्र में चित्त की वृत्तियों को वश में कर के परमात्मा से मिलना, आत्मीय युक्त, संयुक्त, समस्वर, समाधिष्ट होना साधन बताया है।

योग का वास्तविक स्वरूप है स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना, बाह्य वृत्तियों को त्याग कर अन्तर्मुखी होना, इसके तीन विभाग हैं—

(i) ज्ञान योग (ii) कर्म योग (iii) उपासना योग।

५. **यम नियमाऽऽसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावङ्गानि ॥**

(यो० द० २-२९)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये योग के आठ अङ्ग हैं। इससे पहले सूत्र में इन यमों के अनुष्ठान का यह फल बताया है कि—'अन्तःकरण की अशुद्धि दूर होकर क्लेशों की निवृत्ति होती जाती है और ज्ञान का प्रकाश बढ़ कर विवेक-ख्याति उत्पन्न हो जाती है। योगी के हृदय को प्रकाशित कर देता है।'

यम

६. **अहिंसा सत्याऽस्तेय ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहायमाः—**

(यो० द० २-३०)

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम कहलाते हैं।

७. **जाति देश काल समयानवच्छिन्नाः सार्वभौमाः महाव्रतम् ॥**

(यो० द० २-३१)

अर्थात् यह यम, जाति, देश, काल, समय से न कटने वाले सार्वभौम, सब अवस्थाओं में पालन करने योग्य महाव्रत कहलाते हैं। इन्हें संकुचित न किया जाए।

८. स्पष्ट है कि इन महाव्रतों का पालन सारी मनुष्य जाति का परम धर्म है। किसी खास जाति, मज़हब, देश विशेष का नहीं।

बल्कि यह सबके कल्याण के लिए है। परन्तु अत्यन्त खेद है कि हमारी भारत सरकार महा अज्ञानी है; जो इन की शिक्षा स्कूलों में नहीं देती। फलस्वरूप भ्रष्टाचार,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनाचार, अत्याचार, व्यभिचार, लूटमार, डाके, कत्ल-खून आदि अपराधों की पराकाष्ठा करा रही है और उनको रोकने के लिए कानून बना देती है; जिनका पालन दसों साल तक नहीं होता। मूल को छोड़, पत्तों को पानी दे रही है।

६. यम का अर्थ है इन्द्रिय-संयम, इन्द्रिय-निग्रह। जिस प्रकार लगाम या रासों से घोड़े को वश में रखा और रोका जाता है, उसी प्रकार दृढ़ इच्छा, संकल्प, प्रतिज्ञा, तप से इन्द्रियों को विषयों तथा निषेध-अधर्म कार्यों से हटाकर, वेदोक्त धर्म कार्यों में लगाये रखना यमों का प्रयोजन है।

संयम की बुनियाद पर ही मोक्ष का महल खड़ा होता है।

यम सदाचार संहिता हैं, अनुशासन हैं, महाव्रत हैं।

१०. अब यम के अन्तरङ्ग की व्याख्या की जाती है—

(i) अहिंसा

सब हाल-काल में सर्व प्रकार से सब प्राणियों से (जीव-जन्तुओं से) मन, वचन, कर्म से सदा-सर्वदा, सर्वथा, ईर्ष्या-द्वेष, द्रोह और वैर-भाव का त्याग करना, किसी को भी शारीरिक, वाचिक, मानसिक पीड़ा अथवा आर्थिक हानि न पहुँचा कर सुख देना, प्रेम-प्रीति से वर्तना अहिंसा कहलाती है। इसके विरुद्ध अनुमति देना, स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से सामने अथवा परोक्ष में इसका कारण बनना हिंसा है।

जो प्राणी मात्र में अपनी ही आत्मा को व्यापक रूप में देखता है; वह इस सर्वोत्तम दर्शन के कारण किसी से घृणा नहीं करता। यह अहिंसा का उच्चतम स्वरूप है।

११. महात्मा गौतम बुद्ध, भगवान् महावीर और महात्मा गाँधी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि महापुरुषों ने अहिंसा को परम धर्म कहा; इसलिए कि:—

(i) यह अन्य चार व्रतों के पालन का आधार है। जैसे झूठ बोलना, चोरी करना, व्यभिचार करना और अन्याय से धन का संचय करना (Hoarding) इन सबसे अहिंसा का उल्लंघन होता है और उसके अनुष्ठान से ही सत्य, अस्तेय आदि का पालन हो सकता है।

(ii) अहिंसा का आचरण जाति कर्म होने से भी परमधर्म कहलाता है। क्योंकि इसके विपरीत आचरण से आगामी जन्म में मनुष्य नहीं बन सकता, पशु आदि नीच योनियों में जायेगा। वेद के कई मन्त्रों से यह स्पष्ट है। जैसा कि यह मन्त्र चेतावनी दे रहा है—

देवता=अपामार्ग

१२. ओ३म् यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम्। चकार भद्रमस्मभ्यमात्मने तपनं तु सः॥

(अ० ४-१८-६)

यः=जो दुष्ट अर्थात् वह अपनी कर्मेन्द्रियों से
कर्तुं=हिंसा को रहित हो जाता है
चकार=करता है और आगामी जन्म में
अङ्गुरिम्=वह हाथ-पांवों को मनुष्य नहीं बनता।
शश्रे=तोड़ लेता है।
आत्मने तपनं=अपनी आत्मा को तपाता है, संतप्त करता है।
तु सः=वह तो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्मभ्यम्=हमारे लिए
चकार=हानि करने में
न शशाक=समर्थ नहीं होता
भद्रम्=(हमारा तो) कल्याण ही (होता है)।

इस रहस्यमय मन्त्र में परमात्मा के अटल सिद्धान्त को दर्शाया गया है।

जो हिंसक है, हमारी वास्तविक हानि में वह असमर्थ रहता है।

हमारा तो भुगतता कर्मफल उससे, और मार्ग-कल्याण खुलता है॥ १॥

किन्तु वह द्वेष-अग्नि में, स्वयं पहले तो जलता है।

और फिर वह बाद मृत्यु के, मनुष्य योनि से जाता है॥ २॥

१३. दयालु परमात्मा के राज्य में हर मनुष्य अपने किए कर्मों के आधार पर जाति, आयु और भोगों को प्राप्त करता है। क्योंकि—

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः

(यो० द० २-१३)

अविद्या आदि क्लेशों की जड़ (मूल) के होने पर उस कर्मवासना का फल जाति, आयु और भोग होते हैं; (इसकी व्याख्या पंचक्लेश के अन्तर्गत पढ़ें)।

यदि अपनी इच्छा, ज्ञान और प्रयत्न नहीं हैं तो सारा संसार मिलकर भी हमारे आयु और भोग क्षीण नहीं कर सकता। अगर उसके पीछे अपना कोई पाप नहीं लगा हो, यह **एक और वेद मन्त्र के अर्थ हैं।**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए जो हिंसक हमें हानि पहुंचाता है, वह हमारे अपने किसी कर्म का फल है। यदि वह मार देता है तो निश्चय हमारे आयु और भोग उस दिन समाप्त हो चुके थे। हमारा तो भोग कर्म होता है; परन्तु मारने वाले का नया कर्म होता है, जिसके दण्ड से वह कभी नहीं बच सकता। इसलिए वेद के द्रष्टा ऋषि कहते हैं—

"हमारा तो वह हिंसक घोर पाप भुक्ता कर कल्याण-मार्ग खोलता है और स्वयं मनुष्य जाति से वञ्चित हो जाता है।"

१४. हिंसा चार प्रकार की होती है—

(i) शारीरिक, (ii) वाचिक, (iii) मानसिक और (iv) आध्यात्मिक।

(i) **शारीरिक हिंसाः—**

किसी भी प्राणी को किसी प्रकार से पीड़ा पहुंचाना या उसके प्राण हरण करना।

(ii) **वाचिक हिंसाः—**

किसी भी शब्द से किसी को ठेस पहुंचाना; जिससे उसे दुःख, क्लेश पहुंचे। अपमानित करना, गाली देना, निन्दा, चुग़ली करना, मारने की धमकी देना इत्यादि यह वाचिक हिंसा है।

(iii) **मानसिक हिंसाः—**

किसी के प्रति मन से ईर्ष्या, द्वेष, दुश्चिन्तन, किसी को हानि पहुंचाने का विचार करना या किसी के साथ मिलकर ऐसी साज़िश करना इत्यादि मानसिक हिंसा है।

(iv) **आध्यात्मिक हिंसा—**

अन्तःकरण को राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्सर्य से मलीन करना। इससे आत्मिक हनन और पतन होता है।

अहिंसा व्रत पालन के लाभ

१५. अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः

अर्थ— (यो० द० २-३५)

अहिंसा में दृढ़ स्थिति हो जाने पर उस अहिंसक के प्रति समस्त प्राणी वैर भाव त्याग देते हैं; क्योंकि अहिंसा की सिद्धि से आत्मिक तेज और बल, दया भाव एवं सौम्यता इतनी बढ़ जाती हैं कि उसके प्रेमभाव से शेर, भालू, भेड़िया, साँप, बिच्छू आदि हिंसक जीव और आततायी मनुष्यों का भी वैर भाव छूट जाता है। इसके अनेक उदाहरणों में से कुछ यहाँ दिए जाते हैं।

१६. ढाई हज़ार साल पहले कौशल देश के राजा प्रसेनजित के राज्य में एक अंगुलीमाल डाकू था, उसकी नज़र में जो व्यक्ति भी आता; वह हर रोज़ एक मनुष्य की अंगुली काट कर देवी की भेंट के लिए माला बनाया करता था और उस का सब कुछ लूट लिया करता था।

राजा बेचैन था। उसने प्रण किया कि जब तक इस हिंसक का वध नहीं होता, वह राजशासन का और कार्य नहीं करेगा। अगली प्रातः सन्ध्या-हवन करके रथ में बैठकर सिपाहियों के साथ जंगल की उस ओर निकल पड़ा, जिधर से अंगुलिमाल आया करता था।

एक दिन पहले ऐसी घटना हो चुकी थी कि महात्मा बुद्ध उन दिनों एक नगर के बाहर किसी उद्यान में ठहरे। श्रद्धालु उनके पास आते और वे उन्हें उपदेश देते। किसी व्यक्ति ने इस हत्यारे के विषय में बहुत दुःखी होकर उन्हें

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बताया। इस पर गौतम बुद्ध खड़े हो गये और संकल्प किया कि सर्वप्रथम भयभीत लोगों के इस दुःख का निवारण करेंगे। भक्तों के मना करने के बावजूद भी वे उस ओर चल दिए, जिधर अंगुलीमाल रहता था। मार्ग में डाकू की माता मिली; जिससे पता पूछने पर उसने भगवान् बुद्ध को आगे जाने से मना किया कि 'वह बड़ा निर्दयी है और आज उसकी भयानक अवस्था है, वह पास ही अपने शिकार की प्रतीक्षा में घूम रहा है।' किन्तु, आगे जाकर महाराज ने उसे देखा और वह उन पर वार करने को दौड़ा तो महात्मा बुद्ध ने कहा—'वत्स सावधान !' और ऐसा कहते ही डाकू के हाथ से तलवार गिर गई; बुद्ध उसके पास गए और उसे आशीर्वाद दिया। उसके सिर, मस्तक एवं शरीर पर हाथ फेरा; जिससे वह विनीत प्रणाम करने की मुद्रा में उनके चरणों में गिर पड़ा, लूटने-मारने के उद्देश्य को सर्वथा भूल गया। महात्मा बुद्ध की दृष्टि, वाणी और स्पर्श के प्रभाव से उसकी हिंसा वृत्ति सर्वथा समाप्त हो गयी और वह महात्मा बुद्ध के साथ उनके विहार-स्थल पर आ गया। बाद में वह बौद्ध-भिक्षुक बन गया।

१७. इधर मार्ग में चलते हुए राजा प्रसेनजित को ज्ञात हुआ कि महात्मा बुद्ध पास ही पधारे हुए हैं, निश्चय किया कि पहले महाराज के दर्शन कर, उन्हें नमस्कार कर उनका आशीर्वाद ले, फिर लक्ष्य की ओर बढ़ेंगे। सो राजा ने वहाँ जाकर भगवान् बुद्ध के चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया, अपना परिचय दिया और बैठ गए।

महात्मा बुद्ध ने पूछा—'राजन् ! आपके मुख पर गहन उदासी क्यों छायी है', और उनके साथ फौज देखकर कहा—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कहाँ चढ़ाई कर रहे हो,' राजा ने अंगुलिमाल के आतंक एवं हत्याओं का जिक्र किया और कहा कि 'उसका अन्त करने के लिए निकला हूँ, इसलिए बेचैन हूँ ।' महात्मा जी ने कहा कि 'यदि वह धर्मात्मा होकर आपके सम्मुख आ जाये तो फिर आप क्या करेंगे ।' तब राजा ने उत्तर दिया –'मैं उसके कुशल निर्वाह के लिए खेती की भूमि और उसे धन-धान्य देकर माला-माल कर दूंगा ।' तब महात्मा बुद्ध ने पास बैठे नवभिक्षु को राजा को नमस्कार करने को कहा और कहा कि 'यह वही अंगुलीमाल डाकू था' खुशी से राजा की आँखों में प्रेम के आँसू भर आए, भगवान् के चरणों में बारम्बार प्रणाम करने लगे और उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव हुआ कि अहिंसा का आत्मिक बल सेना शक्ति से कितना महान् होता है ।

१८. राजा दुष्यन्त घोड़े पर बैठकर जंगल में शिकार खेलने गए । एक हिरन पर निशाना लगाया तो वह बचकर भागता गया और राजा भी आवेश में आ, उसे मारने के लिए पीछा करते रहे । एक स्थान पर जाकर हिरण रुक गया । बड़े आश्चर्य की बात हुई, राजा भी भूल गया कि वह जिसे मारने के लिए आया है; वह हिरण सामने खड़ा है और उसे मारने की इच्छा नहीं हो रही है । वह कण्व ऋषि का आश्रम था; जहां पर महर्षि के अहिंसा के प्रभाव से किसी प्राणी में भी परस्पर वैरभाव नहीं रहता था । राजा की भेंट वहां पर शकुन्तला से हुई; जिसका वर्णन महाभारत और कालिदास के नाटक 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' में मिलता है ।

१९. संत रबिया अपने अनुयायियों के मध्य में जब भक्ति की तरंग में अपने प्यारे प्रीतम की निराली तान पर स्तुति, गीत गाया करती थी तो वातावरण रोमाञ्चित हो उठता था,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मस्ती में झूम जाता था। सुनने वाले गद्गद् हो उठते थे, नदी के जल-प्रवाह मन्द हो जाते थे, उड़ते पक्षी आकाश से नीचे उतर आते थे, गाय-भेड़-बकरियां चरना छोड़, वहाँ आ जातीं थीं। हंसों, मोरों, हिरनों की टोलियाँ अपनी-अपनी जगह बैठ जाती थीं। शान्तचित्त हो कर आनन्द लेते थे। यदि कभी शेर भी उपस्थित हो जाता था तो निर्भय रहते थे। दूर-दूर से चरवाहे और राही उस संगीत के आकर्षण में खिंचे चले आते थे, यह सब संत रबिया की अहिंसा-व्रत पालन की पराकाष्ठा थी।

एक दिन जब ऐसे संगीत-उत्सवमें रौनक छायी हुई थी और जश्न-सा समा बंधा था तो ईरान का नवाब हसन उस समय आ गये तो बकरियाँ आदि पशु भागने लगे, तब नवाब ने आश्चर्य से रबिया जी से पूछा कि 'आपकी यह सभा भंग क्यों हो रही है' तो रबिया ने उत्तर दिया कि 'नवाब साहब! आप इन भेड़-बकरियों का मांस खाते हैं और आपकी हिंसक प्रवृत्तियाँ हैं, उसके प्रभाव से ये पशु चल पड़े हैं।'

२०. गुरुवर महात्मा प्रभु आश्रित जी की जीवनी में पाठक पढ़ेंगे कि उनके टोबाटेक सिंह के आश्रम में साँप फिरा करते थे, उन्हें मारने की किसी को आज्ञा नहीं थी और वे महात्मा जी के अहिंसा-प्रभाव से किसी को नहीं काटते थे।

२१. बच्चों का चेहरा भोला-भाला हिंसा रहित होता है, उन्हें हिंसक प्राणी भी पीड़ा नहीं पहुंचाते। बहुत साल पहले अखबारों में खबर छपी थी कि एक बालक को भेड़िया उठा कर ले गया। १३ साल तक उसने उसे जंगल में पालकर बड़ा किया। तब इटावा के कलेक्टर द्वारा आर्य समाज बरेली के अनाथालय में लाया गया। उसकी अधिकतर आदतें भेड़िये

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समान थीं, चपड़-चपड़ कर पानी पीना इत्यादि।

२२. महाकवि बाणभट्ट ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हर्ष चरितम्' में लिखा है कि 'एक बार राजा हर्ष वर्द्धन एक तपोभूमि में गए; जहाँ आचार्य दिवाकर का गुरुकुल था। राजा ने वहाँ देखा कि गुरु-शिष्यों के अहिंसक प्रभाव से शेर वहाँ आ-जाया करते थे। ऐसे बैठते थे जैसे पालतू कुत्ते।

२३. अमेरिका के तपस्वी योगी थैरियों के सम्बन्ध में लिखा है—'जब वे वार्डन झील के किनारे रहते हुए अहिंसा अभ्यास किया करते थे तो उनके शरीर से मधुमक्खियां लिपट जाती थीं; जो उन्हें नहीं काटती थीं और उन्हें कोई हिंसक प्राणी आकर हानि नहीं पहुंचाता था।

२४. अहिंसा के आचरण द्वेष, वैरभाव को दूर किए बिना साधक के चरण ईश्वर-प्राणिधान की ओर कदापि नहीं बढ़ सकते। इसलिए इस परम धर्म का पालन हम अनिवार्य रूप से श्रद्धापूर्वक करें।

(ii) सत्य

२५. जैसा प्रत्यक्ष प्रमाण से देखा हो, अनुमान से जाना हो, कानों से सुना हो, मन से माना हो; वैसा ही कहना, लिखना, करना सत्य कहलाता है। अर्थात् मन, वाणी और कर्म का एक होना।

सत्य विचार, सत्यभाषण और सत्य कर्म ही सत्यधर्म का पालन है।

२६. महर्षि देवदयानन्द जी महाराज 'सत्यार्थ प्रकाश' की भूमिका में लिखते हैं—'वह सत्य नहीं कहलाता, जो सत्य के स्थान पर असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जावे, किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसका वैसा ही कहना,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखना और मानना सत्य कहलाता है। वस्तु का यथाथ ज्ञान ही सत्य है। वाणी से वैसा कहना, वाणी का सत्य है। वैसा विचार करना मन का सत्य है। जो जिस समय जैसा यथार्थ रूप से कर्त्तव्य रूप में कर्म करने चाहिए वह कर्म का सत्य है।'

२७. भगवान् मनु महाराज जी ने लिखा है—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥

(मनु०-४-७०)

अर्थ:—

सत्य बोलें, प्रिय बोलें, वह सत्य न बोलें जो अप्रिय हो। अर्थात् सत्य को मीठा करके बोलें कटु न बोलें।

सत्यव्रत पालन का फल

२८. सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्

(यो० द० २-३६)

अर्थः—

सत्य में दृढ़ प्रवृत्ति हो जाने पर क्रिया फल का आश्रय बनती है। जब अभ्यासी सत्य के आचरण में पूर्ण रीति से मन, वचन, कर्म से स्थित हो जाता है; तो क्रिया और उसका फल दोनों का आश्रय स्थान उसकी वाणी हो जाती है। अर्थात् उसकी वाणी में ऐसी अमोघ शक्ति आ जाती है कि तब उसके मुंह से जो कह देता है। वह सत्य सिद्ध होता है अथवा उसके मुंह से केवल सिद्ध होने वाले शब्द ही निकलते हैं; क्योंकि उसमें अज्ञान का अवर्ण नहीं होता।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'व्यास-भाष्य' में है कि 'यदि सत्यवादी किसी पापी को कह दे कि 'तू धार्मिक हो जाये !' तो वह पाप छोड़कर धर्मात्मा हो जायेगा।

सत्य आचरणशील के सब कर्त्तव्य कार्य सुगमता से सफल होते हैं; क्योंकि सत्यस्वरूप परमात्मा के आशीर्वाद उसके साथ होते हैं।

(iii) अस्तेय

२९. अन्याय पूर्वक किसी भी परायी वस्तु, धन, द्रव्य, अधिकार आदि का अनुचित रीति से हरण न करना और मन, वाणी और शरीर से चोरी की भावना तक का भी परित्याग करना अस्तेय कहलाता है।

स्तेय का मूल कारण राग और लोभ है। इसलिए इन्हें छोड़े बिना अस्तेय का पालन नहीं हो सकता।

अस्तेय-पालन का फल

३०. **अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥** (यो० द० २-३७)

अर्थ—

अस्तेय की दृढ़ भूमि होने पर सब रत्नों की प्राप्ति होती है। अर्थात् चोरी की भावना के परित्याग से परिश्रम द्वारा उत्तम पदार्थों की उपलब्धि होती है और उसकी सावधानी से रखी वस्तु को कोई नहीं चुराता। या तो चोर को दृष्टिगोचर नहीं होती या देखकर चोरी की भावना नहीं रहती। यदि कोई चुराता है तो वापस मिल जाती हैं। निर्लोभी एवं सन्तोषी पुरुष की सब आवश्यकताएँ प्रभु की कृपा तथा प्रेरणा से थोड़े पुरुषार्थ से ही पूरी होती रहती हैं।

३१. पूज्य पाद स्वामी ओमानन्द जी महाराज ने इस सूत्र के अन्तर्गत एक आख्यिका लिखी है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"किसी निर्धन पुरुष ने बड़ी आराधना के पश्चात् धन सम्पत्ति की देवी के दर्शन किये। उसकी पैरों की एड़ी और मस्तक घिसा देखकर उसको आश्चर्य हुआ। अपने भक्त की आग्रहपूर्वक विनय पर उसको बतलाना पड़ा कि 'लोग मुझसे राग रखते हैं और धर्म-अधर्म का विवेक त्यागकर मेरे पीछे मारे-मारे फिरते हैं। उनको ठुकराते हुए मेरे पैरों की एड़ी घिस गयी हैं और जिन्होंने ईश्वर-प्राणिधान का आश्रय ले कर मुझमें राग छोड़ दिया है तथा मुझसे दूर भागते हैं उनको रिझाने और अपनी ओर प्रवृत्त करने के लिए उनकी चौखट पर रगड़ते-रगड़ते मेरा मस्तक घिस गया है।"

३२. रिश्वत, छल-कपट, बेईमानी, मिलावट, चोरी आदि अधर्म से प्राप्त किये धन का सेवन, दुःख, संकट, क्लेश, रोग आदि अनेक व्याधियों को उत्पन्न करता है। इसका एक उदाहरण मुझे श्री दर्शन लाल जी सचदेवा बी १/५ अशोक विहार फेज २, दिल्ली निवासी ने सुनाया कि—

"मेरी बुआ श्रीमती केसरा देवी जी ने बहुत साल हुए शाहदरा के एक शर्मा जी टाइपिस्ट से बैनामा टाइप कराकर अपने प्लाट की पुरोख्त में दस हज़ार रुपये नकद वसूल किये; लेकिन थैले में डालते वक्त एक हज़ार रुपये के नोटों की गड्डी गिर गयी और शर्मा साहब ने पाँव के नीचे दबा दी। बाद में उसे उठा लिया, मेरे पास ब्याज में चढ़ाने के लिए लायी तो वे नौ हज़ार निकले। खरीददार ने कसम खाकर तसल्ली करा दी कि उसने पूरी रकम दी थी। सब्र कर लिया गया।"

"कुछ महीने बाद शर्मा और उसका परिवार बीमार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहने लगा। उसकी माँ धार्मिक थी। उसने बेटे से पूछा कि "तेरा बहुत सारा धन बीमारियों में लग रहा है, सत्य बता कि कहीं से ग़लत तरीके से तो धन नहीं लाया" शर्मा ने गिरा हुआ एक हज़ार रुपया उठाकर लाने की घटना सुना दी। उसकी माँ ने कुछ रुपया अपने पास से देकर बेटे को मजबूर किया कि वह उसे वापस कर आये। चुनांचे एक साल बाद मेरी बुआ का पता पूछता हुआ गली न० ५ धर्मपुरा गांधी नगर, दिल्ली में आकर रुपया लौटाया और सारा हाल सुनाया। उन्होंने उस रुपए में और धन मिला कर गली नं० ८ में एक शिवमन्दिर बना दिया"।

३३. श्री दर्शन लाल जो सचदेवा सनातन धर्म मन्दिर अशोक विहार फेज २ के उप प्रधान हैं और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कृष्णा जी बड़ी सौम्य स्वभाव की धार्मिक देवी हैं, उनको प्रभु की कृपा से प्रेरणा हुई कि घर में रोज़ हवन और गायत्री यज्ञ करवाया जाये; जिसके लिए उन्होंने मुझे कहा। मैंने

मैंने यह इसलिए लिखा है कि किसी भी सनातन धर्म मन्दिर में कोई यज्ञ शाला नहीं है। जहाँ-कहीं है, जैसे बिरला मन्दिर नई दिल्ली में, तो वहां कभी कोई यज्ञ होते देखा-सुना नहीं जाता। न ही वे भाई अपने घरों पर करते हैं।

जिनके यहां मूर्त्तियों के मन्दिर भी हैं, उन लाखों में कोई विरला यज्ञ को श्रद्धा से कभी-कभी भी करने वाला हो, तो उसकी सराहना और प्रसंशा करनी चाहिए ताकि औरों को भी प्रेरणा मिले।

खेद से कहना पड़ता है कि यह कितनी विडम्बना है कि भगवान् कृष्ण के मूर्त्तिपूजक उनकी किसी भी आज्ञा को नहीं मानते। उन्होंने गीता में वेदयज्ञ और योग की महिमा विस्तार से गायी है। अधिक-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस श्रद्धालु परिवार को याजक बनाने के लिए सहर्ष स्वीकार किया। ४-११-१९८५ से लेकर २५-४-१९८६ तक मैंने प्रातः काल का अपना दैनिक-यज्ञ, नित्यकर्म उनके घर पर शुरू कर दिया। एक माला 'गायत्री-यज्ञ' की प्रतिदिन करते थे, जिसकी पूर्णाहुति ११२ माला करने पर की। फिर सामवेद का यज्ञ कुछ मन्त्रों के अर्थ सहित प्रारम्भ किया। उसकी पूर्णाहुति २५-४-१९८६ को की।

३४. मेरी अनुपस्थिति में आर्यसमाज में दैनिक यज्ञ बन्द हो गया था। कई सज्जनों के कहने से पुनः २६-४-१९८६ से शुरू कर दिया। जो प्रातः ५ से ६.१५ बजे तक निरन्तर सम्यक् रूप से चल रहा है।

इसमें विशेषता यह है कि यज्ञ का एक पैसा भार भी समाज पर नहीं है, दूसरा यह कि ठीक ५ बजे 'ओ३म्' की ध्वनि से नित्य कर्म प्रारम्भ कर देता हूँ। इतना सवेरे किसी भी अन्य आर्य समाज में नित्यकर्म प्रारम्भ नहीं होता। यह इसलिए कि इन्द्रियां सांसारिक कार्यों में अपवित्र हो जाती हैं, भावना है कि पहले ये भगवान् की आराधना में समर्पण हो जायें, फिर बातचीत या कोई और काम करें। ऐसे मौन भी बन आता है।

हमारे यहाँ कोई भी व्यक्ति बिना नहाये, यज्ञोपवीत रहित और पैंट पहने आहुति नहीं दे सकता। इस में स्तुति

तर सनातन धर्मियों के मन्दिर या घर में ऐसी पुस्तक तक नहीं मिलती, अध्ययन तो दूर रहा।

मूर्त्तियों के सामने बैठ कर प्रायः ध्यान और योग का अभ्यास भी नहीं करते। जैसा कि परमहंस रामकृष्ण जी की सौम्य मूर्त्ति (नई दिल्ली) के सामने देखा जाता है। परन्तु इस सचदेवा/दम्पती को अपने घर के मन्दिर में मूर्त्तियों के सामने ध्यान लगाते देखता था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत, प्रार्थना, दस मिनट जप, ध्यान और फिर दर्शनों आदि ऋषि ग्रन्थों का स्वाध्याय होता है। अन्त में तर्क उठाकर वाद-विवाद से प्रमाण देकर शंका समाधान करते हैं।

मैंने 'प्रयाग निकेतन' और यज्ञ भवन दिल्ली के नित्य-कर्म-अनुसार यह समय रखा है। जिनको देखकर मेरी यज्ञ में प्रवृत्ति हुई और जहां मेरे हर साल वेद के दो या तीन यज्ञ हो जाते हैं।

३५. एक घटना मैं अपनी लिखता हूँ २२-७-१९८३ दोपहर बाद 'मेरी धर्मपत्नी श्रीमती शकुन्तला देवी जब घर के नज़दीक आ रही थी, तो 'टू वीलर' स्कूटर में पीछे बैठे लुटेरे ने उतर कर उनके गले का सोने का हार छीन कर, फिर स्कूटर पर बैठ भाग गया। उसकी रपट थाने में लिखा दी गयी। मार्च १९८६ में ऐसा जुर्म करते हुए इन अपराधियों को राजौरी गार्डन पुलिस ने ऐसा अपराध करते हुए अपने इलाके में पकड़ लिया। उन्होंने बताया कि हमने एक हार अशोक विहार फेज II की औरत के गले से भी उतारा था। चुनांचे श्री शेर सिंह जी थानेदार साहब अशोक विहार दिल्ली ने बड़ी कोशिश से हार बरामद करा, अदालत में श्रीमती शकुन्तला सहगल से शिनाख्त करा कर सुपुर्दगी पर हमें अगस्त, १९८६ में मिल गया। दोनों अपराधी हरदीप सिंह, बलवीर सिंह जेल में under trial हैं।

श्री शेर सिंह जी, इतने काबिल, दक्ष, ईमानदार और कर्त्तव्यपरायण पुलिस अफसर हैं कि उनकी सराहना के मेरे पास शब्द नहीं। पुलिस में विरला ही कोई ऐसा नेक ऑफिसर होता है। उन्होंने हमसे कुछ भी नहीं लिया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने इन सच्ची घटनाओं को इस लिए लिखा है कि इससे अस्तेय के प्रति श्रद्धा और विश्वास बढ़े।

(iv) ब्रह्मचर्य

३६. उपस्थ इन्द्रिय का संयम करना, जितेन्द्रिय रहना, किसी प्रकार से भी वीर्य का नाश न करना; सब मैथुनों का त्याग करना और सदाचारी, ब्रह्म-परायण रहना ब्रह्मचर्य कहलाता है।

पूर्णतः ब्रह्मचर्य का पालन वही कर सकता है, जो सात्विक अन्न का सेवन करता है और कामोत्पादक दृश्यों को देखने, इस प्रकार की वार्त्ताओं को सुनने और ऐसे विचारों को मन में लाने से सदैव बचता है।

खासकर फिल्में देखने से कोई ब्रह्मचारी नहीं रह सकता। मैंने ३१ साल पहले व्रत लिया था कि ऐसी कोई Picture नहीं देखूंगा। परमात्मा की कृपा से उसका ठीक पालन हो रहा है। घर वाले कभी कहते हैं कि यह फिल्म धार्मिक है, पर उसका उतना ही दृश्य देखता हूँ।

ब्रह्मचर्य पालन का फल

३७. **ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः**

—(यो० द० २-३८)

अर्थः—ब्रह्मचर्य की दृढ़ प्रतिष्ठा होने पर वीर्य का लाभ होता है, जिससे ब्रह्मचारी शरीर और इन्द्रियों से सुन्दर, स्वस्थ, नीरोग, आकर्षक हो कर लम्बी आयु को प्राप्त करता है। उसकी 'मातृवत् परदारेषु' की भावना बनती है और जीवन निर्दोष होता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह शरीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक शक्तियों को संजोता है।

मन का स्वामी, मनीषी, साहसी, पराक्रमी, मेधावी, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, यशस्वी आदित्य समान होकर सात्त्विक बलों से युक्त हो जाता है।

उसकी वृत्ति थोड़े अभ्यास से निरुद्ध हो जाती है। और वह—

'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्' (—यो० द० १-३)

की स्थिति को प्राप्त कर लेता है। अर्थात् तब द्रष्टा (दर्शन-अभिलाषी योगी) अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित-लीन हो जाता है तथा परमात्मा और अपने स्वरूप को ठीक प्रकार से जान लेता है।

मेरा अपना अनुभव है कि ब्रह्मचारी वेद मन्त्रों के सूक्ष्म रहस्यों को जान लेता है।

३८. ब्रह्मचर्य कायाकल्प का प्राकृतिक उपाय है। इसके पालन से मृत्यु तक वश में हो जाती है। महाभारत में आया है कि भीष्म पितामह जी दक्षिणायन होने के कारण कई माह बाणों की शय्या पर पड़े रहे और उत्तरायण काल होने पर ही अपनी इच्छानुसार प्राण त्यागे। वे अखण्ड ब्रह्मचारी थे।

३९. वेद में ब्रह्मचर्य को इस मन्त्र में परम तप कहा है—

ऋषि-ब्रह्मा, देवता ब्रह्मचारी

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थः— (अ० ११-५-१९)

देवा = ज्ञानी विद्वान् पुरुष
ब्रह्मचर्येण तपसा = ब्रह्मचर्य पालन के तप से
मृत्युम् = मौत को
ह = भी, निश्चय से
उपाघ्नत = मार डालते हैं।
इन्द्रो = ऐश्वर्य शाली परमात्मा
ब्रह्मचर्येण = ब्रह्म में विचरते अथवा लीन रहने वालों को
देवेभ्यः—देवकोटि प्रदान करते हैं (और)
स्वः = सुख, शान्ति एवं आत्म-ज्ञान से
आभरत् = भरपूर कर देते हैं।

ज्ञानी साधक ब्रह्मचर्य के तप से, मृत्यु वश कर लेते हैं।
ब्रह्म में लीन सदा वह रहकर, सुख-शान्ति संजोते हैं॥ १॥

इन्द्र प्रभु की कृपा से वे, देव पदवी पा लेते हैं।
अद्‌भुत शक्ति-मेधा पाकर, जीवन सफल कर जाते हैं॥ २॥

और अर्थ मन्त्र के आधार पर

ब्रह्मचारी, ब्रह्मज्ञान की, खोज निरन्तर करता है।
ईश परायण रहकर वह, ब्रह्ममयी दृष्टि बनाता है॥ ३॥

वीर्य रक्षा से तपस्वी बन कर, वेदाध्ययन करता है।
त्रिविद्या को पाकर वह, आचार्य कुल चमकाता है॥ ४॥

द्यावा पृथ्वी की सभी शक्तियाँ, अन्तर्धारण करता है।
देवों का आह्वान करके, सम स्वर उनमें रहता है॥ ५॥

जीवन में विदेह कहलाता, पश्चात् मुक्त हो जाता है।
आवागमन का चक्र मिटाता, दिव्यानन्द को पाता है॥ ६॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४०. अथर्ववेद काण्ड ११, सूक्त ५ के २६ मन्त्र हैं। यह ब्रह्मचर्य सूक्त कहलाता है। इन सब मन्त्रों का ऋषि ब्रह्मा और देवता ब्रह्मचारी होने से स्पष्ट है कि केवल ब्रह्मचारी ही ब्रह्मद्रष्टा होता है।

ब्रह्मचारी वह होता है, जिसकी प्रत्येक इन्द्रिय का दृष्टिकोण ब्रह्ममय, निर्विकारी हो, मुझे यह सूक्त बहुत प्रिय है। कई जगह बालकों के जन्म दिवस पर 'आध्यात्मिक सुधा' में लिखे १६ मन्त्रों के कविता में अर्थों सहित यज्ञ के साथ इस सूक्त के मन्त्रों की आहुतियाँ मैं स्वयं देता और दिलवाता हूँ। अपने संस्कारों को ऐसा बनाने के लिए, इस तरह साल में मेरे एक-दो यज्ञ इस सूक्त के हो जाते हैं।

२७-८-१९८६ को कृष्ण जन्माष्टमी के उपलक्ष में हमारे समाज (अशोक विहार फैज II दिल्ली) ने प्रातः विशेष यज्ञ का आयोजन किया, उसका संचालक मुझे बनाया। चुनांचे चारों वेदों के विशेष मन्त्रों से यज्ञ कराया, उनमें अथर्ववेद का यह सूक्त लिया।

ऐसा याजक किया और कराया करें। यह मेरा विनम्र सुझाव है।

४१. जैसे अहिंसा सिद्ध योगी के प्रति हिंसक प्राणी भी वैर-भाव को त्याग देते हैं। वैसे ही ब्रह्मचर्य के सिद्ध पुरुष की बहन-बेटी को भी कोई बुरी दृष्टि से नहीं देख सकता।

२५ साल पहले मेरे एक सत्संगी श्री रामलुभाया जी ने एक अपने मित्र की सच्ची घटना सुनाई, जो ब्रह्मचारी रहना चाहता था और आध्यात्मिक विचारों का था, दिल्ली में एक बिल्डिंग ठेकेदार के यहाँ काम करता था। काम खत्म

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने पर वह उसे कलकत्ता में और काम पर ले गये। वह हर माह अपनी विधवा माता और विधवा बहिन; जो कि पंजाब के एक कस्बे में रहते थे, रुपया भेजा करता था। कई कारणों से वह तीन माह तक उन्हें कुछ नहीं भेज सका। उधर उसकी माता बीमार थी। इलाज पर सारा खर्च हो गया। अब वे मोहताज़ हो गए। गरीब थे किससे माँगेंगे'। बेबसी और लाचारी में उसकी बहन के मन में विकार आया और एक शाम सज-धज कर एक खाली तख्त पर बाजार में जाकर बैठ गई, जिसके ऊपर वैश्या रहती थी।

ईश्वर की कृपा से उसका भाई वापस आ गया। स्टेशन से उतर कर ताँगे पर घर आ रहा था, रास्ते में अपनी बहिन को अकेले बैठा देख कर हैरान हो गया। उसे साथ लिया तो बहिन ने रोते हुए सब कुछ बता दिया और कहा कि "मैं यहाँ आधे घण्टे से बैठी थी, मुझे किसी ने भी बुरी नज़र से न देखा और न बुलाया"। तो वह कहने लगा कि 'बहिन! जब मैं हर देवी को अपनी माता, बहिन, बेटी के समान समझता हूँ तो मेरी बहिन को कौन छेड़ सकता था। तनख्वाह दो महीने बाद मिली, मुझे आना था; इसलिए रुपये नहीं भेजे थे।

आदर्श ब्रह्मचारी

४२. इस ऋषिभूमि पर पहले बहुत ब्रह्मचारी होते थे, जो शादी करा कर भी ब्रह्मचारी रहते थे। पर अब ग़ैर शादी-शुदा कुंवारा भी वास्तव में ब्रह्मचारी नहीं। पवनसुत हनुमान जी महान् ईश्वर भक्त, अनुभवी, बुद्धिमान्, ज्ञानी, ध्यानी, **अखण्ड ब्रह्मचारी** और चारों वेदों के विद्वान् थे। सुग्रीव के महामन्त्री थे, बालमीकि रामायण का किष्किन्धा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काण्ड पढ़ें—जब राम-लक्ष्मण जी सीता को ढूंढते फिर रहे थे, तब:—

(i) साथियों के साथ था, सुग्रीव बैठा एक पहाड़ी पर ।
उस समय राम-लक्ष्मण पर, पड़ी उसकी नज़र ॥ १ ॥

डर गया कि बाली ने, भेजा उन्हें उसे मारने ।
हनुमान बोले, मत ऐसी सन्देह की उड़ान ले ॥ २ ॥

सिर्फ उनको देख कर, हमको न डरना चाहिए ।
अनुमान पहले से ही कुछ, ऐसा न करना चाहिए ॥ ३ ॥

मैं अभी जाकर के लाता हूँ, असलियत की ख़बर ।
धैर्य रखना तब तलक, होना न हरगिज़ बेसबर ॥ ४ ॥

(ii) जिस तरफ वे आ रहे थे, उधर को वह चल दिया ।
पास जाकर चरणों में उनके, नत मस्तक हो गया ॥ ५ ॥

और कहा महाराज ! आप कौन ? कैसे आपका आना हुआ ?
आपके शुभ दर्शनों से, हूँ बड़ा गद्‌गद हुआ ॥ ६ ॥

हो रहा हूँ देख कर, हैरान मुनियों-सा लिबास ।
जानना चाहता हूँ, क्यों आप हैं ऐसे उदास ? ॥ ७ ॥

मैं हूँ सेवक आपका, कुछ आज्ञा प्रभु कीजिए ।
धन्य हो जाऊँगा मैं, सेवा जो कोई लीजिए ॥ ८ ॥

(iii) राम ने सुन करके, अपना और लक्ष्मण का परिचय दे दिया ।
हाल सीता जी के गुम होने का, वेदना से कह दिया ॥ ९ ॥

ढूंढते उसको, हम आए हैं यहाँ ।
शायद मिल जाए, कहीं उसका निशां ॥ १० ॥

अपने बारे में भी, कुछ फरमाइए ।
कुछ पता सीता का हो, तो कृपया बतलाइए ॥११ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(iv) दो कर जोड़ उसने कहा 'हनुमान मेरा नाम हैं'।
मन्त्री हूँ सुग्रीव का, जो आजकल परेशान है ।। १२ ।।

उसके भाई बाली ने, है राज उसका ले लिया।
और उसकी पत्नी को, है पास अपने रख लिया ।। १३ ।।

डर से उसके, है अब यहाँ पर रह रहा।
और किसी इमदाद को है, याचना वह कर रहा ।। १४ ।।

(v) राम जी ने खुशी से, इकरार मदद कर लिया।
तब हनुमान उनको, अपने साथ लेकर चल दिया ।। १५ ।।

रास्ते में राम ने, लक्ष्मण से चलते यह कहा।
हनुमान जी का प्रत्येक शब्द था, कितनी विद्या से भरा।। १६ ।।

चारों वेदों का जो न विद्वान् हो।
गुफ्तगू ऐसी नहीं कर सकता वह ।। १७ ।।

४३. पहले शादी करा कर भी पति-पत्नी दोनों ब्रह्मचारी रहते थे। त्रैतायुग में **मैत्रेयी** की प्रतिज्ञा थी कि 'वह उससे शादी करवायेगी जो उससे अधिक ब्रह्मज्ञानी होगा।' कुछ वर्षों बाद **महर्षि याज्ञवल्क्य** ने उसे एक शास्त्रार्थ में हरा दिया। उसने ऋषि से शादी का प्रस्ताव रखा। उन्होंने मना कर दिया कि 'मेरी एक पत्नी कायतानी है, दूसरा विवाह शास्त्र का उल्लंघन होगा।' महाराजा जनक विदेह जी के पास बात गयी। उन्होंने ऋषि से कहा कि 'शादी की ही तो बात है, गृहस्थ की नहीं ।' दोनों को ऐसा स्वीकार था। शादी हुई किन्तु कभी भोग नहीं किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४४. ब्रह्मचारी आदि **शंकराचार्य जो** दक्षिण भारत के कालडी कस्बे (केरल) में सन् ७८८ में पैदा हुए। ५ वर्ष की आयु में ही उनके पिता का स्वर्गवास हो गया, उनकी माता ने उन्हें पाला। वह 'नर्मदा' के किनारे गोविन्द गुरु जी की कुटिया में वेद, दर्शन और सभी शास्त्रों का अध्ययन करके अद्वितीय विद्वान् हुए। उन दिनों बौद्ध धर्म का अधिक प्रभाव था उन्होंने वेदान्त और भक्ति का बहुत प्रचार किया। उनकी इतनी योग स्थिति थी कि वे सदा ब्रह्म परायण रहते और स्वाभाविक था कि सबमें, सब ओर, सब जगह, सर्वदा, सर्वथा सिवाय ब्रह्म के उन्हें कुछ दिखायी नहीं देता था। इसीलिए वे अपनी ब्रह्ममयी दृष्टि के अनुसार 'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूं, ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं। यह संसार मिथ्या, निस्सार और निष्प्रयोजन है। ऐसा मानते थे।

उन्होंने उपनिषदों, भगवद्गीता, वेदान्त और ब्रह्मसूत्रों का भाष्य किया। केवल एकब्रह्म को सिद्ध करने के लिए बहुत शास्त्रार्थ किये। जिनमें से कुमारिल भट्ट और मण्डन मिश्र के साथ बहुत प्रसिद्ध हैं, जो कई दिन तक होते रहे।

मिश्र जी के शास्त्रार्थ में उनकी धर्मपत्नी उभय भारती जो अतिशय विदुषी निर्णायिका थीं। ये दोनों विलक्षण प्रतिभाशाली विद्वान् थे। इनमें शर्त यह थी कि जो शास्त्रार्थ में पराजित हो जाएगा वह विजेता के शिष्यत्व को स्वीकार कर लेगा। वेदान्त का विषय था। मंडन मिश्र जी हार गये, तो उनकी धर्मपत्नी ने अर्द्धांगिनी होने का तर्क देकर शास्त्रार्थ किया और वह भी हार गई। फलस्वरूप दोनों उनके शिष्य हो गये।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मण्डन मिश्र का पता पूछने पर बताया जाता था कि 'जिनके घर के बाहर पिंजरे में बन्द तोता-मैना वेद-मन्त्र उच्चारण करते हैं।')

ब्रह्मचर्य की कितनी महिमा है कि ३२ वर्ष की अल्प-आयु में उन्होंने अनेक शास्त्रार्थ किये, बहुत पुस्तकें लिखीं, आस्तिकता का प्रचार एवं कई लोगों को संन्यास की दीक्षा दे गये।

४५. **परमहंस रामकृष्ण** जी की शादी शारदा जी से हुई; पर प्रभु की प्रेरणा से उनका सम्बन्ध पति-पत्नी का नहीं हुआ, गुरु-शिष्य बन कर रहे। उनकी जीवनी पढ़कर देख लें।

४६. भगवान् **श्री कृष्णचन्द्र** जी महाराज ने केवल एक देवी रुक्मणी जी से शादी की और बारह साल तक दोनों ब्रह्मचारी रहते हुए भक्ति-साधना करते रहे। बाद में रुक्मणी जी के कहने पर कि 'आप समान एक पुत्र होना चाहिए।' उनकी इच्छापूर्ति के लिए एक बार के गृहस्थ से एक सन्तान '**प्रद्युम्न**' रत्न को जन्म दिया और फिर वे पुनः आयुपर्यन्त ब्रह्मचारी रहे तथा गीता जैसी उच्चतम ज्ञान, कर्म, भक्ति-योग की अद्भुत रचना को देकर विश्व का कल्याण कर गये।

वह पुस्तक संसार की प्रत्येक भाषा में छप चुकी है; जिसकी कोई और मिसाल नहीं। मैं समझता हूँ कि अभी उनका मुक्ति का काल समाप्त नहीं हुआ था कि प्रभु-प्रेरणा से अधर्म के नाश के लिए वे पृथ्वी पर आये, जैसा कि उन्होंने कहा है। फिर ब्रह्मलोक को चले गये, क्योंकि आत्मा निष्काम कर्म करने में स्वतन्त्र है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ (—गी० ४-७)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ॥

— (गी० ४-८)

जब भी इस संसार में, होती ग्लानि धर्म की ।
पाप होता है बड़ा, मैं प्रकट होता हूं तभी ॥

(४-७)

नाश को दुष्टों के, और भक्तों की रक्षा के लिए ।
धर्म को युग-युग में आता हूँ जमाने के लिए ॥

(४-८)

४७. अधर्म की वह स्थिति इस वक्त भी उपस्थित है, जैसे चातक अपनी प्यास बुझाने के लिए जल भरे मेघों की ओर गर्दन उठाये देखता है, वैसे ही यदि हम भी वेदमन्त्रों के यज्ञ द्वारा प्रार्थनाओं से भगवान् का आह्वान करें तो हमारी आशाओं की झोली भर जाये। इसमें सन्देह नहीं हो सकता।

ब्रह्मचारियों के कर्त्तव्य

४८. आज १-१२-८६ को प्रातः पुस्तक के इस भाग को लिखते हुए मेरे सामने एक निहायत दर्दनाक घटना पढ़ने को आयी है, कि ३०-११-८६ को पंजाब के होशियारपुर जिले में खुंडा गांव के पास Pepsu Transport की बस में सफर करते हुए २४ मासूम यात्रियों को ज़ालिम उग्रवादियों ने गोली से मार दिया । यह इस प्रकार की तीसरी घटना थी । उस अनर्थ की वेदना में अब यह लिख रहा हूं।

४९. आदर्श ब्रह्मचारी तपस्वी होते हैं, जो सब प्रकार के मैथुनों को त्याग कर, संयमी, सदाचारी, उपासक, परोपकारी और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभु-आज्ञा-पालक होते हैं। धार्मिक व्यक्ति शास्त्रों की आज्ञानुसार ५० वर्ष की आयु के पश्चात् वानप्रस्थ आश्रम के नियम पालन करते हैं। जैसे वेद का पढ़ना-पढ़ाना, अग्निहोत्र यज्ञ करना-कराना और सब प्रकार से लोकसेवा के कर्म करते हैं, यह जानते हुए कि:—

"यज्ञोमय श्रेष्ठतमः कर्मः।"

अर्थात् जो सर्वश्रेष्ठ कर्म हैं, वे यज्ञ के समान हैं। इसके लिए वे अपनी शक्ति, योग्यता, साधन, सामर्थ्य को जुटाते हैं और अवसर आने पर धर्म एवं राष्ट्र के लिए उनको बलिदान कर देते हैं। जैसे कि इस मन्त्र में वेदमाता का आदेश है।

५०. **ऋषि-अथर्व, देवता-इन्द्र**

उत् तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम् ।
यदि श्रातं जुहोतन यद्यश्रातं ममत्तन ।।

—(ऋ० १०-१७९-१, अथ० ७-७२-१)

अर्थः—

उत्तिष्ठत=उठो, खड़े हो जाओ,
अवपश्यत=सावधानी से देखो, खोजो (कि)
इन्द्रस्य=इन्द्र परमात्मा के
ऋत्वियम्=अवसर आने पर, समाँ आने पर
भागम्=अपनी देन हवि को
यदि श्रातम्=यदि वह पक चुकी है (तो)
जुहोतन=उसकी आहुति दे दो। उसका हवन कर दो।
यदि अश्रातम्=यदि अभी पकी नहीं है (तो)
ममत्तन=उसे तैयार करो।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदमाता सावधान कर रही है कि हे मनुष्यो ! यदि देश-धर्म की खातिर जब भी कुर्बानी की आवश्यकता हो, तो अपने परिपक्व ज्ञान-कर्म, उपासना अथवा तन-मन-धन की इस यज्ञ-कार्य में परमात्म-अर्पण कार्य समझ कर आहुति दे दो। यदि योग्यता पूरी न हो तो उसकी तप द्वारा तैयारी करो और अवसर को मत खोना।

५१. **देश-धर्म की रक्षा हेतु, बलिदान की वेला जब आये।**
आहूत करना तन-मन-धन को, जितना तुझसे बन पाये॥

आहुति यदि कच्ची हो, तो योग-विधि से पका लेना।
दुःखी न होना, तप करना, आत्म-बल को पा लेना॥

ईश्वर-कार्य समझ इसे, कर्त्तव्यपरायण सदा रहना।
यह यज्ञकर्म सबसे बढ़कर, आत्मोत्थान का है गहना॥

५२. आहुति पकी होनी चाहिए, इसका अर्थ यह है कि जैसे वृक्ष से कच्चा गिरा हुआ फल किसी काम का नहीं होता, बल्कि खाने वाले को नुकसान पहुँचाता है।

अथवा जिसे विधि नहीं आती और वह आग बुझाने के लिए कूद पड़ता है, तो वह अन्जान अपने को उल्टा जला लेगा।

या एक व्यक्ति को तैरना नहीं आता और वह किसी डूबते बालक को बचाने के लिए छलांग लगा देता है, तो स्वयं डूब जायेगा।

५३. अब एक ऐतिहासिक उदाहरण लें—

एक रात अर्जुन अपनी धर्मपत्नी सुभद्रा को युद्ध के विषय में सुना रहे थे कि 'मोर्चे कैसे बनाते हैं और उन्हें तोड़ा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है, चक्रव्यूह का कैसे भेदन किया जाता है।' जब वे उससे बाहर निकलने की विधि सुना रहे थे तो सुभद्रा को नींद आ गयी, उस वक्त अभिमन्यु गर्भ में था।

जब महाभारत का युद्ध हुआ तो ऐसा समय आया कि कौरवों को मालूम था कि चक्रव्यूह का भेदन पांडवों में केवल अर्जुन ही कर सकता है और वह दूसरे मोर्चे पर लड़ रहा है। इसलिए उन्होंने ऐसा मोर्चा रच कर युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। अभिमन्यु ने साहस किया कि मैं इस मोर्चे को तोड़ना जानता हूं और जोश में उसको तोड़कर अन्दर चला गया, उसे निकलने की विधि नहीं आती थी। फलस्वरूप कौरव सेना ने घेरकर मार दिया।

५४. आज़ादी की जंग में सरदार भगतसिंह जी, श्री चन्द्रशेखर आज़ाद और श्री सुभाषचन्द्र बोस ये पके हुए बलिदानी थे। जिनकी आहुति ने भारत को स्वतन्त्रता दिलायी।

यज्ञ कर्म वैदिक धर्म का प्राण है। 'इदन्न मम' मेरा कुछ नहीं, सब प्रभु की देन है। इस भावना से आत्म-त्याग होता है; जिससे साधक अपना आर्थिक, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक-बल, शक्तियाँ और साधन इस वेद-मन्त्र के आदेशानुसार संसार, राष्ट्र एवं प्राणिमात्र के हित कल्याण के लिए न्यौछावर कर देता है।

५५. ऐसी पवित्र भावना को मेरी पूज्या बहिन श्रीमती शान्ति देवी जी अग्निहोत्री, जवाहर नगर दिल्ली ने एक भजन में सँजोया है। उसका पाँचवाँ बन्ध मन्त्र के अनुसार जोड़ कर उसे प्रस्तुत कर रहा हूँ—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर जा भला कुछ दुनिया का,
न हीरा जन्म गंवा प्यारे।
हर दिल में तेरी याद रहे, कुछ ऐसा कर्म कमा प्यारे ।।

तू परम धाम से आया है,
यह शुभ अवसर अब पाया है।
इक चमक निराली पैदाकर, दे दुनियाँ को चमका प्यारे ।।

यह जन्म अमोलक पा करके,
जा कुछ तो नेकी कमा करके।
दु:खियों के दर्द मिटाकरके, त ले उपकार कमा प्यारे ।।

तेरी जब तक तन में जान रहे,
तुझे पर सेवा का ख्याल रहे।
हो निन्दा या तारीफ़ तेरी, उस ओर न कान लगा प्यारे ।।

बलिदान की वेला आने पर,
परिपाक आहुति अर्पण कर।
अवसर को हरगिज़ मत खोना, ले ध्यान में इसको जमा प्यारे ।।

भगवान् के दर पर अलख जगा,
वर मेधा-बुद्धि का ही पा।
प्रभु के चरणों में शीश झुका, फिर घट में दर्शन पा प्यारे ।।

५६. यदि हम पर चोरी करने या नहाती देवियों के वस्त्र उठाने का कोई आरोप लगाए या हुलिया बिगाड़ कर प्रकाशित करे या दिखाये, तो हम अपना निरादर समझ कर उस पर क्रोधित होंगे, कई तो मानहानि का फौजदारी और हर्जाने का दीवानी दावा कर देंगे।

पर हमारे महापुरुषों भगवान् कृष्णचन्द्र जी या हनुमान् जी के तथाकथित भक्त जब ऐसा अपमान करते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं तो आर्यों को अच्छा नहीं लगता। बाल्मीकि रामायण ने हनुमान् जी की महिमा गायी है। महर्षि दयानन्द जी ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के ग्यारहवें समुल्लास में भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज के बारे में यह लिखा है—

५७. "देखो श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अति उत्तम है, उसका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है, जिसमें कोई अधर्म का आचरण, श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कोई भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा है और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जा दासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी में लगाये हैं। उनको पढ़-पढ़ा, सुन-सुना के अन्य मत वाले श्रीकृष्ण जी की बहुत-सी निन्दा करते हैं।"

५८. ऐसे निन्दकों और पंजाब में कत्ल व खून की होली व लूटमार का जुल्म देखकर दुःखी हृदय से एक प्रार्थना मंत्र उपस्थित कर रहा हूँ; जिसका भाव है कि ऐसे हिंसक पापियों का परमात्मा सर्वनाश करते हैं; क्योंकि वेद में सभी प्रार्थनायें परमात्मा के अटल नियमों के अनुसार हैं। याजक उन कत्ल किए जाने वालों के परिवारों के शोक में कम से कम उनसे संवेदना और अपने कर्त्तव्य-पालन के निमित्त इस मन्त्र के अर्थों की भावना एवं लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए कुछ आहुतियाँ दैनिक यज्ञ में देंगे, ऐसी मेरी आशा है।

देवता-इन्द्र

अकर्मा दस्युरभिनो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः ।
त्वं तस्यामित्रहन् वधो दासस्य दम्भय ॥

—(ऋ० १०-२२-८)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नो अभि = हमारे सब ओर

दस्युः = दुष्कर्मी, अनार्य (विद्यमान हैं)

अकर्मा = अकर्मी, जो बिना कर्म किये जीना चाहते हैं, बिना श्रम किये खाना चाहते हैं, बिना यज्ञ किये भोगना चाहते हैं।

अमन्तुः = जो प्रभु-आज्ञाओं को नहीं मानते, मर्यादाओं का उल्लंघन करने वाले विकर्मी

अन्य व्रतः = (और) धर्म के नियम भंग करने वाले अधर्मी

अमानुषः = मानवता से गिरे हुए असुर-वृत्ति वाले पापी

अमित्रहन् = (हे) शत्रु विनाशक, दुष्ट संहारक प्रभु !

त्वं तस्य = आप उनके

दासस्य = अत्याचारों के लिए

वधः = मरण-दण्ड देकर

दम्भय = (उनका) नाश कर दो।

अर्थ कविता में—

चारों ओर दुष्कर्मी, अकर्मी, विकर्मी, नियम भंग हैं कर रहे।
मर्यादाहीन, मानवतारहित, हिंसक, अधर्मी, पापी बढ़ रहे॥

हे शत्रुनाशक, दुष्टसंहारक, मृत्यु-दण्ड इन्हें दीजे।
न्याय-धर्म की रक्षा हेतु, सर्वनाश इनका कीजे॥

५९. **व्याख्या**—इस मन्त्र की व्याख्या में दूसरों की आलोचना करने से पहले अपने समाज के भाइयों से शुरू कर रहा हूँः—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकल आर्य समाज के, कोई अधिकारी ऐसे भी देखे जाते हैं।
जो ईश्वरीय ज्ञान बताकर के, वेद महिमा दर्शाते हैं ।।१।।

वेद का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना, सुनाना परमधर्म बुलवाते हैं।
वैदिक धर्म की जय बोलो के, गगनभेदी नारे भी लगवाते हैं ।।२।।

पर स्वयं न कभी पढ़ते और न सुनते देखे जाते हैं।
सदाचार का अंश नहीं होता, विपरीत कर्म सब करते हैं ।। ३ ।।

मैं नहीं कहता वे क्या हैं ।
पर वेद मन्त्र के भावों में आर्य नहीं अनार्य हैं ।। ४ ।।

(ii) कई राम-नाम से छपे हुए, वस्त्रधारी भी देखे हैं।
जो मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र की, जय-जयकार बुलवाते हैं ।।५।।

पर पदे-पदे मर्यादाओं का, सदा उल्लंघन करते हैं।
धर्म कार्य एक नहीं करते, केवल ढोंग रचाते हैं ।। ६ ।।

हरे राम होता है मुख पर, बगल में छुरी रखते हैं।
बनते हैं वे बगुला भक्त; पर भक्तिहीन ही होते हैं ।। ७ ।।

ब्रह्मचारी पवनसुत हनुमान को, राम भक्त तो कहते हैं।
पर उस चतुर्वेद के ज्ञाता को, बन्दर की दुम भी लगाते हैं ।। ८ ।।

(iii) भगवान् कृष्ण जी के अनुयायी, उन्हें ईश्वर पदवी देते हैं।
पर माखन चोर और गोपियों के, चीरहर्त्ता भी कहते हैं ।। ९ ।।

गीता के तीसरे अध्याय से, यज्ञ-महिमा के श्लोक तो खूब सुनाते हैं।
लेकिन यज्ञ करना तो दूर रहा, कई इसको व्यर्थ बताते हैं ।।१०।।

अठारहवें अध्याय के, इकसठ-बासठ श्लोकों को तो गाते हैं।
नहीं निराकार को शरण वे लेते, जो सब प्राणियों में बसते हैं।।११।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं नहीं कहता वे क्या हैं।
पर वेद-मन्त्र के अर्थों में, आस्तिक नहीं वे नास्तिक हैं ॥ १२ ॥

(iv) ईसा के परोपकार भी देखे, जो बाइबिल से पढ़कर सुनाते हैं।
एक गाल पर यदि कोई मारे, करना दूसरी कहते हैं ॥ १३ ॥

शासक और वैज्ञानिक भी, गिरजाघरों में जाते हैं।
सत्य, अहिंसा की महिमा सुनते, पर अमल में ऐसा लाते हैं ॥१४॥

परमाणु बम महानाश के, दिन-रात बनाते रहते हैं।
विश्व-शान्ति रखने के, कभी शिखर-सम्मेलन करते हैं ॥ १५ ॥

नहीं मानते कभी किसी की, दिल के खोटे होते हैं।
दूसरे को दोषी ठहरा कर, नितान्त विफल उठ जाते हैं ॥ १६ ॥

(v) इक और, जो मन, वचन, कर्म से कभी एक नहीं होते हैं।
किन्तु इस चतुराई को, राजनैतिक डिप्लोमेसी कहते हैं ॥१७॥

सब्ज़बाग़ दिखला कर के, वोट खरीद कर लेते हैं।
और शासन में आकर के, कहीं अध्यक्ष बन जाते हैं ॥ १८ ॥

वादा एक नहीं निभाते, ऐसे झूठे होते हैं।
प्रजासेवक कहने वाले, अरबपति बन जाते हैं ॥ १९ ॥

मैं नहीं कहता वे क्या है।
पर मन्त्र के अनुसार मानव नहीं वे दानव हैं ॥ २० ॥

(vi) अब तीन वर्षों से पंजाब में, कुछ दीवाने-से फिरते हैं।
जो हिन्दू-रक्षक सिखों की, दशमेश सेनानी कहते हैं ॥ २१ ॥

दिन-रात कत्ल और डाकों के ही, जुर्म केवल कमाते हैं।
और महान् पूजनीय गुरुओं को, आत्माओं को तड़पाते हैं ॥२२॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं जानते निज सर्वनाश को, इतने वे अज्ञानी हैं।
कि जातिहीन वे कर्म कर रहे, पशुयोनि के भागी हैं।। २३।।

मैं नहीं कहता वे क्या हैं।
पर स्पष्ट वेद के शब्दों में, इन्सान नहीं वे दस्यु हैं।। २४।।

६०. इस मन्त्र की पांच आहुतियाँ १-११-८६ दीवाली से अपने समाज के दैनिक यज्ञ में हम दे रहे हैं। उसके बाद इसके कविता में अर्थ पढ़ देते हैं। (११ आहुतियाँ कई वर्षों से 'गायत्री-मन्त्र' की दी जाती हैं)। मेरा विश्वास है कि यदि इस मन्त्र की हृदय के अन्तराल और अर्थों की भावना से चन्द माह तक प्रतिदिन आहुति दें तो दयालु परमात्मा की प्रेरणा से या तो शासक इन आतंकवादियों को, जिनसे कत्ल के घातक शस्त्र पकड़े जाते हैं, कानून को अति सख्त कर और summary trial से मौत के बदले मौत की सज़ा अमल में लाकर एवं आततायियों में से बहुत के विचार परिवर्तन होने से तथा तुरन्त मृत्यु-दण्ड-भय से शान्त हो जायेंगे। या फिर कोई श्रीकृष्ण-सा भगवान् आ सकते हैं, वरना कोइटा के भूकम्प की तरह कोई दैवी कोप उन हत्यारों के गढ़ पर आ जायेंगे। जिससे शांति का नया भाग जन्म लेगा।

६१. जैसे महेशयोगी और ब्रह्मकुमारियों ने घोषणा कर रखी है कि चन्द हज़ार व्यक्ति उनकी बतायी विधि से कुछ काल योग-ध्यान, मौन में हर रोज़ बैठें तो विश्व में सुख-शान्ति का साम्राज्य हो जायेगा। वैसे ही मैं आर्य सार्वदेशिक सभा के पूजनीय प्रधान स्वामी आनन्द बोध जी सरस्वती और वैदिक भक्ति साधन आश्रम के अधिष्ठाता वन्दनीय महात्मा दया-नन्द जी से, जिनके सौम्य कोमल हृदय से भारत के पतन की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदना युक्त प्रार्थनाएं निकलती रहती हैं, जो उनके और कई सुनने वालों के नयन सजल करती हैं, से विनीत प्रार्थना करता हूँ कि कुछ ऐसे वेदमन्त्रों को और दरशा कर उन द्वारा धर्मप्रेमियों को प्रतिदिन यज्ञ करने का आह्वान करें। मन्त्र शक्ति को हम अटल मानते हैं और यज्ञ द्वारा यह कई गुणा बढ़ जाती है, इसे भी सब जानते हैं। सो इसका असर निश्चय होगा। इस पर कोई आस्तिक सन्देह नहीं कर सकता यह कर्त्तव्य-पालन सुगमता से करके अपने लाखों भयभीत भाई-बहनों को सहानुभूति दे सकते हैं। इससे याजकों को आध्यात्मिक लाभ भी होगा। आशा है हमारी धार्मिक संस्थाएँ इस पर शीघ्र विचार करके कोई आदेश देंगे। धन्यवाद!

६२. ब्रह्मचारी की भावना और आदर्श ऐसे होने चाहिए कि ब्रह्ममयी दृष्टि बना कर सब वस्तुओं में ब्रह्म को देखना, उस जैसा निर्विकारी होना और संयम, सदाचार से ब्रह्म-परायण रहते हुए ब्रह्म का साक्षात्कार करना।

मत भूलें कि ब्रह्मचारी ही ब्रह्म-उपासना और ब्रह्म-प्राप्ति का अधिकारी बनता है।

(v) अपरिग्रह

६३. धन-सम्पत्ति, भोग सामग्री एवं अन्य वस्तुओं को आवश्यकता से अधिक स्वार्थभाव या लोभवश इकट्ठा न करना और त्याग भाव से भोगना अपरिग्रह कहलाता है।

मेरे विचार में अपरिग्रह का यह भी अर्थ है कि व्यर्थ के विचार, जो ईश्वर-साक्षात्कार में बाधक हैं, उन्हें न लाना। ज्ञान तथा कर्म-इन्द्रियों से संयम पूर्वक काम लेते हुए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका उतना ही उपयोग करना जितना हमारे जीवन-लक्ष्य अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि के लिए अत्यावश्यक हैं। अभिप्राय: हमारा देखना, सुनना, बोलना, पढ़ना, चिन्तन और कर्म व्यर्थ के नहीं होने चाहिए।

६४. योगी अधिक धन को कमाने में परेशानी समझता है। उसे सम्भालने की फिक्र, खोये जाने का डर और अनावश्यक वस्तुओं को खरीदने के विचार से अपरिग्रह का उल्लंघन। इन तीनों अवस्थाओं को दुःख समझ वह Hoarding नहीं करता। अधिक कमाई को दान कर देता है; क्योंकि उसे यह हर समय याद रहता है—

बहुत रहना नहीं, साथ ले जाना नहीं, लौट कर आना नहीं।
व्यर्थ संग्रह क्यों करें ? निज काम तो आना नहीं॥

अपरिग्रह पालन का फल

६५. **अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्ता सम्बोधः॥**

(यो० द० २.३९)

अपरिग्रह की स्थिरता से जन्म के कारणों का बोध हो जाता है। इसकी सिद्धि से अविद्या आदि क्लेश और विकार निर्मूल हो जाते हैं। चित्त शुद्ध, निर्मल हो जाता है, जिससे साधक को भूत और भविष्य का तथा अपने जन्म का कि पिछले जन्म में कौन था ? कहाँ था ? कैसा था ? और कैसा होऊँगा ? इसका बोध हो जाता है। क्योंकि; जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार, वासना और स्मृति का भण्डार चित्त की भूमि में रहते हैं; जो अगले जन्म में साथ जाते हैं। शुद्ध संस्कारों वाला बालक या बालिका जब तक छल-कपट से रहित रहता है; अपने पूर्व जन्म के विषय में बता सकते हैं; जिसके कई

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाहरण मिलते हैं; फिर बाद में लोभ, मोह का आवरण आ जाने से वह भूल जाता है।

यम-भङ्ग-कारण

६६. यमों का भङ्ग तीन प्रकार से होता है-(i) हिंसा-असत्य-भाषण, चोरी, व्यभिचार आदि स्वयं करे, (ii) दूसरों से कराए तथा (iii) दूसरों के किए हुए का समर्थन करे। उन हर एक के आगे तीन कारण होते हैं, लोभ, क्रोध और मोह।

लोभ से हिंसा:—लोभ से मनुष्य को मारकर उसका धन लूटना, या मांस चमड़े के लोभ से पशु का वध करना।

क्रोध से हिंसा—क्रोध में आकर या द्वेष से हिंसा करना, किसी को मार देना।

मोह से हिंसा—स्वर्ग आदि की प्राप्ति समझ कर पशुओं की बलि करना।

इस तरह ३ × ३ = ९ प्रकार से प्रत्येक यम का उल्लंघन होता है इनसे बचें।

भोग और कर्मों का निर्देश

६७. दूसरी योनियों के प्राणी, पशु आदि केवल भोग भोगते हैं, परन्तु मानव स्वतन्त्रता से नए कर्म करता है और तदनु-सार फल भोगने में परतन्त्र होता है। वेद की कमाल देन है कि यजुर्वेद (४०-१) में भोगों को कैसे भोगें, इसका निर्देश है; क्योंकि शुरू में बालक केवल भोग भोगता है। कर्म बाद में करता है। इसलिए कर्म की विधि अगले मन्त्र में कही गई है। वे मन्त्र इस प्रकार हैं। इन मन्त्रों के शब्दार्थ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द जी के 'वेद भाष्य' में देख लें, मैं इनके अर्थ कविता में दे रहा हूँ--

६८. ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ।।
—(य०४०-१)

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और जो कुछ भी इसमें सारा है ।
है ईश्वर की सभी माया, वही सब में समाया है ।।

वही इसका रचयिता, संचालक, नियन्ता और मालिक है ।
वही शिल्पी, फिटर, चालक, स्वामी, कर्त्ता-धर्त्ता है ।।

तुझे अधिकार केवल है, त्याग से उपभोग करने का ।
मत करना कभी लालच, यह धन तेरा नहीं, है उस प्रभु का ।।

६९. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।
(य० ४०-२)

हे पुरुष ! सौ वर्ष इससे भी अधिक, जीने की रख तू कामना ।
सत्कर्मों को ही करने की, सदा रखना हृदय में भावना ।।

आसक्ति रहित हो करके, कर्त्तव्य कर्मों को करो ।
अकर्मा, विकर्मा मत बनो, न कर्म फल की चाह करो ।।

बन्धन रहित होंगे तभी, इसमें तू रख आस्था ।।
इसके सिवाय मोक्ष पाने का, नहीं कोई रास्ता ।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यम पालन में बाधक

७०, सार यह निकला कि यमों के विपरीत आचरण का मुख्य कारण लोभवृत्ति है, जिससे मनुष्य हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, ब्रह्म परायण नहीं रह सकता और जमाखोरी करता है। इसलिए लोभ को सब पापों का बाप कहा गया है।

इसकी उत्पत्ति इच्छाओं; आवश्यकताओं; व्यसनों और अपनी ज़िम्मेदारियों को बढ़ाने से होती है। अतः जब तक यह समाप्त नहीं होता; वरेण्यं के मार्ग पर नहीं चल सकते। उल्टे मार्ग पर चलेगा; जिससे अपने लक्ष्य की दूरी दुगुनी हो जाती है।

नियम

७१. **शौच संतोष तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानिनियमाः ॥**

—(यो० द० २-३२)

शौच

बाह्य और आभ्यन्तर शरीर; इन्द्रियाँ एवं अन्तःकरण को पवित्र रखना शौच कहलाता है। स्नान, वस्त्र, शरीर, आचार, व्यवहार, धनोपार्जन आदि की शुद्धि बाह्य शुद्धि है।

राग, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, दुश्चिन्तन, दोषारोपण, अहङ्कार, अभिमान और यम के विरोधी विचारों से मन को पृथक् रखना तथा मैत्री करुणा, दया, धर्म अनुसार सत्य आचरण से युक्त करना एवं चित्त से अविद्या आदि क्लेशों को विवेक द्वारा दूर करना आन्तरिक शौच है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७२. अद्भिर्गात्राणि शुद्धचन्ति मनः सत्येन शुद्धचति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धचति ॥

—(मनु० ४-१२)

अर्थ:—

शरीर जल से, मन सत्य से, बुद्धि ज्ञान से और जीवात्मा विद्या और तप से शुद्ध होता है ।

और विचारें तो —

इन्द्रियों की शुद्धि संयम से ।
प्राणों की शुद्धि प्राणायाम से ।
चित्त की शुद्धि वृत्तिनिरोध से ।
हृदय की शुद्धि उपासना से ।
चिन्तन की शुद्धि ध्यान से
अहङ्कार की शुद्धि नम्रता से होती है ।

७३. **यम की पवित्रता**

आचरण की पवित्रता **अहिंसा** हैं ।
वाणी की पवित्रता **सत्य** है ।
विचारों की पवित्रता **अस्तेय** है ।
नाभि की पवित्रता **ब्रह्मचर्य** है ।
कामनाओं की पवित्रता **अपरिग्रह** है ।

नियम की पवित्रता

बाह्य और आन्तरिक शरीर एवं इन्द्रियों की पवित्रता **शौच** है ।

भावनाओं की पवित्रता **सन्तोष** है ।
श्रम की पवित्रता **तप** है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७२. अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धयति ॥

(मनु० ४-१२)

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

जीवात्मा

वित्रता

श्रम की पवित्रता तप है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन की पवित्रता **स्वाध्याय** है।
उपासना की पवित्रता **ईश्वरप्रणिधान** है।

७४. जब तक प्रत्येक अंग में पवित्रता नहीं समाती, तब तक त्रिभुवन पावन प्रभु के पवित्र आनन्द रस की धाराएँ अन्तःकरण में प्रवाहित नहीं हो सकती।

पवित्रता उपासना का आधार होने से महर्षि देव-दयानन्द जी ने सन्ध्या में तीसरा '**मार्जन-मन्त्र**' रखा। यह और दूसरा (**अंग स्पर्श**) मन्त्र महर्षि की अपनी अनुपम देन है, यदि ये किसी वेद, दर्शन, उपनिषद् या ब्राह्मण-ग्रन्थ आदि से लिये होते तो निश्चय वह उनका विवरण देते।

इस मन्त्र के अर्थ व भाव इस प्रकार हैं—

(i) **ओ३म् भूः पुनातु शिरसि**=

हे सर्वरक्षक प्राणों से प्यारे प्राणेश! मेरे शिर में बुद्धि को पवित्र करो, जिसके शुद्ध ज्ञान से मैं अपने सदाचार की रक्षा कर, तेरी ओर बढ़ सकूं।

(ii) **ओ३म् भुवः पुनातु नेत्रयोः**=

दुःख विनाशक विभु! मेरे नयनों तथा सभी ज्ञानेन्द्रियों को पवित्र करो। जिससे मेरा दृष्टिकोण आलोकित होकर मेरी विजय-यात्रा का ब्रह्मपथ स्पष्ट दिखायी दे और:—

तेरे जलवे से भर जायें इस तरह आँखें।
कि जिधर देखूं आयें आप ही नज़र में॥

मातृदृष्टि दयानन्द सम बन जाये।
वेश्या पर भी जो पड़े, भावना पाप बदल जाये॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(iii) **ओ३म् स्वः पुनातु कण्ठे**=

सुख-शान्ति, आनन्द के दाता देव ! मुझे पवित्र कण्ठ बख्शो; जिससे मेरे स्तुति-गीत उपासना बनकर आपको रिझाने वाले हों ।

(iv) **ओ३म् महः पुनातु हृदये**=

हे परम महान्, पूजनीय हृदयेश ! मेरे हृदय को राग-द्वेष, ईर्ष्या, कृपणता, कुटिलता, कठोरता, मलीनता और विकारों से रहित करके पवित्र करो, जिससे कि मैं आपको अपने हृदय-कमल में विद्यमान देख, सदा आपका अनुभव करता रहूं ।

(v) **ओ३म् जनः पुनातु नाभ्याम्**=

हे जगज्जननी माँ ! मेरी नाभि को पवित्र करो, जिससे मैं अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा कर, ब्रह्मपरायण रह सकूं ।

(vi) **ओ३म् तपः पुनातु पादयोः**=

हे दुष्टों को सन्तप्त करने वाले तपोमय परमेश ! मेरे पगों पर खड़े शरीर और उसकी इन्द्रियों को पवित्र करो; जिससे मेरी जीवन-लता पर वे सुगन्धित कलियाँ खिलें; जो तेरी पूजा का नैवेद्य बन सकें । अर्थात् मुझसे यज्ञ-कर्म बन आयें ।

(vii) **ओ३म् सत्यं पुनातु पुनः शिरसि**=

हे सत्यस्वरूप, अविनाशी परमात्मा ! पुनः मेरे मस्तिष्क को पवित्र करो, जिससे सुविचारों से विवेकी बनकर परम वैराग्य की स्थिति को प्राप्त कर सदा आप में लीन रह सकूं ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(viii) **ओ३म् खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र** =

हे आकाशवत् सर्वव्यापक, आश्रयदाता प्रभु ! मेरा सम्पूर्ण बाह्य और अन्तःकरण पवित्र करो। जिससे मुझे आपके सहवास का पूरा आभास रहे और मेरे मानसिक नयनों से कभी ओझल न रहें, जिससे प्रत्येक कार्य आप द्रष्टा की देख-रेख में धर्मानुसार हो पायें।

७५. शौच का फल

शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः

--(यो० द० २-४०)

अर्थ:---

शौच से अपने अङ्गों से घृणा होती है और अन्यों से संसर्ग छूट जाता है।

शौच के निरन्तर अभ्यास से योगी का अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और उसे प्रतीति होती है कि यह शरीर मल मूत्र का भण्डार है। इसकी उत्पत्ति भी रज-वीर्य से होती है। हड्डी, मांस, रुधिर, चर्म जिनसे यह शरीर स्थिर है, कितने घृणित हैं। आँख, कान, नाक, मुँह और रोम-रोम से मल, पसीना आदि जो कुछ भी निकलता है, सब दुर्गन्ध-युक्त है, और मृत्यु होने पर शव कितना बदबू देता है। इन सब मलीनताओं को देखकर योगी को अपने शरीर के प्रति राग, आसक्ति, ममत्व, मोह, लगाव छूट जाता है। औरों के शरीरों को भी स्पर्श नहीं करना चाहता। उनके संसर्ग से विरक्त वह एकान्त प्रेमी हो जाता है। इसकी रुचि ईश्वर-उपासना की ओर हो जाती है। यह बाह्य-शरीर शुद्धि का फल है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७६. आन्तरिक शुद्धि का फल

सत्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयाऽऽत्मदर्शनत्वानि च

—(यो० द० २-४१)

अर्थः—

आभ्यन्तर शौच की दृढ़-स्थिति होने पर अन्तःकरण के शुद्ध होने से चित्त-मन की एकाग्रता, स्वच्छता, प्रसन्नता, इन्द्रिय-संयम, वृत्ति-निरोध और आत्म-दर्शन की योग्यता हो जाती है। अर्थात् योगी की बुद्धि निर्मल, मन एकाग्र, चित्त निरुद्ध, इन्द्रियाँ चञ्चलता रहित, वश में होकर वृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती है।

इन्द्रियों के विषयों से पृथक् होने पर प्रतिहार सिद्ध हो जाता है और योगी का प्रवेश धारणा, ध्यान, समाधि में होने लगता है। इस तरह उसमें आत्म और परमात्म-साक्षात्कार की योग्यता बन जाती है।

७७. मार्जन-मन्त्र में बुद्धि की पवित्रता के लिए दो बार प्रार्थना की गई, क्योंकि शुद्ध ज्ञान द्वारा ही पापों से बचा जाता है। गीता में भगवान् श्री कृष्ण चंद्र जी महाराज ने अर्जुन को ज्ञान योग के सम्बन्ध में बहुत कहा है, तीन श्लोकों के अर्थों से इस महत्त्व को जान लें।

(i) **अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।**
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥

—(गी० ४-३६)

यद्यपि महा पापियों में भी हो तेरा शुमार।
बैठ कर इस ज्ञान-नौका में तू हो जाएगा पार॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ii) यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥
(गी० ४-३७)

ईन्धन जैसे प्रज्वलित अग्नि में, है होता खत्म ।
ऐसे ज्ञान-अग्नि में, सभी कर्म होते भस्म ॥

(iii) न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥
—(गी० ४-३८)

अन्तः करण-शुद्धि हेतु, ज्ञान से बढ़कर है निश्चय कुछ नहीं ।
पा सको यह आत्मा में, योग से स्वयं, बिना जाये कहीं ॥

कबीरा जब मन निर्मल भया जैसे गङ्गा नीर ।
पीछे-पीछे हरि फिरें कहत कबीर कबीर ॥

७८. जैसे अहिंसा बाकी चार यमों को सिद्ध करने का मूल है, ऐसे ही शौच के अन्तर्गत नियमों के पालन का आधार इससे है ।

और, जैसे अहिंसा की पराकाष्ठा होने पर हिंसक प्राणी भी बैर भाव को त्याग देते हैं, वैसे ही पवित्रता के सम्पादन से दृष्टि पवित्र हो जाती है और कामी पर भी पड़े तो उसमें कामवासना नहीं रहती ।

लंका में जब रावण सीता जी को उठा लाया तो उन्हें अशोक वाटिका में रखा, जब-जब रावण उनके पास कामवासना से उन्हें मनाने गया तो सीता की पवित्र दृष्टि पड़ते ही उसकी भावना बदल जाती थी और वह लौट आया करता था । रावण के एक शाही रत्न ने सलाह दी कि 'आप राम-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्र का वेष और रूप बनाकर सीता के पास जायें तो शायद आपकी मनोकामना पूर्ण हो जाए, इसको भी आज़मा कर देख लो।' उसने रावण का राम-सा रूप बना दिया। दर्पण दिखाया तो वह खुश हो गया।

जब रावण सीता की कुटिया की ओर चल दिया तो रास्ते में उसके कानों में बार-बार आवाज आने लगी—'मातृवत् परदोरषु',-'मातृवत् परदारेषु······'' (पराई स्त्री को माता समान समझें) उसको आत्म-ग्लानि से धिक्कार होने लगा, तो लज्जा आ गई और वापस लौट आया, राम का वेष उतार दिया, अपने सलाहकार से कहा कि 'राम तो बना पर काम न बना', यह था श्री रामचन्द्र जी की पवित्रता का प्रभाव कि उनकी धर्मपत्नी को कोई भी कुदृष्टि से नहीं देख सकता था। परमात्मा के इस अटल सिद्धान्त को समझें।

७६. महर्षि दयानन्द जी से जब पण्डित शास्त्रार्थ में हार गये तो उन्होंने षडयन्त्र रचा कि इनके आचरण पर लांछन लगाया जाये।

इसके लिए एक सुन्दर वैश्या को बहुत-सा इनाम देकर उनको पतित करने के लिए भेजा। स्वामी जी की जब ध्यान, समाधि खुली, सामने दृष्टि पड़ी तो उन्होंने पूछा "माता जी ! आप कैसी आयी हैं।" उनके इन वचनों एवं पवित्र दृष्टि पड़ने से उसके सारे मलीन पाप-विचार बदल गए और महाराज जी के चरणों में गिर कर द्रवित हृदय से आँखों में आँसू लिये, अपने भेजे जाने का सारा हाल बता दिया। उनकी निर्मल दृष्टि और पवित्र भावना का इतना असर पड़ा कि उसने सदा के लिए व्यभिचार छोड़ने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रतिज्ञा कर दी। यह शौच-साधना का चमत्कार है।

(ii) सन्तोष

८०. यथाशक्ति समर्थ, साधन और योग्यता के अनुसार धर्म-अनुष्ठान से प्रयत्न एवं अत्यन्त पुरुषार्थ करने पर जो प्राप्त हो, उसी में प्रसन्नता से तृप्त रहना, अधिक इच्छा न करना, हर हाल-काल अवस्था में परमात्मा का धन्यवाद करना और सब प्रकार की तृष्णा को छोड़ देना सन्तोष कहलाता है।

सन्तोष का फल

८१. **सन्तोषादनुत्तम सुखलाभः**

—(यो० द० २-४२)

अर्थः—

सन्तोष से अति उत्तम सर्वश्रेष्ठ सुख प्राप्त होता है।

तृष्णारहित हो जाने से और वस्तु-भोग की लालसा मिटने पर सन्तोषी को जो सुख-शान्ति आनन्द की अनुभूति होती है, उसका एक अंश भी लोभी को नहीं हो सकता।

महर्षि व्यास जी का कथन है—

८२. **यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।**
तृष्णाक्षय सुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्॥

अर्थः—

संसार में जो कामसुख है, वह तृष्णारहित सन्तोषी के महान् दिव्य सुख के सोलहवें अंश के समान भी नहीं है।

मनु महाराज ने लिखा है—

८३. **सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।**
सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः॥

—(मनु० ४-१२)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ:—

जो सुख चाहता है, वह पूरा संतोष करके संयमी होवे, क्योंकि सुख का आधार सन्तोष और दुःख का मूल कारण असन्तोष है।

८४. वास्तव में सन्तोषी ही महाधनी है। इच्छा रखने वाला सदैव निर्धन है—

बिन धन कौन धनपति कोषी।
आशारहित महासन्तोषी॥

गोधन, गजधन, वाजिधन और रतन धन खान।
जब आवे सन्तोष धन सब धन धूरि समान॥

—सन्त कबीर

(iii) तप

८५. साध्य की सिद्धि में कष्टों और द्वन्द्वों को प्रसन्नता से सहन करके साधना किये जाना तप कहलाता है।

जिस प्रकार अश्व-विद्या का कुशल सारथी चंचल घोड़े को यत्न से साधता है, इसी प्रकार जो योगी शरीर और इन्द्रियों को परिश्रम से वश करता है, तथा यम-नियम पालन, कर्त्तव्य और धर्म कार्यों को कष्टों के बावजूद धैर्य करता रहता है, वह तपस्वी कहलाता है।

८६. सर्दी-गर्मी सहन करना, शारीरिक तप है।
भूख-प्यास सहन करना, प्राणों का तप है।
मान-अपमान सहन करना, मन का तप है।
हानि-लाभ सहन करना, बुद्धि का तप है।
सुख-दुःख सहन करना, इन्द्रियों का तप है।
हर्ष-शोक सहन करना, चित्त का तप है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जय-पराजय सहन करना, हृदय का तप है।
सब द्वन्द्वों को सहन करना, आत्मिक तप है।

तप का फल

८७. कार्येन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ।।
--(यो० द० २-४३)

(i) तप से अशुद्धि रहित होकर इन्द्रियाँ निर्मल होती हैं, परम पवित्रता से धारणा, ध्यान, समाधि अर्थात् संयम सिद्ध होता है; जिससे दिव्यताओं का आधान होता है। दिव्य दर्शन, दिव्य-श्रवण, दिव्य रसना, दिव्य-सुवास और दिव्य-स्पर्श की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। जिनका योगदर्शन के तीसरे विभूति पाद में वर्णन है।

(ii) श्री व्यासदेव जी महाराज लिखते हैं कि—"अनादि कर्म-क्लेश वासना से विषयों में प्रवृत्ति कराने वाले विषय-जाल अशुद्ध रजस्-तमस् संस्कार जो चित्त को मलीन करते हैं। बिना तप के अनुष्ठान से नाश को प्राप्त नहीं होते।

(iii) तप से शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण, मन, चित्त, बुद्धि की अशुद्धि ऐसे दूर होती है, जैसे ज़ंग लगे लोहे को अग्नि में तपाने से उसका अवर्ण दूर होता है, अथवा रगड़ने (Grinding) से धातुयें शीशे की तरह चमक जाती हैं। इसके स्पष्टीकरण का एक उदाहरण इस प्रकार है—

बहुत काल पहले एक राजा ने भव्य भवन बनवाया। उसके विशेष 'स्वागत-कक्ष की दीवारों पर बीच में चित्रकारी कराने के लिए विश्व के प्रसिद्ध अखबारों में विज्ञापन दिया गया कि—'जो चित्रकार अपनी बेहतरीन कला दिखाएगा,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उससे चित्र बनवा कर बहुत बड़ा इनाम दिया जाएगा।' इस तरह एक आर्टिस्ट चुन लिया गया।

उस राजा का अपना दरबारी कलाकार बड़ा सादा, अनुभवी और धर्मात्मा था। उसने अपने गुरु जी से जाकर, नम्रता से पूछा कि "महाराज! मुझे भी अपने आशीर्वाद से योग्यता प्रदान करो कि मेरी कला में भी आकर्षण आ जाए।"

महाराज ने समझाया—

"राजा को कहो कि अपने कमरे के आमने-सामने कोनों के बीच में पूरा पर्दा लगा दें; दो साथ की दीवारों पर चित्रकारी वह करेगा; सामने की दीवारों पर आप काम करेंगे। एक हिस्से के दरवाजे की चाबी उस विदेशी कलाकार को दे दें और दूसरे की आपको। दोनों गुप्त तौर पर अपनी-अपनी कलाकारी करेंगे, निर्धारित समय बाद पर्दा हटा कर देख लेना, यदि मेरा कार्य पसंद न आए तो वह हिस्सा भी उसी से बनवा लेना।" उसे क्या करना चाहिए, यह भी समझा दिया।

शाही कलाकार ने ऐसे ही राजा से प्रार्थना की जो स्वीकार हुई। दोनों ने अपनी-अपनी दीवारों पर कार्य करना आरम्भ कर दिया।

अपने गुरुजी के आदेशानुसार कई बट्टियों से, संगमर-मर की दीवारों को हर रोज़ प्रातः से सायं तक रगड़ता रहा और पानी से धोता रहा। निश्चित दिन पर्दा हटाया गया, चारों तरफ की जगमगाहट से विदेशी चित्रकार की बनायी कला का प्रतिबिम्ब राजसी कलाकार की शीशे समान दीवारों पर पड़ा तो उसकी शोभा, सुन्दरता, आकर्षण, चमक-दमक और निखर कर प्रकट हुई। उसे देखकर राजा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्चर्य चकित रह गया। अति प्रसन्न होकर विदेशी कलाकार को राष्ट्रीय चित्रकार और राजसी कलाकार को राष्ट्रीय विचित्रकार की उपाधि से सम्मानित किया एवं दोनों को बराबर का इनाम देकर मालामाल किया।

८८. इस दृष्टान्त का भाव यह है कि परमात्मा इसलिए नज़र नहीं आता, क्योंकि अति समीप है, जैसे आँख को अपना सुरमा नज़र नहीं आता है, यह देखा जाता है दर्पण से। हमारे शरीर में चित्त-मन दर्पण हैं। जब अष्टाङ्ग योग की तपोमय साधना से मल, अवर्ण, विक्षेप दूर होकर मन शुद्ध और निर्मल हो जाता है तो उसमें आत्मा अपने और परमात्मा के ज्योति-स्वरूप को साक्षात् कर लेता है।

यह तप की महिमा कही गयी।

(iv) स्वाध्याय

८९. वेद दर्शन, ब्राह्मणग्रन्थ, उपनिषद, रामायण, गीता आदि वैदिक ग्रन्थ आध्यात्मिक विद्या के तत्त्वज्ञान को दर्शाने वाले सत्शास्त्रों का नियम पूर्वक सतत अध्ययन करना अथवा ओ३म्, गायत्री मन्त्र का जप, ध्यान, चिन्तन, आत्म-निरीक्षण करना स्वाध्याय कहलाता है।

भगवान् श्री कृष्ण जी ने कहा है—

……स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः……॥

—(गी० ४-२८)

अर्थात् यत्नशील पुरुष स्वाध्याय द्वारा ज्ञान यज्ञ करते हैं।

स्वाध्याय का फल

९०. **स्वाध्यायादिष्टदेवता सम्प्रयोगः**

(यो० द० २-४४)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ:—

स्वाध्याय से मन चाहे इष्ट देवता परमात्मा के साथ मेल होता है, सम्बन्ध जुड़ता है, साक्षात्कार होता है। इससे इष्ट-विषयक ज्ञान का रहस्य जाना जा सकता है और सब आवि-ष्कार स्वाध्याय के फल हैं।

९१. **विद्ययामृतमश्नुते।**

— (य० ४०-१४ का भाग)

अर्थ—

विद्या (ज्ञान) से ही अमृत (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।

महर्षि व्यास भाष्य—

'स्वाध्याय शील को देवता ऋषियों और सिद्धों के दर्शन होते हैं और वे उसके योग कार्य में सहायक होते हैं।

'स्वाध्याय के सिद्ध होने पर योगी को इष्ट देवता का योग होता है अर्थात् वह देवता प्रत्यक्ष होता है।

—(भोजवृत्ति)

९२. वेदानुकूल ग्रन्थों के स्वाध्याय से ईश्वर के साथ जीव का सम्बन्ध होता है। उससे प्रीति बढ़ती और वह उनके अनुकूल आचरण वाला होता जाता है, जिससे कार्यों में परमात्मा की सहायता मिलती है।

(v) ईश्वर-प्राणिधान

९३. (i) सर्व अनासक्त और निष्काम भाव से अनवृत, नितान्त आत्मना ईश्वर परायण होकर पुनः पुनः हृदय के अन्तराल से प्यारे प्रभु से एक निष्ठ होकर युक्त, स्थित, समाहित रहना अर्थात् भक्ति विशेष करना।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ii) श्रद्धा-प्रेम से मुग्ध होकर मनसा, वाचा, कर्मणा, वेद-विहित आज्ञाओं का पालन करते हुए निरभिमान हो, कर्त्तव्य-कर्मों को करते हुए उनके फल और अपने आपको प्रीतम के विनीत स्निग्ध चरणों में नम्रता पूर्वक समर्पण कर देना और उसके आश्रय को दृढ़ता से ग्रहण करना।

(iii) ओ३म् का अर्थ और भावनासहित मानसिक जप करना।

(iv) अपनी सारी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक शक्तियों एवं सामर्थ्य साधन, गुण, धन, सम्पत्ति को परमेश्वर की दी हुई दात समझ कर श्रद्धा, प्रेमभाव से उसी के निमित्त यज्ञ आदि कार्यों में समर्पण करना।

यह ईश्वर प्राणिधान कहलाता है।

९४. **तपःस्वाध्यायेश्वर प्राणिधानानि क्रियायोगाः॥**

—(यो० द० २-१)

महर्षि पतञ्जलि ने इन तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान को ही क्रिया योग कहा है। जो दूसरे शब्दों में कर्म, ज्ञान, उपासना के अर्थों का द्योतक है। यह ऐसी क्रिया है। जिसके द्वारा प्यारे प्रभु से मिलन होता है।

९५. यह एक चीज़ और ध्यान में रहे कि ईश्वर प्राणिधान दसवें स्थान पर आया है अर्थात् जब तक पाँच यम और पहले कहे चार नियमों का पालन नहीं होता, तब तक साधक की उपासना सफल और स्वीकार नहीं होती, न ही ईश्वर प्राणि-धान में प्रवेश होता है। अर्थात् यदि कोई दिन भर हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार, जमाखोरी करता है और अपवित्र,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोभी प्रमादी, अज्ञानी है तो उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं हो सकती ।

६६ जैसे मलीन वर्त्तन में यदि कोई अमृत भी किसी को दे तो कोई ज्ञानी उसे ग्रहण नहीं करेगा । ऐसे ही बीड़ी-सिगरेट पीने वाला, मुंह से गाली-गलौज और असत्य बोलने वाला यदि ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना करता है तो वह कैसे स्वीकार हो जायेगी । इसीलिए वेद में एक मन्त्र है—

'प्रभु देव हम तुम्हें अपनी नमस्कारों से क्रोधित न करें, जब हम तेरी आज्ञाओं का पालन नहीं करते ।'

जैसे बीमार माता बालक से कहती है—"बेटा ! मुझे दवाई पिला दो, पानी ला दो" इत्यादि और वह अवहेलना करता है । किन्तु दिन में कई बार नमस्कार करता है, तो निश्चय माँ नाराज़ होकर बोलेगी "दफा हो ! कहे तो लगते नहीं, नमस्कार क्यों करते हो ?"

ईश्वर प्राणिधान का फल

९७. समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात् ।

(यो० द० २-४५)

अर्थः—

ईश्वर प्राणिधान से समाधि की सिद्धि होती है ।

महर्षि व्यास जी ने लिखा है कि—'ईश्वर प्राणिधान से जीवन मुक्ति का सुख प्राप्त होता है ।'

ईश्वर प्राणिधानाद्वा

—(यो० द० १-२३)

ईश्वर की भक्ति विशेष से चित्तवृत्ति निरोध होकर समाधि की सिद्धि होती है । अर्थात् जो मनुष्य ईश्वर के प्रेम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और चिन्तन में निमग्न होकर उसी में लीन हो जाता है। उससे समाधि बन आती है।

९८. इससे ऋतम्भरा प्रज्ञा बनती है, जिससे निर्बीज समाधि सिद्ध होती है और योगी कालान्तर में होने वाली घटनाओं का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकता है। प्रभु की कृपा, दया, करुणा का पात्र बनता है।

९९. भक्तिविशेष अथवा ईश्वर प्राणिधान में प्रवेश के लिए अहंकार को विलीन करना पड़ता है, जिससे परमात्मा के दर्शन हों।

दिया अहं को जब हमने मिटा।
बीच में जो पर्दा था, जाता रहा।

रहा पर्दे में जब वह न पर्दानशीं।
दूसरा कोई उसके सिवा न रहा।।

उपासक की एक ही कामना रहती है कि—

ऐसा भक्ति का जाम पिला दो मेरे साकी।।
अपनी सुध-बुध न रहे, कुछ भी बाकी।।

१००. इन्द्रियों से जो ज्ञान होता है, वह केवल बाहर का ज्ञान होता है, किन्तु ईश्वर प्राणिधान से भीतर का ज्ञान होता है। अर्थात् आत्मा की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति जागृत हो जाती है। इससे योग-अभ्यास में आये विघ्न भी दूर हो जाते हैं। जिनका विवरण समाधिपाद के तीसवें सूत्र में है—

व्याधि-स्त्यान संशय प्रमादालस्याविरति भ्रान्ति दर्शनालब्ध भूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः—(यो०द०१-३०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये नौ योग के विघ्न चित्त के विक्षेप, अन्तराय, मल अथवा प्रतिपक्षी कहलाते हैं ।

(i) **व्याधि**=शारीरिक रोग होना, वात, पित्त, कफ से या किसी कारण से, मानसिक पीड़ा, इन्द्रियों की विषमता, मन की चंचलता इत्यादि ।

(ii) **स्त्यान**=अकर्मण्यता, कर्मरहित होने की चेष्टा, इच्छा होने पर भी किसी कार्य को करने में समर्थ न हो सकना, जी चुराना, लाभ का ज्ञान होते हुए भी साधन न कर पाना । योग में प्रवृति न होने का स्वभाव ।

(iii) **संशय** =सन्देह और द्विविधा में रहना कि ईश्वर है या नहीं योग-साधन कर सकूंगा या नहीं । और करने पर भी सिद्धि मिलेगी या नहीं, आत्म-अविश्वास, इत्यादि ।

(iv) **प्रमाद** =योग-साधनों को न करना या उपेक्षा, अवहेलना, ग़फलत, लापरवाही कौताही करना, व्रत ले कर भी अनुष्ठान को मनोयोग से न करना ।

(v) **आलस्य**=शरीर के भारीपन या मन की दुर्बलता से योग-अभ्यास को छोड़ देना, सुस्ती, ढीलापन अथवा चेष्टा और उत्साह रहित होना, तमोगुण से साधनों में प्रवृत्त न होना ।

(vi) **अविरति**=इन्द्रियों की विषयों में रुचि, तृष्णा, आसक्ति होने से चित्त में वैराग्य का अभाव होना, अपने साधन में प्रीति का न रहना ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(vii) **भ्रान्ति दर्शन**=योग साधनों में विश्वास न रहना, इन्हें असमता के कारण ग़लत समझना। कुछ का कुछ मानना।

(viii) **अलब्धभूमिकत्व**=साधनों का अनुष्ठान करने पर भी योग की किसी भूमि में भी प्रवेश न होना, किसी कमी से समाधि का न लगना।

(ix) **अनवस्थितत्व**=योग-साधन करने पर भी समाधि में चित्त का स्थिर न होना, योग की भूमियों में प्रवेश करके भी दृढ़ भूमि न रहना।

१०१. जैसे दुःखों से चिन्ता और चिन्ता से रोग उत्पन्न होते हैं, जिसे व्याधि कहते हैं, ऐसे ही अन्य आठ विघ्नों का भी व्याधिमूल अन्तराय है। इससे आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक दुःख उत्पन्न होते हैं और इन्हें, मन को एकाग्र कर, एकनिष्ठ हो, ओ३म् के जप, ध्यान अर्थात् ईश्वर प्राणिधान से हटाया जा सकता है, जैसा कि इस सूत्र में कहा है —

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्वाभ्यासः ।। —(यो० द० १-३२)

अर्थः—उन (विघ्नों और उपविघ्नों) को दूर करने के लिए एकतत्व ईश्वर में चित्त को लगाने का अभ्यास करें और ब्रह्म का आश्रय लें।

यम-नियम-पालन के उपाय

१०२. इसी प्रकार यम-नियमों के पालन में विघ्न दूर करने का महर्षि ये उपाय लिखते हैं—

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ।।

(यो० द० २-३३)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ:—वितर्क (विरोधी तर्क) को हटाने के लिए प्रतिपक्ष की भावना करनी चाहिए। अर्थात् अहिंसा आदि यम और शौच आदि नियमों में जब साधक के भीतर उसके विरोधी विचार उत्पन्न हों तो उन्हें विरोधी विचारों की विरोध भावना द्वारा हटाना चाहिए। जैसे—

क्रोध आने पर शान्ति का चिन्तन करें।

हिंसा के विचार आने पर दया का भाव लायें।

काम सताये तो ब्रह्मचर्य का महत्व सामने लायें और उसके दुष्परिणामों का विचार करें कि इससे शक्ति और बल का नाश, स्वास्थ्य और सौन्दर्य का ह्रास, पश्चाताप, आत्मग्लानि, बदनामी आदि होती है।

इसी प्रकार प्रत्येक बुरे विचार आने पर उसके बुरे अंजाम, अनिष्ट फल का चिन्तन करके इस प्रतिपक्ष भावना से मन को उधर जाने से हटा दें।

१०३. व्यास भाष्य के अनुसार—"जब ब्रह्मज्ञान के इच्छुक योगी के चित्त में यम के विरोधी—हिंसा, झूठ, चोरी, विषयासक्ति, संग्रह भावना के वितर्क उत्पन्न हों कि मैं उस बैरी का हनन करूँगा, उसको दुःख तथा हानि पहुँचाने के लिए असत्य भी बोलूंगा, उसका धन भी हरण करूँगा इत्यादि।"

१०४. इस प्रकार जब यम, नियमों का बोध होने लगे तब उनमें प्रवृत्त न होवें, किन्तु इन वितर्कों के विरोधी पक्षों का बार-बार चिन्तन करें और इस प्रकार सोचें कि 'संसार की प्रचण्ड अग्नि में संतप्त हो कर उससे बचने के लिए सब भूतों को अभय दान देकर मैंने योग-मार्ग की शरण ली है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब उन छोड़े हुए हिंसा आदि अधर्मों को पुनः ग्रहण करना कुत्ते के सदृश अपनी ही वमन को चाटना है। धिक्कार है मुझे; यदि मैं योग-मार्ग को छोड़कर अज्ञान रूपी गड्ढे में गिरकर अपना पतन और सर्वनाश करूँ।'

१०५. एक और प्रतिज्ञा का ध्यान कर लेना चाहिए, याष्क आचार्य ने 'निरुक्त संहिता' में लिखा है कि—'जब जीव गर्भ में उलटा लटका होता है तो वह उस कष्ट की वेदना में परमात्मा से ऐसा कहता है; जो कविता के शब्दों में इस प्रकार है—

गर्भ का यह दुःख भगवन्, अब सहा जाता नहीं।
क्या करूँ लाचार हूं, कुछ बस मेरा चलता नहीं॥

अब के बाहर आ गया, भजकर तुझे पा जाऊँगा।
है मेरा इकरार, जिसको अवश्य निभाऊँगा॥

१०६. अर्थात् देव ! अब के जन्म पाकर मैं तेरी उपासना कर मोक्ष के लक्ष्य को पाने तक निर्विश्राम प्रयत्न करूँगा। मार्ग के किसी पड़ाव पर नहीं रुकूंगा। अपनी जीवन-नौका को घाट-घाट पर विश्राम नहीं दूंगा। बल्कि जिस प्रकार मान-सरोवर के हंस एक ही उड़ान में समुद्र को पार कर जाते हैं। उसी तरह मैं भी इसी एक जन्म में निरन्तर योग-साधन करता हुआ भव-सागर को लांघ जाऊँगा, ऐसा मेरा निश्चय है।

१०७ मां के पेट से बाहर निकलते ही उसकी दो क्रियाएँ स्वाभाविक होती हैं। एक माता के चरणों में पड़कर नमस्कार, की मुद्रा में जाना, दूसरा 'उऽवाँ, उऽवाँ' तोतली बोली में 'ओ३म् ओ३म्' कहना यह क्रमशः भक्ति की पहली और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तिम क्रिया है; क्योंकि उपासना का प्रारम्भ नमस्कार से होता है, मध्य प्रभु की आज्ञाओं का पालन करना और अन्त में उनके चरणों में समर्पित हो जाना।

१०८. यम-नियम का भङ्ग आन्तरिक शत्रु विषय-विकारों की दुष्प्रवृत्तियों से होता है। यदि साधक को उनसे महती विनष्टि का ज्ञान हो जाये, तो वह समझ जाए कि यह जाति-हीन कर्म हैं और भय से उनका त्याग निश्चय कर लेगा। पहले इस वेदमन्त्र से चेतावनी लें, जिसके उद्गाता दृष्टा महर्षि हमें सावधान कर रहे हैं कि भीतरी ६ राक्षस वृत्तियों को त्यागें। अन्तर्निहित मन्त्र का आशय यह है कि वरना आगामी जन्म में उस-उस पशु की जाति मिलेगी। कारण कि अविद्या जन्य कर्मों के विपाक कर्म-आश्रयों से वासना के संस्कार बनते हैं और तदनुरूप जन्म मिलता है। यह अटल सिद्धान्त है।

१०९. **देवता-इन्द्र, आत्मा**

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि
श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुं उत गृध्रयातुं
दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र॥
(ऋ० ७-१०४-२२, अ० ८-४-२२)

अर्थः—

इन्द्र=हे समर्थवान् आत्मन्!

(i) **उलूकयातुं**=उल्लू का सा आचरण (मोह अन्धकार) उल्लू तमोगुणी, अन्धकार प्रिय होता है, जो अज्ञान का प्रतीक है। मोह सबसे बड़ा अज्ञान है।

(ii) **शुशुलूकयातुं**=भेड़िये का चलन (क्रोध)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(iii) **श्वयातुमुत**=कुत्ते का स्वभाव (ईर्ष्या-द्वेष)
कुत्ता जाति-द्रोह रखता है।
उत=तथा

(iv) **कोकयातुं**=चक्रवाक-चिड़े की वृत्ति (काम वासना)
चिड़ा अतिशय कामी होता है।

(v) **सुपर्णयातुं**=अति पतनशील बाज की चाल (अहंकार)
बाज गर्व और अभिमान से दूसरे पक्षियों पर आक्रमण करता है।
उत=और

(vi) **गृध्रयातुं**=गीध का वर्त्ताव (लोभ-लालच)
गीध मुर्दे तक को खा जाने की लोभ वृत्ति और स्वार्थभाव रखता है।

रक्ष=इन राक्षस समूह को
दृषदेव=पत्थर से जैसे
प्रमृण=पीस डालते हैं
जहि=ऐसे ही इन वृत्तियों और दुर्भावनाओं को कुचल दें।

जैसे मिट्टी के ढेले को पत्थर से पीस डालते हैं, वैसे योग-अभ्यास रूप प्रहारक साधन से नष्ट कर दें।

हे मानव ! तू पशु सम दुराचरण से, सर्वथा मन मोड़ ले।
उल्लू भेड़िये, कुते, चिड़े, बाज, गीध के चलन को छोड़ दे।।

ये राक्षस हैं अतिघातक, नाश करते तेरा जीवन बरमला।
आत्मबल से इन्हें मिटा दो, शिला से जैसे टूटता मिट्टी डला।

मोह, क्रोध, द्वेष, काम, मद, लोभ हैं दोष छे इनके।
यदि नहीं छूटते ये तुमसे, जाति में जाओगे इनके।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११०. विषय-विकारों की अति से जीवन-नाश की दूसरी चेतावनी इस चार्ट से लें—

क्रम	विषय	इनकी गाँठ	नाश करता है	लौकिक हानि	दुष्परिणाम	इन्हें किसमें बदलें	आगामी जन्म प्रायः कैसा
१.	काम	आँख पर	ध्यान को	अपमानित करता है	रोगी बनाता है	संयम में	चिड़े का
२.	क्रोध	वाणी पर	अवसान (होश) को	अनर्थ कराता है	आयु क्षीण करता है	दया में	भेड़िये का
३.	लोभ	बुद्धि पर	ईमान को	सब पाप कराता है	सम्मान हरता है	सन्तोष में	गीध का
४.	मोह	मन पर	ज्ञान को	पक्षपात कराता है	बन्धन में डालता है	परमात्म-प्रेम में	उल्लू का
५.	अहंकार	कान पर	मान को	अभिमानी बनाता है	परमात्मा से दूर करता है	नम्रता में	बाज़ का
६.	ईर्ष्या-द्वेष	चित्त पर	शान्ति को	शत्रु बनाता है	भयभीत रखता है	मेल-जोल, प्रीति में	कुत्ते का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१११. यम-नियम पालन निमत्त वैराग्य के ऐसे भाव जगायें—

हम देश बिगाने हैं, दुःखों का है जो घर।
सुखी तभी होंगे, जब पहुँचेंगे अपने घर॥

है योग का इक मार्ग, ब्रह्मलोक जो जाता है।
यम नियम जो तय कर लें, कठिन नहीं रहता है॥

११२. प्रायः लोग योग-साधना पथ के पथिक नहीं होते, क्योंकि वे उषाकाल में नहीं उठते, इसका कारण आलस्य और प्रमाद है। इसके लिए मेरी अपनी प्रतिपक्ष भावना कुछ साल पहले थी कि जब मेरी तीन बजे प्रातः आँख खुलती, तो बिस्तर में पड़े-पड़े चेतावनी के ये पद गाता रहता और फिर आधे घण्टे में उठ जाता था। अब एक साल से तो निरन्तर एक से दो बजे के अन्दर उठकर स्वाध्याय और लिखने में बैठ जाता हूँ—

रे मन मंज़िल बहुत आगे पड़ी है।
मुसाफिर शब से उठता है, जो जाना दूर होता है॥

दूर प्यारे की पुरी है, अब सवेरा हो रहा।
जाग कर चल दे उधर, मध्याह्न जीवन ढल रहा॥

ब्रह्ममुहूर्त्त गया, आलसी बन पड़ा हूँ अभागा।
भक्त सारे उठे, नित्यकर्म में लगे, मैं न जागा॥

उठ फ़रीदा सुत्या, पढ़ नमाज़ तत्काल।
रब जिनान्दे जागदे, नफ़रां की सोवन नाल॥

यह हीरा जन्म अनमोल है, मिले न बारम्बार।
इसको न गर सफल किया, डूबेंगे मंझधार॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रे मन, क्यों गर्भ का इकरार है भुला रहा।
कल्पना उस दुःख की कर, क्यों नहीं है जाग रहा ॥

११३. साधक प्रायः ऐसे प्रसिद्ध भजन गाया करते हैं—

(१) वेला अमृत गया, आलसी सो रहा, तू न जागा।
(२) उठ जाग मुसाफिर भोर भयो...इत्यादि।

इस भजन के चौथे बन्ध की एक पंक्ति बदल कर चार बन्ध और जोड़ दिये हैं। इसलिए वह लिख रहा हूँ—

उठ जाग मुसाफिर भोर भयो, अब रैन कहां तू सोवत है।
जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है ॥१॥

टुक नींद से अंखियां खोल ज़रा, और परमपिता से ध्यान लगा।
यह प्रीतिकरन की रीति नहीं, प्रभु जागत है तू सोवत है ॥२॥

जो कल करना सो आज कर ले, जो आज करना सो अब कर ले।
जब चिड़ियों ने चुग खेत लिया, तब पछतावत क्या होवत है ॥३॥

प्रिय ज्ञान के चक्षु से देखो, दुष्कर्मों में नहीं चैन कभी।
जब पाप की गठरी शीश धरी, फ़िर शीश पकड़ क्यों रोवत है ॥४॥

रे दिव्य मन कुछ सोच ज़रा, जो आलस में समय गँवाता है।
भाग उसका लुट जाता है, पुनः अवसर फिर नहीं आवत है ॥५॥

जो आत्म-जागरण कर लेता, वह वेद-ज्ञान को पाता है।
गर यात्रा में बेसुध रहे, नहीं मंज़िल को वह पावत है ॥६॥

ओ३म् नाम की तरणी का, आधार नहीं जो लेवत है।
भव सागर की उठती लहरों में, निश्चय ही जा डूबत हैं ॥७॥

विवेक-ध्यान की उषा में, बेदार सदा जो रहता है।
प्रभु का प्यारा हो कर के, सखा उसका बन जावत है ॥८॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब प्रातः जागरण के महत्त्व को वेद माता के आदेश से जानें—

देवता-विश्वेदेवा

यो जागार तमृचः कामयन्ते, यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह, तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥
—(ऋ० ५-४४-१४, सा० १८२६)

यो जागार =जो प्रातः अमृत वेला ब्रह्म मुहूर्त्त में जागता है,
तमृचः कामयन्ते =उसको वेद की ऋचायें, स्तुतियाँ चाहती हैं।
यो जागार तमु =जो अज्ञान-निद्रा त्यागता है, उस को ही
सामानि यन्ति =साम वाणियाँ, समतायें प्राप्त होती हैं।
यो जागार =जो जाग कर सत्य-असत्य का विवेक करता है,
तमयं सोम =ये सोम परमेश्वर
आह =उसे कहते हैं (अब)
तवाहं सख्ये =मेरा तेरी मित्रता में ही निवास है,
न्योकाः अस्मि =तेरे सख्य के लिए उपस्थित हूं।

जो ब्रह्ममुहूर्त्त जाग गया, उसे वेद-ऋचायें चाहती हैं।
सार-तत्व का ज्ञान करातो, रहस्य अपना दर्शाती हैं॥

अज्ञान निद्रा को जो त्यागे, वह साम स्तोता होता है।
भय, शोक से रहित हुआ, समावस्था पाता है॥

विवेक सबेरे में जो जागे, स्वयं परमेश्वर कहते हैं।
सखा उसी का हो करके, निज रक्षा में ले लेते हैं॥

११४. नियमों के पालन से ही यमों की सिद्धि, क्लेशों और विकारों का नाश हो सकता है। जब तक बाह्य और भीतरी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवित्रता से अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता, शौच सिद्धि कैसी ? स्पष्ट है कि—

(i) **शौच** का पालन नहीं होता, तो **सत्य** का आचरण नहीं बनता।

(ii) **सन्तोष** नहीं होता, तो **अस्तेय** पालन असम्भव है।

(iii) **तप** का जीवन नहीं, तो ब्रह्मचर्य नहीं रहता।

(iv) वेद का **स्वाध्याय** नहीं, तो **अहिंसा** के महत्त्व को नहीं जान सकते।

(v) ईश्वर **प्रणिधान** में प्रवेश नहीं होता, तो **अपरिग्रह** के लिए त्याग नहीं हो सकता।

इसलिए मैंने गायत्री महा-महिमा के चार्ट में नियम को पहले रखा। महर्षि पतञ्जलि ने यम पहले इसलिए रखे, क्योंकि इन अनिवार्य कर्त्तव्य सामाजिक कर्मों के पालन से अपने एवं औरों को भी सुख मिलता है। नियम केवल अपने उत्थान तथा उन्नति के लिए हैं। इसलिए यम का महत्त्व अधिक है।

११५. महर्षि देव दयानन्द जी ने आर्य समाज का दसवाँ नियम इसी आधार पर बनाया—

"सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालन में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र हैं।"

3. आसन

११६. **स्थिर सुखमासनम्**

—(यो० द० २-४६)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थः —

जिस रीति से देर तक स्थिर होकर, बिना हिले-डुले, सुखपूर्वक बैठा जाए उसका नाम आसन है।

अभ्यासी को चिरकाल तक अविचल होकर ध्यान में बैठना होता है, इसलिए स्वस्तिक आसन, सुखासन, समासन, पद्मासन, सिद्धासन जिसमें भी निश्चल होकर अधिक समय तक बैठ सके वही उपयुक्त है।

आसन-सिद्धि का उपाय अनन्तों के सम्मुख आने से अर्थात् पशु पक्षियों को देखकर, उष्ट्रासन, मयूरासन आदि लगाना, यह भी आसन सीखने की विधि है।

जैसे सर्वदेशी वस्तु हिल-जुल नहीं सकती, इसी प्रकार अनन्त ईश्वर व आकाश आदि में ध्यान लगा कर अपने को गतिशून्य बनाने का अभ्यास करने से आसन सिद्ध हो जाता है।

आसन की स्थिति ऐसी सरल, स्वाभाविक होनी चाहिए जिससे स्थित रहने के लिए कोई शारीरिक या मानसिक प्रयास न करना पड़े।

आसन का फल

११७. ततोद्वन्द्वाऽनभिघातः

—(यो० द० २-४८)

इससे द्वन्द्वों की चोट नहीं लगती। अर्थात् सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि द्वन्द्व नहीं सताते। इनसे मुक्त होने पर ही योगी अन्तर की गहनतम भूमियों में प्रवेश पाता है।

आसन-सिद्धि से कई रोगों की भी निवृत्ति हो जाती है। इससे बाह्य और अन्तःकरण समाहित हो जाता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासना के लिए मन का शान्त, एकाग्र, निर्विकार, निर्विचार, निरुद्ध होना अत्यावश्यक है, क्योंकि प्राणों को सम करने पर मन का भी वशीकार होता है। इसलिए अब उपासना के लिए अगला साधन प्राणायाम कहा गया।

4. प्राणायाम

११८. तस्मिन्सतिश्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।

—(यो० द० २-४९)

आसन के स्थिर हो जाने पर श्वास-प्रश्वास गति को रोकना प्राणायाम कहलाता है।

अर्थात् बाहर की वायु को नासिका द्वारा अन्दर लेना श्वास और बाहर निकालना प्रश्वास कहलाता है।

प्राणायाम पाँच प्रकार के होते हैं (योग दर्शन में चार प्रकार के कहे हैं, स्तम्भ को बाह्य और आभ्यन्तर कुम्भक में लिया है)।

(i) **रेचक**= अन्दर की वायु को नासिका द्वारा बाहर निकालना।

(ii) **पूरक**= वायु को नासिका द्वारा भीतर ले जाना। इसे आभ्यन्तर प्राणायाम भी कहते हैं।

(iii) **बाह्यकुम्भक**= प्रश्वास को निकाल कर बाहर रोके रखना।

(iv) **आभ्यन्तर कुम्भक**=श्वास को अन्दर लेकर भीतर रोके रखना।

(v) **स्तम्भ वृत्ति**= प्राण की बाह्य और आभ्यन्तर दोनों गतियों को जहाँ का तहाँ रोक देना।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११९. प्राणायाम के मन्त्र से उसके अर्थों का विचार करते हुए प्राणायाम करने का विशेष लाभ है, वह सन्ध्या का चौथा मन्त्र इस प्रकार है—

ओ३म् भूः, ओ३म् भुवः, ओ३म् स्वः, ओ३म् महः, ओ३म् जनः, ओ३म् तपः, ओ३म् सत्यम् ।।

प्राणायाम के मन्त्र से यह अनुपात हो,—यदि एक मन्त्र से पूरक तो दो मन्त्र से रेचक और चार मन्त्र से कुम्भक होना चाहिए।

प्राणायाम खड़े होकर करना चाहिए, बैठ कर नहीं। कई प्रकार के प्राणायाम होते हैं, जैसे भ्रामरी, भस्त्रिका, कपालभाति, शीतकारी, शीतली, सूर्यभेदी, चन्द्रभेदी आदि। इनकी जानकारी किसी योगी से सीख कर के अभ्यास करें।

१२०. स्वस्थ मनुष्य के श्वास की गति दिन-रात में इक्कीस हज़ार छः सौ (२१,६००) बार होती है, इस स्वाभाविक श्वास की गति की संख्या गायन, भोजन करने, चलने, दौड़ने, निद्रा, मैथुन, व्यायाम, क्रोध आदि में क्रमशः बढ़ जाती है।

१२१. मनुष्य की आयु उसके श्वास-प्रश्वास की गति पर निर्भर है, श्वासों की गति की संख्या जिस परिमाण से बढ़ती जाएगी, उसी परिमाण से आयु घटती जाएगी और जिस परिमाण से संख्या घटती जाएगी, उसी परिमाण से आयु की वृद्धि होती जाएगी। केवल कुम्भक में श्वास-प्रश्वास की गति का निरोध होता है, इसलिए इसका अनुपात चौगुना कहा गया है।

सात्विक मिताहार, सदाचार, शान्त, मौन रहन।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचर्य का पालन, सौम्यता और परमात्मा के ध्यान-स्मरण आदि से श्वासों का व्यय कम होता है, जिससे आयु बढ़ती है।

प्राणायाम का फल

इसके दो लाभ हैं—

१२२. **ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥**

—(यो० द० २-५२)

अर्थः—

उस प्राणायाम के सिद्ध होने से प्रकाश पर पड़ने वाला पर्दा क्षीण होता है।

अर्थात् हमारे अन्दर जो सतोगुण है, उसे रजस् और तमस् का पर्दा ढक देता है, जिससे अनेक दोष आ जाते हैं। प्राणायाम से सब अवर्ण दूर होते हैं; अन्तःकरण शुद्ध, पवित्र, निर्मल हो, सतोगुणी हो जाता है। सात्विक भावनाएं बनती हैं और विवेक ज्ञान का उदय होता है।

१२३. **देवता-इन्द्रः मरुतश्च**

वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वेदेवा अजहुर्ये सखायः।
मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥

(ऋ० ८-९६-७)

अर्थः—

इन्द्रः= (हे) ऐश्वर्य साधक आत्मा
विश्वेदेवा= सब देव समाज, दिव्य भाव, दिव्य गुण
ये सखायः= (तेरी विजय यात्रा में) जो सच्चे मित्र हैं,
वृत्रस्य= पाप असुर के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्वसथात् = साँस से, फुंकार से, बलप्रदर्शन से
ईषमाणा = डर कर भाग जाते हुए
त्वा अजहुः = तुझे छोड़ देते हैं
ते सख्यं = (हे इन्द्र ! यदि) तेरी मैत्री
मरुद्भिः अस्तु = सम हुए प्राणों की शक्ति के साथ हो,
अथ = तो परिणामतः
इमा विश्वाः पृतना = पाप की इस सब सेना को, दुर्भावनाओं को
जयासि = जीत सकते हो, विजयी हो सकते हो और योग-साधना के दिव्य-गुण धारण करने में समर्थ हो जाते हो।

जैसे विदुषी माता जब उसका पुत्र परदेश जाता है तो उसे समझाती है कि 'बेटा ! वहाँ यह करना, यह न करना, दोषों से बचना, अच्छी संगति में रहना इत्यादि। ऐसे ही वेदमाता हम भटके जीवों को उपदेश दे रही हैं कि बच्चो—

प्राणों के सम रखने पर, आत्म-मैत्री हो जाती है।
सब आसुरी वृत्तियाँ हट जातीं और देव सभा लग जाती है ॥१॥

मन एकाग्र होता है, चित्त-निरुद्ध अवस्था बनती है।
प्रकाश-आवरण मिटता है, धृतप्रज्ञा बुद्धि होती है ॥ २ ॥

धारणा-ध्यान समाधि की, तब मंज़िल तय हो जाती है।
बिछड़ी हुई आत्मा, फिर प्रीतम से मिल जाती है ॥ ३ ॥

१२४. मनु जी महाराज द्वारा प्राणायाम से लाभः—

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

—(मनु० ६-७१)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ:—

जैसे अग्नि में तपाने से धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं। वैसे ही प्राण के निग्रह (प्राणायाम) से इन्द्रियों के दोष, मानसिक रोग, मिथ्या ज्ञान आदि दग्ध, भस्मीभूत हो जाते हैं।

१२५. प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य

—(यो० द० १-३४)

अर्थ:—

अथवा प्राण को बलपूर्वक बाहर निकालने और रोकने से चित्त स्थिर होता है।

प्राणों के सम और स्थिर होने पर धारणाओं में समाहिति समाधि बनती है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान को धारण करती हैं—

कान शब्द को, आँख रूप को, जिह्वा रस को, नासिका गन्ध को और त्वचा स्पर्श को इसीलिए सूत्र में इन्हें धारणा कहा गया।

१२६. धारणा चित्त की एकाग्रता को भी कहते हैं। अर्थात्—

नेत्र की धारणा है दर्शन।

श्रोत्र ,, ,, श्रवण।

जिह्वा ,, ,, रसास्वादन।

नासिका ,, ,, गन्ध।

त्वचा ,, ,, स्पर्श।

प्राणायाम के सिद्ध होने से इनमें धारण करने की अधिक योग्यता आ जाती है और फिर ध्यान की स्थिति बनती है। चित्त (मन) की निरोधावस्था बनती है, जो योग का अन्तिम ध्येय है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग दर्शन में चित्त को मन के अर्थ में लिया गया है।

१२७. महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेद भाष्य भूमिका के उपासना विषय के अन्तर्गत लिखा है—

"प्राणायाम के बारम्बार अभ्यास करने से प्राण उपासक के बस में हो जाता है। प्राण और मन के स्थिर होने से आत्मा भी स्थिर हो जाता है। इन तीनों के स्थिर होने के समय अपने आत्मा के बीच में जो आनन्द स्वरूप अन्तर्यामी परमेश्वर है, उसके स्वरूप में मग्न हो जाना चाहिए। जैसे मनष्य जल में गोता मार कर ऊपर आता है, फिर गोता लगा जाता है। इसी प्रकार अपने आत्मा को परमेश्वर के बीच में बारम्बार मग्न करना चाहिए।"

१२८. सभी प्राणायाम से शरीर की नीरोगिता, स्वास्थ्य की उपलब्धि, बल-पराक्रम की वृद्धि, अशुद्धि का क्षय, जठराग्नि की तीव्रता, नाड़ी तथा रक्त शोधन, दीर्घायु, ज्ञान की प्राप्ति, मन की स्थिरता, अन्तःकरण की शुद्धि और ईश्वर की सिद्धि होती है।

१२९. ब्रह्मचर्य के पालन के साथ प्राणायाम 'सोने में सुहागा' की उक्ति चरितार्थ करता है। बहुतों ने देखा होगा कि ऐसे योगी अपने पेट में तख्ते रखवा कर ऊपर से मोटर गाड़ी चलवाते हैं। यह क्रिया विशेष प्राणायाम का चमत्कार है।

उनका शरीर बड़ा सुडौल और आकर्षक हो जाता है।

जैसे शरीर की शक्ति दण्ड बैठक लगाने से बढ़ती है वैसे प्राणों का बल प्राणायाम से बढ़ता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5. प्रत्याहार

१३० स्वविषयासंप्रयोगश्चित्तस्य स्वरूपाऽनुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ।।

—(यो० द० २-५४)

अर्थः—

इन्द्रियों का अपने विषयों के साथ सम्बन्ध न होना और उनसे पृथक् होकर चित्त के स्वरूप का अनुकरण-सा करने लगना प्रत्याहार कहलाता है।

प्रत्याहार कहते हैं—पीछे हटने को। विषयों से विमुख होकर अन्तर्मुखी होना।

इन्द्रियाँ चित्त (मन) के अधीन हैं। जब चित्त विषयों से हटा तो इन्द्रियाँ भी विषयों से हट जाती हैं। जिस प्रकार मधु बनाने वाली रानी मक्खी के उड़ने पर सभी मक्खियाँ उड़ने लगती हैं और बैठने पर बैठ जाती हैं।

१३१. अनासक्त होकर परमेश्वर के निमित्त होकर कर्मों को करना प्रत्याहार का लक्षण है; जैसे कछुआ अपनी इन्द्रियों को समेट लेता है, ऐसे इन्द्रियों को विषयों से हटा लेना प्रत्याहार है।

प्रत्याहार का फल

१३२. ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम्

(यो० द० २-५५)

अर्थः—

इस प्रत्याहार की सिद्धि से इन्द्रियाँ पूर्णतः वश में हो जाती हैं।

चित्त का इन्द्रियों सहित विषयों की ओर न जाना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितेन्द्रियता कही जाती है। इससे प्रज्ञा स्थिर होती है और धारणा-ध्यान-अवस्था में प्रवेश होता है।

(vi) धारणा

१३३. देशबन्धश्चित्तस्य धारणा

—(यो० द० ३-१)

अर्थः—

किसी देश विशेष में या चक्र पर चित्त-वृत्तियों को बाँधना धारणा कहलाती है।

अपनी देह में, नाभिचक्र, हृदय-कमल, नासिका या जिह्वा का अग्रभाग, आज्ञाचक्र, ब्रह्मरन्ध्र इत्यादि में चित्त की वृत्तियों को ठहराना और परमात्मा के गुणों को धारण करने का नाम धारणा है।

धारणा की सिद्धि से मन में ज्ञान की योग्यता और विवेक बढ़ता है, जिससे बुराइयों का त्याग होता है।

धारणा का फल

१३४. धारणासु च योग्यता मनसः

—(यो० द० २-५३)

अर्थः—

च=और (प्राणायाम से) धारणाओं में मन की योग्यता होती है।

ज्ञानेन्द्रियाँ भी धारणाएँ हैं; क्योंकि रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श को धारण करती हैं, इसलिए इनमें चित्तवृत्ति को रोककर, एकाग्रता अर्थात् धारणा (मन-चित्त को एकाग्र करना ही धारणा है) से ओ३म् या गायत्री का जप किया

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाये, तो सूत्र के अनुसार बढ़ी हुई दिव्य मन की योग्यता और शक्ति धारणाओं में भी उसकी योग्यता, शक्ति और दिव्यता को अधिक कर देगी। क्योंकि एकाग्र मन द्वारा समाधि बनती है, समाहिति आती है । इसलिए स्वाभाविक है कि उस-उस धारक इन्द्रिय में एकाग्रता के प्रभाव से; जप द्वारा उन-उन इन्द्रियों में समाहिति अवस्था आ जाएगी, तो सिद्ध हुआ कि—

नेत्र में धारणा से दर्शन शक्ति की योग्यता बढ़ेगी और समाहिति आएगी ॥

श्रोत्र में ,, ,, श्रवण- ,, ,, ,,
नासिका में ,, ,, गन्ध ,, ,, ,,
रसना में ,, ,, रसास्वादन ,, ,, ,,
त्वचा (भृकुटि-
आज्ञाचक्र) में ,, स्पर्श ,, ,, ,,

(vii) ध्यान

१३५. तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्

—(यो० द० ३-२)

अर्थः—

उस धारणा में वृति का एक-सा बना रहना ध्यान कहलाता है।

जब चित्त में कोई वृत्ति (तरंग) न उठे, ध्येय (ब्रह्म) का ज्ञान देर तक एक-सा बना रहे और दूसरा कोई भी चिन्तन, संकल्प, विचार, कल्पना तक चित्त में न आए तो उस अवस्था का नाम ध्यान है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३६. ईश्वर के स्वरूप में एकाग्र, तल्लीन, स्थिर, मग्न होकर, जिसमें अपनी सुध भी न रहे, निराकार का ही चिन्तन रहे, उसे ध्यान कहते हैं। लोग प्रायः कहते हैं कि निराकार में ध्यान कैसे लग सकता है ? उत्तर है कि जैसे सुख, दुःख, भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी का कोई भी रंग, रूप और आकार नहीं, फिर भी सबको उसका भान होता है, ऐसे ही परमात्मा के ज्ञान, आनन्द एवं प्रेरणाओं से उस निराकार ज्योतिस्वरूप का ध्यान होता है।

१३७. ऋग्वेद भाष्य भूमिका के उपासना विषय में महर्षि दयानन्द जी ने लिखा है:—

"धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करने और आश्रय लेने के योग्य जो अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है; उसके प्रकाश और आनन्द में अत्यन्त विचार और प्रेमभक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना कि जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है। उस समय में ईश्वर को छोड़कर किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना; किन्तु उसी अन्तर्यामी के स्वरूप और ज्ञान में मग्न हो जाना, इसी का नाम ध्यान है"।

१३८. **ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः**

—(यो० द० २-११)

वह (पंचक्लेशों की) वृत्तियाँ ध्यान द्वारा त्याज्य (हेय) हैं।

अर्थात् ध्यान से पाँच क्लेशों की निवृत्ति होती है। ध्यान का नाम आत्म-निरीक्षण भी है; जिसके अभ्यास से सूक्ष्म संस्कार निर्मूल हो जाते हैं। तब साधक क्लेश-रहित हो जाता है।

पंचक्लेश क्या हैं ? कृपया यह आगे देख लें।

(viii) समाधि

१३९. **तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः**

—(यो०द०३-३)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थः—

उसी ध्यान में जब अर्थ (ध्येय) मात्र का प्रकाश रह जाए और ध्याता अपने रूप से शून्य-सा हो जाये तो उसे समाधि कहते हैं।

१४०. महर्षि दयानन्द जी के शब्दों में—

"जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्नि रूप हो जाता है। इसी प्रकार परमेश्वर के ज्ञान में प्रकाशमय हो के अपने शरीर को भी भूले हुए समान जान के, आत्मा को परमेश्वर के प्रकाश स्वरूप आनन्द और ज्ञान से परिपूर्ण करने को समाधि कहते हैं, ध्यान और समाधि में इतना ही भेद है कि ध्यान में तो ध्यान करने वाला जिस मन में, जिस चीज़ का ध्यान करता है, उन तीनों की भिन्न प्रतीति होती है; परन्तु समाधि में केवल परमेश्वर ही के आनन्द स्वरूप में या ज्ञान में आत्मा मग्न हो जाता है। मानो जैसे वहाँ तीनों भिन्न प्रतीत ही न होते हों। जैसे मनुष्य जल में डुबकी मार के थोड़ा समय भीतर ही रुका रहता है; वैसे ही जीवात्मा परमेश्वर के बीच में मग्न हो के फिर बाहर को आ जाता है।"

१४१. **त्रयमेकत्र संयमः**

—(यो० द० ३-४)

अर्थः—

तीनों (धारणा, ध्यान और समाधि) एकत्रित होकर संयम कहलाते हैं।

महर्षि के शब्दों में—

"जिस देश में धारणा की जाय, उसी में ध्यान और उसी में समाधि अर्थात् ध्यान करने के योग्य परमेश्वर में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मग्न हो जाने को संयम कहते हैं । जब एक ही काल में तीनों का मेल होता है । अर्थात् धारणा से संयुक्त ध्यान और ध्यान से संयुक्त समाधि होती है, तब उनमें बहुत सूक्ष्म काल का भेद रहता है । परन्तु जब समाधि होती है; तब आनन्द के बीच में तीनों का फल एक ही होता है । धारणा, ध्यान तथा समाधि इन तीनों की सम्मिलित, शास्त्रीय परिभाषा संयम है ।" —(ऋ० भा० भू० उपासना विषय)

१४२. धारणा, ध्यान, समाधि अर्थात् संयम की साधना एकान्त में मौन से होती है । मन का निर्विषय होना मौन कहलाता है । अखण्ड मौनी परमात्मा का ज्ञान, शक्ति, प्रेरणा, साक्षात् अत्यन्त मौन में होता है, परम मौन में ही आध्यात्मिक रहस्यों का उद्घाटन होता है । इससे इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी होकर वृति-निरोध होता है और समाधि बनती है ।

वेद व्यास जी से किसी ने पूछा—'परमात्मा के साक्षात् का मुख्य साधन क्या है ?' वे मौन रहे । दूसरी-तीसरी बार पूछने पर भी मौन रहे । चौथी बार पूछने पर बताया कि 'मैंने उत्तर दे दिया है कि मौन ही आत्म-परमात्म-दर्शन का अचूक उपाय है, इसीलिए मौन साधना का अन्तिम सोपान है ।

१४३. योग साधक और सभी को कर्मों के सम्बन्ध में गीता के ये दो श्लोक स्मरण रहें; जो कि यजु० ४०/२ की व्याख्या है—

(कुर्वन्नेवेह कर्माणि……)

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

—(गी० २-४७)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

—(गी० २-४८)

भगवान् श्री कृष्ण जी महाराज अर्जुन को कह रहे हैं—

कर्म पर अधिकार है तुझको, नहीं अंजाम पर ।
आरज़ू फल की न कर और तर्क भी हरगिज़ न कर ॥

(२-४७)

छोड़कर आसक्ति को, योग-स्थित समभाव से तू कर्म कर ।
सफलता की न परवाह, असफलता पर ग़म न कर ॥

(२-४८)

१४४. योग-साधना से आत्म-शक्तियों और परम ज्योतियों के द्वार खुलते हैं, प्रभु-प्रेरणाएँ मिलती हैं । हृदय में प्रेम छलकने लगता है । विवेक ख्याति बनती है । परं वैराग्य की उत्पत्ति होती है । जिससे समाहिति और समाधि बन आती है ।

रूपक द्वारा योग का स्वरूप

१४५. श्री स्वामी ओमानन्द जी महाराज ने 'योग-प्रदीप' में चित्त की उपमा घोड़े से देकर एक रूपक द्वारा अष्टाङ्ग योग को दर्शाया है । मैं चित्त की जगह मन को लेकर उसे कुछ सरल और स्पष्ट कर थोड़े परिवर्त्तन से लिख रहा हूं ।

जीवात्मा को मन अश्व मिला है । इस प्रयोजन से, कि वह अपने स्वामी को अपवर्ग के लक्ष्य तक पहुंचा दे । परन्तु अविद्या के कारण असावधानी से पुरुष घोड़े की पीठ पर से नीचे गिरकर, वाग पकड़े हुए, घोड़े की इच्छानुसार, अपनी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अल्पज्ञता से, उसके पीछे घूम रहा है। इस अश्व की अनेक चालें हैं, जो वृत्तियाँ कहलाती हैं। ये दो प्रकार की हैं—एक क्लिष्ट, जो पुरुष के लिए अहितकारी और दुःखदायी हैं तथा दूसरी अक्लिष्ट जो हितकारी एवं सुखदायी हैं। वे पाँच अवस्थाओं में रहती हैं।

क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ़, एकाग्र और निरुद्ध।

१४६. इनमें पहली तीन अवस्थाएँ पुरुष के प्रतिकूल और पिछली दो अनुकूल हैं।

यह अश्व पहली तीन हालतों में मनमानी अनन्त क्लिष्ट चालों से संसार रूपी घोर भयंकर वन में विषय-वासना रूप हरियाली की ओर भाग रहा है और आत्मा सवार जन्म, आयु और भोग लेकर अनिष्ट रूपी नदी, नालों, खाई-खन्दक, झाड़-झंखाड़, काँटे और पत्थरों में असमर्थता से उसके पीछे घिसटता हुआ सुख-दुःखरूपी चोटों से पीड़ित हो रहा है।

एक अपरिमित समय से उस अवस्था में रहते हुए पुरुष अपने वास्तविक स्वरूप को सर्वथा भूल गया है और घोड़े के साथ एकात्मक भाव करके उसके ही विषयों को अपना मानने, जानने लगता है। इस तरह अनेक प्रकार के कष्ट-क्लेशों में अपना जीवन, आयु एवं भोग समाप्त करता रहता है।

१४७. ईश्वर की कृपा और अनुग्रह से किसी जन्म में जब आध्यात्मिक विषयक वेदादि सत्शास्त्रों और निःस्वार्थ आप्त-काम योगी गुरुओं के उपदेशों से उसको घोड़े और अपने उस वास्तविक स्वरूप का तथा अपने जीवन के अन्तिम लक्ष्य का ज्ञान होता है, तब वह—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(i) **यम के साधन** से घोड़े का रस्सा, **ओ३म्** रूपी खूंटे से बाँधकर, उसे उसके इर्द-गिर्द घुमाने और भगाने लगता है, जैसे कोचवान् ताँगे में जोतने के लिए घोड़े को सधाता है। इस प्रकार घोड़े को थका कर उसकी क्लिष्ट चालों को अक्लिष्ट बनाता है।

(ii) **नियम को सहायता** से उसे विकारों के **जंगल से** निकालता है।

(iii) **आसन के उपयोग** से उस पर साज़ कस देता है।

(iv) **प्राणायाम की साधना** से उसकी रकाब पर पैर जमाने में समर्थ होता है।

(v) **प्रत्याहार द्वारा** उसे वशीकार करके उसकी पीठ पर सवार हो जाता है।

(vi) **धारणा की योग्यता** से उसका मुख पक्के-चौड़े, साफ-सीधे राज-पथ पर कर देता है।

(vii) **ध्यान के अभ्यास से** उसे सर्व वृत्ति-निरोध की अश्व-शाला में छोड़ देता है।

(viii) **समाधि के चरणों** से ब्रह्म द्वार तक पहुँचता है और **विवेक ख्याति** से द्वार को खोल ब्रह्म धाम में चिर-काल से बिछुड़े अपने प्यारे पिता-परमेश्वर को मिलकर उनकी **आनन्दमयी गोदी प्राप्त करता** है।

समाधि के भेद और ब्रह्म-साक्षात् कैसे होता है ? आगे 'वरेण्यं की सिद्धि' में पढ़ें।

सुषुप्ति-समाधि और मोक्ष-तुलना

१४८. समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता

—(सांख्य० ५-११६)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाधि, सुषुप्ति और मोक्ष में पुरुष को ब्रह्मरूपता हो जाती है। अर्थात् जैसे ब्रह्म आनन्द स्वरूप है; वैसे ही जीव भी आनन्दमय हो जाता है। इन तीनों का भेद इस प्रकार है।

सुषुप्ति—इसमें शरीर सहित, ज्ञान रहित चन्द घण्टों का आनन्द होता है। जितनी देर आत्मा चित्त, बुद्धि, मन, इन्द्रियों और उनके विषयों से पृथक् रहता है। अर्थात् चित्त-वृत्ति का निरोध होता है और उस समय शरीर सर्वथा जड़ समान होता है। कोई चेष्टा, कामना, इच्छा, दुःख, क्लेश आदि उस प्रगाढ़ निद्रा में नहीं होते। इसीलिए आनन्दमयी स्थिति होती है। यही सम्पर्ग्यात् समाधि है। जिसे सबीज समाधि भी कहते हैं, जो बिना किसी अभ्यास से प्राप्त होती है। दयालु परमात्मा ने मुक्ति के आनन्द का अनुमान कराने के लिए सुषुप्ति में आनन्द रखा है।

दूसरा सुषुप्ति अवस्था से यह ज्ञान होता है, कि बिना चित्त वृत्ति-निरोध से आनन्द की अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती।

परमात्मा अपने ज्ञान-संकल्प शक्ति से प्रकृति (उपादान कारण) द्वारा निमित्त कारण होकर सुन्दर सृष्टि को रच देते हैं। इसका अनुमान, बोध और विश्वास कराने के लिए हम में स्वप्न-अवस्था रखी। ताकि यह समझा जा सके कि जैसे स्वप्न में मन-महाराज अपने संकल्पों से बिना वस्तु के नानाविद् तत्काल सृष्टि रच देते हैं। ऐसे ही सर्व-शक्तिमान् परमात्मा ने यह सृष्टि रची है; जो वस्तु सहित होने से प्रत्यक्ष है।

सुषुप्ति की गाढ़ निद्रा परमात्मा ने हमें विश्राम, सुख, शान्ति, तरो-ताज़गी, सेहत कायम रखने के लिए हर रोज़

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बख्शी है। इसलिए वे लोग कृतघ्न हैं; जो प्रातः उठते ही बिस्तर पर लेटे या बैठकर परमात्मा का स्तुति-वचनों से धन्यवाद नहीं करते कि 'उनकी दया से आनन्दपूर्वक सोये।' इसकी स्मृति आत्मा को अपने स्वाभाविक ज्ञान से होती है।

१४९. मेरा अपना अभ्यास है कि जागते ही बिस्तर में बैठ कर ऊपर, नीचे (पृथ्वी) और सभी दिशाओं को दो कर जोड़ प्रणाम करता हूं जो कि परमात्मा का विराट्-स्वरूप है। जैसा कि मुण्डकोपनिषद् की दूसरा मुण्डक, पहला खण्ड और चौथी ऋचा है—

अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः
श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां
पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥

परम पुरुष के विराट् स्वरूप का महामुनि वर्णन करते हैं—
देव लोक उस पुरुष का शिर है।
चन्द्र-सूर्य नेत्र हैं।
दिशायें कान, वाणी विस्तृत वेद हैं।
वायु उसका प्राण है।
सम्पूर्ण विश्व उसका हृदय है।
दोनों पैर पृथिवी है।
यह पुरुष सब भूतों का अन्तरात्मा है।

छान्दोग्योपनिषद् के प्रपाठक ३ खण्ड १५ ऋचा १ में भी ऐसा ही आया है। गीता का ११वां अध्याय भी परमात्मा को दर्शाता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५०. **समाधि-अवस्था**— इसमें शरीरसहित, ज्ञान सहित आनन्द होता है। कुछ अभ्यासी कई हफ्तों की समाधि लगा सकते हैं।

सुषुप्ति और समाधि में शरीर का बन्धन होने से तीनों ताप बने रहते हैं।

१५१. **मोक्ष अवस्था**—मुक्ति में शरीर रहित, ज्ञान सहित बिना किसी अभ्यास के पूर्ण आनन्दमयी स्थिति ३१ नील, १० खरब, ४० अरब वर्ष रहती है। जिसका ब्यौरा इस प्रकार है—

कलियुग की अवधि चार लाख, बत्तीस हज़ार है।
द्वापर की अवधि इससे दुगुनी,
त्रेता की अवधि तिगुनी,
और सतयुग की आयु चौगुनी होती है।
इस प्रकार एक चतुर्युगी की आयु ४३ लाख, २० हज़ार साल होती है।
२ हज़ार चतुर्युगियों की एक अहोरात्रि होती है। (यह ब्रह्मा का एक दिन है)
३० अहोरात्रियों का एक महीना।
१२ महीनों का एक वर्ष।

ऐसे सौ वर्षों का एक परान्त काल होता है। इसे महाकल्प भी कहते हैं। इतना लम्बा काल मुक्ति की अवधि है।

१५२. ७ करोड़, २० लाख चतुर्युगियों की अवधि तक इस योग-अभ्यास की साधना से, त्रिविध (आधिदैविक, आधि भौतिक, आध्यात्मिक) दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है।

हम लोग इतने महान् लाभ के लिए भी कुछ प्रयत्न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं करते। यह कितनी अज्ञान, अविद्या की पराकाष्ठा है। ज़रा सोचें, विचारें, चेतें और अमल करें।

इस मार्ग पर चलने के लिए चेतावनी के ऐसे भजन गाने चाहिए, ताकि वैराग्य-वृत्ति बने और जीवन-लक्ष्य मोक्ष की ओर बढ़े।

चेतावनी

१५३. अपनी मुक्ति का साधन, तू कर बावले;
योग मार्ग है केवल, उसे साध ले।
जाने किस वक्त पंछी, यह उड़ जायेगा;
इन प्राणों का कोई, भरोसा नहीं ॥ १ ॥

रूप-रंग भी हरदम, यह फीका पड़े;
रात-दिन जिस पर, इतना है गर्व करे।
यह यौवन तो दिन सम, ढल जाएगा;
इस जवानी का कोई, भरोसा नहीं ॥ २ ॥

बड़ी मुश्किल से, मानव की देह है मिली;
निश्चित श्वासों को है, इसमें चाबी भरी।
कौन जाने कि किस दम, यह रुक जाएगी;
इस धड़कन का; कोई भरोसा नहीं ॥ ३ ॥

सुख-दुःख तो ढलती हुई छाँव हैं;
जैसे धन-दौलत, आकर चला जाये है।
अब मेरे पास है; कल तेरे पास है;
इस वैभव का; कोई भरोसा नहीं ॥ ४॥

वेदज्ञान इस जीवन में, सुलभ हुआ;
महर्षि का है उपकार; ऐसा हुआ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुदेव की भी कृपा, महती हुई;
ऐसे अवसर का, फिर कोई भरोसा नहीं ।। ५ ।।

चेत ले यह समय, आखिरी आ रहा;
तेरा पल-पल में, जीवन घटा जा रहा।
लाखों होते हैं उसकी, नजर हर घड़ी;
मृत्यु देवी का कोई, भरोसा नहीं ।। ६ ।।

बना ले ओ३म् प्यारे को, निज सारथी;
जीत अर्जुन की भाँति, होगी तभी।
एक सच्चा सहारा है, केवल वही;
किसी और का तो कोई भरोसा नहीं ।। ७ ।।

।। ओ३म् शान्तिः ! शान्ति !! शान्ति !!! ओ३म् ।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

८. पञ्चक्लेश व्याख्या

१. हमारे जन्म, बन्धन और दुःखों का मूल कारण पाँच क्लेश हैं, जिन्हें हटाये बिना जन्म-मरण का चक्र नहीं छूट सकता, अब इन्हें जान लें—

अविद्याऽस्मिता रागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्चक्लेशाः ।

—(यो० द० २-३)

अर्थः—

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच क्लेश हैं।

(i) अविद्या

वस्तु कुछ हो और समझना कुछ और; अर्थात् अन्य में अन्य का विपरीत (उल्टा) ज्ञान होना, अविद्या कहलाती है। जैसे भूमि के बिना कोई अन्न पैदा नहीं होता, वैसे ही अविद्या के न रहने से कोई क्लेश नहीं हो सकता।

२. **अविद्या के चार लक्षण हैं—**

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु
नित्य शुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ।

—(यो० द० २-५)

अर्थः—

अनित्य को नित्य, अपवित्र को पवित्र, दुःख को सुख और अनात्म (जड़) को आत्म समझना अविद्या कहलाती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये सारे शरीर पर भी घटते हैं, जो मरणशील है, अशुचि है, दुःखों का कारण है और जड़ है। पर हम अविद्या के कारण उल्टा समझते हैं।

३. शरीर से सम्बन्ध रखने वाले रिश्ते-नाते तथा सम्पदा-वस्तुयें भी अनित्य हैं। पर हम इन्हें नित्य मानकर इनसे मोह रखते हैं और इस मोह-बन्धन के कारण न तो ५० वर्ष के बाद वानप्रस्थ; न ही ७५ वर्ष के बाद संन्यास-आश्रम के नियमों का पालन करते हैं।

४. अविद्या सब क्लेशों, विकारों (काम, क्रोध आदि) दोषों, पापों का मूल है, इसके होते हुए आवागमन का चक्र नहीं मिटता।

अविद्या से अविवेक, मिथ्या ज्ञान होता है; जिससे राग-द्वेष होते हैं।

राग-द्वेष से प्रवृत्ति बनती है। प्रवृत्ति से कर्म होते हैं, जिनके अनुसार फिर फल भोगना पड़ना है।

फल भोगने के लिए शरीर धारण करना पड़ता है।
इस तरह से जन्म-मरण का चक्र चलता रहता है।

५. (ii) अस्मिता

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता

—(यो० द० २-६)

द्रष्टा और दर्शन-शक्ति का एक-सा मानना अस्मिता कहलाती है।

द्रष्टा जीवात्मा है और दर्शन-शक्ति शरीर इन्द्रियां एवं अन्तः करण है। जीवात्मा और अन्तःकरण को एक ही समझने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का नाम अस्मिता है। आत्मा और शरीर का सम्बन्ध ऐसे है; जैसे मकान और मकीन (मकान में रहने वाले) का । रथ और रथी का, देह और देही का। इस भेद को न समझना एवं अनात्म में आत्मभाव लाना अस्मिता है।

६. जैसे हम अपने को सुखी, दुःखी, मोटा, पतला, बलवान्, दुर्बल, भूखा, प्यासा, स्वस्थ, रोगी, अमीर-गरीब कहते हैं। देह त्यागते समय रोते हैं—'मैं मर रहा हूं' । यद्यपि हम आत्मा हैं; जो सदा अजर-अमर है । मरणधर्मा तो हमारा शरीर है। उपर्युक्त सारी अवस्थाएँ शरीर की हैं। इस प्रकार का हमारा ग़लत कहना अस्मिता है । इसका कारण अविवेक है, अविद्या है।

७. (iii) राग

सुखानुशयी रागः

—(यो०द० २-७)

अर्थः—

सुख भोगने के पश्चात् पुनः सुख भोगने की अभिलाषा का नाम राग है । हम व्यक्तियों, वस्तुओं और विषयों में सुख की प्रतीति करते हैं; जिससे वासना के संस्कार चित्त में पड़ते हैं तथा फिर पुनः उस सुख भोगने की तृष्णा, लालसा, इच्छा, लोभ उत्पन्न होते हैं, इसका नाम राग है।

राग की उत्पत्ति मोह से होती है; जो सब दोषों की जननी है। जैसे लोभ सब पापों का बाप है। इन दोनों के कारण किसी भी यम का पालन नहीं हो सकता।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राग से प्रवृत्ति, मिथ्या ज्ञान, तृष्णा, लोभ, क्रोध, द्वेष उत्पन्न होते हैं।

८. (iv) द्वेष

दुःखानुशयी द्वेषः

—(यो० द० २-८)

अर्थः—

दुःख भोगने के पश्चात् जो घृणा का भाव और उसकी वासना चित्त में रहती है; उसका नाम द्वेष है। इससे क्रोध भी उत्पन्न होता है। अर्थात् राग से सुख में विघ्न पड़ने पर दुःख के संस्कार उत्पन्न होते हैं। राग से उत्पन्न हुए दुःख के संस्कारों का नाम द्वेष-क्लेश है।

९. द्वेष से क्रोध, ईर्ष्या, द्रोह उत्पन्न होते हैं, इसके कारण देवों की सम्मतियाँ उठ जाती हैं। जैसा कि इस मन्त्र में कहा है:—

देवता-सोम

अव यत्स्वे सधस्थे देवानां दुर्मतीरीक्षे।

राजन्नप द्विषः सेध मीढ्वो अप स्त्रिधः सेध॥

—(ऋ० ८-७९-९)

राजन्=हे हमारे सच्चे सम्राट्!

यत्=जब-जब (आप हमारे)!

स्वे सधस्थे=सह स्थान हृदय में (जहाँ आपका वास है और दर्शन होते हैं)

देवानां दुर्मतीः=सज्जन विद्वानों के प्रति दुर्भावनायें

ईक्षे=देखें, (तो उन्हें)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवसेध=दूर कर दें।

मीढ्वः=ज्ञान सञ्चित करने वाले सोम प्रभु !

द्विषः=द्वेषों को (और)

स्त्रिधः=हिंसा वृत्तियों को

अपसेध=मिटा दें।

१०. साधक अपने परम पिता से बिछुड़नें का कारण जान चुका है कि ईर्ष्या, द्वेष, हिंसक भाव दुर्मतियाँ हैं। इस व्याकुलता में परमात्मा से पुकार करता है कि हे राजन् ! तथा ज्ञान सिञ्चित् करने वाले सोमदेव ! (इस मन्त्र में राजन् और मीढ्व परमात्मा के दो सम्बोधन हैं) हमारी इस दुरवस्था पर तरस खाओ और स्वयं अपने ज्ञान से इन दोषों को दूर कर दो।

महर्षि दयानन्द जी ने सन्ध्या में मनसा परिक्रमा के ६ मन्त्र दिए हैं; (अथ० ३-२७-१ से ६) जिनमें आया है—

योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥

जो अज्ञानवश हमसे द्वेष करता है अथवा जिससे हम द्वेष करते हैं; उसे आपके न्याय रूपी सामर्थ्य पर छोड़ देते हैं।

११. कविता में अर्थ—

हे मेरे हृदय-मन्दिर के सधस्थ राजन्।
सकल जग के विधाता सौम्य साजन ॥

भटकता फिर रहा हूँ, युग-युगों से बिछुड़ कर तुझसे।
हिंसा, द्वेष, दुर्मतियों के भाव आवेश होने से ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खड़ा साधक ये बनकर, अब तेरे दर का सवाली।
इन सब क्लेश वृत्तियों को, मिटा दें हे महादानी !!

१२. (V) अभिनिवेश

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढोऽभिनिवेशः ।।

—(यो०द०२-६)

अर्थः—

मृत्यु का भय और जीने का मोह रहना अभिनिवेश है।

एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने का माध्यम मृत्यु है। पूर्वजन्म में मरने का दुःख-भाव और वासना संस्कार-रूप में चित्त में होने से मृत्यु-भय लगा रहता है। जिस कारण भौतिक शरीर को बचाये रखने की कोशिश रहती है। इसका नाम अभिनिवेश क्लेश है। इससे आवागमन का प्रमाण मिलता है।

१३. क्लेशों का आलंकारिक रूप

क्लेशों से कर्म की वासनाएँ उत्पन्न होती हैं, जो जन्म रूपी वृक्ष का बीज है। अविद्या जड़ है, अस्मिता तना है। राग-द्वेष शाखाएँ और पत्ते हैं तथा उस पर अभिनिवेश के जाति, आयु एवं भोग रूपी तीन फल लगते हैं। सुख-दुःख रूपी जिनके स्वाद होते हैं।

यह कर्माश्रय रूपी वृक्ष तब तक फलता है; जब तक अविद्या आदि क्लेशों की जड़ विद्यमान रहती है और विवेक-ख्याति द्वारा इसकी जड़ कट नहीं जाती।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५. क्लेश-अवस्थाएँ

इन क्लेशों की चार अवस्थाएँ हैं—

अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ।

—(यो० द० २-४)

(प्रत्येक क्लेश चार प्रकार का है) प्रसुप्त, तनु (सूक्ष्म), विच्छिन्न तथा उदार (अवस्था में रहने वाले)। ये सब अविद्या के क्षेत्र हैं।

(i) **प्रसुप्त**—जब क्लेश अभी चित्त की भूमि में पड़े हैं और अपना कार्य नहीं कर रहे होते, तो वे प्रसुप्त (सोये हुए) कहलाते हैं। जैसे बाल्यावस्था में विषय-भोग की वासना बीज रूप में दबी रहती है; जवान होने पर जगती है। ऐसे ही योगी में भी क्लेश प्रसुप्त (दबे) रहते हैं।

(ii) **तनु**—जब योग-अभ्यास के द्वारा क्लेशों के संस्कार शिथिल, हल्के, छोटे, कमज़ोर, सूक्ष्म कर दिए जाते हैं। तब वे असमर्थ होने से तनु कहलाते हैं, जैसे ज्ञानियों में क्लेश-संस्कार तनु होते हैं।

(iii) **विच्छिन्न**—जब ये स्वजातीय या विजातीय अन्य किसी बलवान् क्लेश से दबे हों, तब विच्छिन्न कहलाते हैं, जैसे द्वेष अवस्था में राग छुपा रहता है और राग अवस्था में द्वेष। कर्मकाण्डियों में क्लेश विच्छिन्न होते हैं।

(iv) **उदार**—जब क्लेश ज़ोरों पर होते हैं, पूर्ण रूप से उनके फ़ल भोगे जा रहे हैं, तो वे उदार कहलाते हैं। भोगियों में उदार होते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५. क्लेशों को हटाने के उपाय

ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः

—(यो० द० २-१०)

पञ्चक्लेशों को हटाने का यह उपाय है कि इन्हें अपने कारण में सूक्ष्म करके हटाना चाहिए।

सूक्ष्म करने की विधि है—क्रियायोग (यो० द० २-१)। अर्थात् तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान । ये कर्म, ज्ञान और उपासना के द्योतक हैं।

ज्ञान, कर्म, उपासना की पवित्र धारा ऋग्, यजुः, साम के अक्षय स्रोत से निकली है और यह त्रिवेणी ब्रह्म के आनन्द-सागर में लीन होती है, जहां क्लेशों का साया तक भी नहीं पहुँच सकता।

१६. समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च

—(यो० द० २-२)

वह (क्रियायोग) समाधि को उत्पन्न करने और क्लेशों को कम करने के कारण होते हैं।

चित्त से इन क्लेश-वृत्तियों को, जो स्थूल हैं; उन्हें शुद्ध विचारों से और जो सूक्ष्म हैं, उन्हें चित्त की एकाग्रता-ध्यान द्वारा दूर करना चाहिए।

क्लेशों का मूल कारण दृष्ट (इस जन्म के) और अदृष्ट (बीते हुए पिछले जन्मों के) कर्मों की वासनाएँ हैं। ये वासनायें चित्त में कर्म की रेखा के रूप में जन्म-जन्मान्तरों से इकट्ठी हुई हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७. संस्कार और वासना के अनुरूप भोग-इच्छायें होती हैं। जो इन्द्रियों को भोगों की ओर प्रवृत्त रखती हैं। परिणाम-स्वरूप आत्मा को आत्म-विस्मृति हो जाती है। जिससे मन, बुद्धि, इन्द्रियां विषयासक्त हो जाती हैं और क्लेश उत्पन्न होते हैं।

१८. **पञ्चक्लेशों से जिसे, छूटना दरकार हो।**
वह योग-साधना की, नाव पर सवार हो॥

अहं त्याग भक्ति भाव से, ब्रह्म का आधार हो।
तो जन्म-मरण के भव-सागर से, बेड़ा पार हो॥

॥ ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!! ओ३म् ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। ओ३म् ।।

६. चित्तवृत्तिनिरोध-व्याख्या

१. समाधि अवस्था तब तक नहीं बनती, जब तक मन की वृत्तियां सवथा निर्मूल न हों । आओ अब इन्हें अच्छी तरह समझें; क्योंकि वरेण्यं की सिद्धि इस पर निर्भर है ।

चित्त

२. स्वामी ओमानन्द जी ने 'योग-प्रदीप' में चित्त का स्थान आनन्दमय कोश लिखा है ।

योग-दर्शन में मन के लिए भी चित्त शब्द का ही प्रयोग है; क्योंकि दोनों की वृत्तियां और अवस्था समान हैं ।

व्यास मुनि जी ने चित्त का लक्षण इस प्रकार किया है:—

एकमनेकार्थमवस्थितं चित्तम्

अर्थात् जो एक होने पर अनेक विषयों में स्थित है, वह चित्त है ।

अन्तःकरण का वह भाग, जिसमें ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों के अनुभव संस्कार रूप में अंकित रहते हैं; चित्त कहलाता है । यह सत्य, रज, तम से बना विस्तृत तत्त्व है । जिसमें इन गुणों के न्यूनाधिक के कारण कई प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह चित्त संस्कारों और स्मृतियों का आधार है, इसमें अनेक वृत्तियां उत्पन्न और नष्ट होती रहती हैं। जिनका प्रभाव शेष रह जाता है, उन्हें वासना या संस्कार कहते हैं। संस्कारों से वृत्तियाँ और वृत्तियों से संस्कार बनते रहते हैं। जैसे बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज।

मन

३. इसका स्थान मनोमय कोश है। यह इन्द्रियों का नियामक है। इसके द्वारा इन्द्रियों का व्यवहार होता है और यह एक काल में एक इन्द्रिय का ही ज्ञान कराता है। इसमें संकल्प, विकल्प, प्रीति-निषेध, भाव emotions उठते हैं और सुख-दुःख की अनुभूति होती है।

यह प्रकृति का महत्तत्व (अणु) है। यह द्रव्य है, शक्ति इसका गुण है। संकल्प-विकल्प इसके लक्षण हैं।

यह इतना चञ्चल है कि जप, ध्यान में बैठें तो इधर-उधर भाग चित्तवृत्ति को डोलायमान कर देता है।

सन्ध्या में कुविचारों के कांटे बिछा देता है।
स्वाध्याय में सतरंगी चालें चलता है।

चिन्तन में विकल्पों और कल्पनाओं की ऊंची उड़ान लेकर, मायूसी के धरातल पर पटक देता है।

दिन में इच्छाओं और कामनाओं के जाल बुनता है तो रात को सपनों के रंगीन चित्र दिखाता है।

यह इन्द्रियों को विषयों की ओर ले जाता है। आँख

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा सौन्दर्य देखने को ललचाता है। जिह्वा द्वारा चाट-पकोड़ी खाने को मचलता है। कानों को फिल्मी-गीतों, निन्दा-चुग़ली और व्यर्थ की बातों की तरफ प्रेरता है।

कभी नासिका को सुगन्धित वस्तुओं में रिझाता है।

तो कभी कोमल-स्पर्शों से दिल्लगी करता है।

इस तरह से इसके विषयों की ओर दौड़ान लेने से न चित्त का निरोध हो सके, न योग में प्रवेश हो सके।

४. वैदिक सहित्य में मन को सारथी, इन्द्रियों को घोड़े और विषयों को मार्ग बताया है, जब सारथी अविवेकी, अज्ञानी तथा अश्व हठी हों तो शरीर रथ का विनाश स्वाभाविक है।

इसका विवेक जहाँ मोक्ष के चरम लक्ष्य तक पहुंचा सकता है; वहाँ इसकी प्रमादी, चञ्चल प्रवृत्ति बन्धन की अन्धकारमयी गहन गुफा में भी धकेल देती है।

शास्त्रों ने इसलिए कहा है कि—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

मन ही पुरुष के मोक्ष और बन्धन का कारण है, यह सर्वथा सत्य है।

५. मन-महाराज को कवियों ने इस प्रकार दर्शाया है—

(i) **यह तो कहर ख़ुदा दा मारे सो दरवेश।**

अर्थात् --यह तो ईश्वर के कोप समान है, इसको कोई फ़कीर, साधु, महात्मा, योगी ही वश में कर सकता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ii) कबीर के शब्दों में—

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
मन से ही पाइए, पारब्रह्म से प्रीत॥

(iii) **परमात्मा दा इंज पाँवना, इधरों पुट त उधर लाँवना।**
अर्थात् मन को प्रकृति से हटा दो और ईश्वर की ओर लगा दो।

(iv) **मन लोभी मन लालची, मन चंचल मन चोर।**
मन की मति चलिए नहीं, पलक-पलक मन और॥

(v) **मन की बदौलत रंज भी है**
और मन की बदौलत राहत भी।
यह दुनिया जिसको कहते हैं,
दोज़ख भी है और जन्नत भी॥

(vi) **मन चंगा ते घर में गंगा।**

(vii) **बड़ी नायाब शेह है ये मन बेताब सीने में।**
हज़ारों कीमती लालो गोहर हैं इस दफ़ीने में॥

(viii) **ख़ाना-ए दिल में मिले वो जलवागर[1]।**
तू दर-बदर भटका फिरे जिसके लिए॥

६. मन की गति प्रकाश और विद्युत् से भी तीव्र है। इसके समान संसार में और कोई वेगवान् नहीं। परमात्मा की सर्वव्यापकता की उपमा दी जाती है कि यह मन से भी शीघ्र गतिशील है। क्योंकि जहाँ मन पहुंचता है, परमात्मा सर्व-व्यापक होने से पहले ही मौजूद है। इससे दूसरे स्थान पर रोशनी की गति है जो १ लाख, ८६ हज़ार मील प्रति सेकेण्ड है।

---

१. परमात्मा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्त और मन में समानता

७. दोनों में विकार एक जैसे हैं –

ईर्ष्या, राग, द्वेष, घृणा, दुश्चिन्तन और दोषारोपण (किसी के गुणों में दोष निकालना)। इन ६ विकारों से अन्तःकरण मलीन हो जाता है।

दोनों की वृत्तियों का स्वभाव भी एक है। एक वक्त में एक ओर ही लग सकती हैं।

जैसे प्राणायाम की तीनों क्रियाएँ, एक साथ नहीं हो सकती। एक बार में पूरक होगा या रेचक अथवा कुम्भक।

जैसे आन्तरिक कुम्भक का महत्त्व सबसे ज्यादा होता है। क्योंकि उसके अभ्यास से मन की एकाग्रता होती है; जिससे परमात्म-दर्शन में हमारी योग्यता बढ़ती है। ऐसे ही जब मन-चित्त की वृत्ति निरुद्ध हो जाती है तो समाधि बनती है और ब्रह्म-साक्षात् होता है।

जब तक बाह्य वृत्ति बन्द नहीं होती, अन्तर्मुखी वृत्ति कदापि नहीं बनती और जब तक अन्तर्मुखी वृत्ति भी बन्द नहीं होती, वृत्तिनिरोध नहीं हो सकता। तथा जब तक वृत्ति निरोध न हो समाधि नहीं बन सकती। जब तक समाधि सिद्ध नहीं होती, तब तक आत्मस्थिति नहीं बनती तो परमात्मा का साक्षात्कार कैसे हो सकता है?

अब इससे जान लें कि वृत्ति-निरोध का कितना महत्त्व है।

इन दोनों की वृत्तियों का अनेक विषयों की ओर जाने का नाम विघ्न है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८. दोनों की अवस्थाएं भी समान हैं– मूढ़; क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र और निरोध। इनकी व्याख्या इस प्रकार है:—

(i) **मूढ़**:—यह तम प्रधान अवस्था है, जिससे निद्रा, मोह, निरुत्साह, उदासीनता और आलस्य से कर्त्तव्य की विस्मृति होती है।

(ii) **क्षिप्त**:—तम-रज मिश्रित, अति चंचल, जिसमें चित्त-(मन) की वृत्तियाँ अनेक सांसारिक वृत्तियों में गमन करती हैं। इसमें चिन्ता, शोक, मोह व्यापता है।

(iii) **विक्षिप्त**:—रज प्रधान, इसमें चित् कभी चंचल, कभी व्याकुल, कभी क्षणिक स्थिर हो जाता है।

(iv) **एकाग्र**:—इस अवस्था में रज लेश मात्र, सत् अधिक होता है। चित्त की वृत्तियां, चेष्टाएँ, भिन्न-भिन्न विषयों से सर्वथा हटकर केवल एक ही विषय, वस्तु पर लम्बे काल तक टिक जाती हैं।

(v) **निरोध**:—सत्त्वगुण प्रधान। जब चित्त सब व्यक्ति, विषय और वस्तुओं से हट जाये और उसमें किसी प्रकार की भी वृत्ति जागृत न हो; बिल्कुल शून्य चेष्टा, परवाह रहित, मौन, शान्त, निर्विचार हो जाय तो यह निरुद्ध अवस्था कहलाती है। इसी का नाम योग है।

९. अब वृत्तियों को समझें:—

वृत्ति

चित्त और इन्द्रिय विषय के सम्बन्ध होने से जो चित्त में परिणाम व विकार उत्पन्न होता है, उसका नाम वृत्ति है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे दर्पण में चित्र आते-जाते हैं या जैसे समुद्र में वायु के वेग से लहरें उठती हैं। वैसे ही चित्त में प्रकृति के प्रभाव से सत्, रज, तम आच्छादित इच्छाओं से संकल्प-विकल्प की विचार-तरंगें उठती रहती हैं। अथवा बार-बार निरन्तर, सतत प्रचेतना की किरणें निकलती रहती हैं। इसी का नाम वृत्ति है।

वृत्ति-भेद

(i) जब वृत्ति का प्रयोग बाहर के जगत् कार्यों में होता है तो इसका नाम बहिर्मुखी वृत्ति होता है।

(ii) जब वृत्ति अन्दर की ओर आत्म-साधना में लगती है तो अन्तर्मुखी कहलाती है।

(iii) और जब चित्त की वृत्ति सर्वथा रुक जाती है तो इस का नाम वृत्तिनिरोध होता है।

बाह्य वृत्तियों को जागृत अवस्था समझें, आन्तरिक वृत्तियों को सुषुप्ति अवस्था जानें और वृत्तिनिरोध को तुरीयावस्था मानें।

वृत्तियों के कारण ही हम में यह प्रवृत्ति है कि किसी काम को अच्छा करें, बुरा करें या न करें।

जब तक चित्त की वृत्ति रुकती नहीं, योग नहीं बनता। इसलिए कहा है —

१०. **योगश्चित्तवृत्ति निरोधः**

—(यो० द० १-२)

योग चित्त की वृत्तियों को रोकने को कहते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्त की वृत्तियों को रोकने का फल है—

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ।

—(यो० द० १-३)

तब द्रष्टा (देखने वाला=आत्मा) अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है।

वृत्तियों के रूप

११. **वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः**

(यो० द० १-५)

अर्थः—

वृत्तियाँ पाँच प्रकार की हैं और स्वभाव भेद से दो प्रकार की—क्लिष्ट तथा अक्लिष्ट।

क्लिष्ट वृत्तिः—बुरी, अधम, तम प्रधान वृत्ति जो दुःख और क्लेशजन्य होती हैं; क्योंकि ये अविद्या, अज्ञान के कारण होने से अधर्म और पाप कर्मों में लगाती हैं और ईश्वर से विमुख कराती हैं।

अक्लिष्ट वृत्तिः—अच्छी, उत्तम, सत्त्व प्रधान वृत्ति जो सुख-शान्ति जन्य होती हैं; क्योंकि ये विवेक-ज्ञान होने से धर्म-कर्म में लगाती हैं और ईश्वर की ओर ले जाती हैं।

अक्लिष्ट वृत्ति एवं शिव-संकल्प पर्यायवाची शब्द हैं।

जैसे एकाग्रता से निरोध-अवस्था बनती है, ध्यान की सिद्धि से समाधि होती है। ऐसे ही शिव-संकल्पों के बाद निर्विचारों की स्थिति आती है। यह साधना का क्रम है।

१२. **प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः**

—(यो० द० १-६)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ:—

वे पाँच वृत्तियाँ ये हैं—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति।

(१) प्रमाण

प्रमाणवृत्ति के तीन भेद हैं—

(i) प्रत्यक्ष (ii) अनुमान (iii) आगम।

—(यो० द० १-७)

(i) **प्रत्यक्ष प्रमाण**—आत्मा, मन, इन्द्रियों और अर्थ के संयोग से जो निश्चयात्मक यथार्थ-स्पष्ट ज्ञान होता है, उसे प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं।

(ii) **अनुमान प्रमाण**—साध्य-साधन के देखे हुए सम्बन्ध अथवा प्रत्यक्ष जाने हुए के आधार पर जो चित्त में परिणाम होता है, उसको अनुमान-प्रमाण कहते हैं। अनुमान का मूल प्रत्यक्ष होता है।

अनुमान के तीन भेद होते हैं—

जहाँ कारण से कार्य का ज्ञान होता है, उसे **पूर्ववत अनुमान** कहते हैं। जैसे घने मेघों के छा जाने से वर्षा आने का अनुमान होता है।

कार्य से कारण के अनुमान को **शेषवत्** कहते हैं। जैसे नदी में मटमैला पानी, झाड़ियाँ आदि आ जायें तो अनुमान होता है कि ऊपर कहीं वर्षा हुई है।

दूसरे शब्दों में प्रत्यक्ष घटना से परोक्ष का अनुमान ही शेषवत् है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी स्थान पर दो वस्तुओं के सम्बन्ध को देख कर दूसरी जगह पर उनमें से एक को देख कर दूसरे का अनुमान करना, **सामान्यतोदृष्ट** प्रमाण है। जैसे—घर में आग से धुआँ निकलते देखा है, अब दूर कहीं धुआँ निकलता दिखायी दे तो यह जान लेना कि वहाँ आग है।

(iii) **आगम-प्रमाण**—वेद, सत् शास्त्र तथा आप्त (ऋषि, मुनि, तत्त्वज्ञानी आचार्यों) के वचन उपदेशों को सुन कर जो चित्त में परिणाम होता है; उसे आगम अथवा शब्द प्रमाण वृत्ति कहते हैं। जैसे हम सावधानी से पटरी पर जा रहे हैं। पीछे से कोई टक्कर मार कर हमें जख्मी कर देता है, जिसमें हमारी कोई भूल, इच्छा, ज्ञान और प्रयत्न नहीं था। तो आगम प्रमाण (वेद ज्ञान) के आधार पर जान लेते हैं कि यह पूर्व जन्म के किसी कर्म का फल था। वरना यह घटना कदापि नहीं घट सकती थी।

१३. जैसे बनी हुई वस्तु को देख कर बनाने वाले का अनुमान हो जाता है, क्योंकि प्रत्येक बनी हुई वस्तु का निश्चय कोई चेतन निमित्त कारण सामान्य रूप से देखा जाता है। जैसे घड़े को देखकर कुम्हार का अनुमान होता है। ऐसे ही इस अद्भुत सृष्टि-रचना को देखकर इसके रचयिता और नियामक का अनुमान हो जाता है। वेद के आगम प्रमाण से उस की पुष्टि हो जाती है कि परमात्मा इसका रचयिता और संचालक हैं।

१४. न्याय दर्शन के रचयिता महर्षि गौतम जी ने प्रमाण में एक **उपमान** भी चौथा प्रमाण दिया है। जो इस प्रकार है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाह्य स्पष्ट गुणों के एक-दूसरे से तुलना और मेल करने पर जो वस्तु का ज्ञान होता है; उसको सदृश्य दिखाकर उदाहरण देकर बताना **उपमान** कहलाता है। जैसे किसी को बताना कि नील गाय गौ के समान होती है। अथवा यह समझाना कि समाधि और मुक्ति का आनन्द सुषुप्ति अवस्था के समान होता है।

सैकड़ों औषधियाँ उपमान से ही जानी जाती हैं।

२. विपर्यय

१५, वस्तु के वास्तविक स्वरूप से भिन्न स्वरूप दर्शाने वाली, अन्य में अन्य का ज्ञानदायिनी, भ्रान्ति, मिथ्या, विपरीत विचार लाने वाली। इस वृत्ति के पाँच भेद हैं--अविद्या, असमता आदि पञ्चक्लेश; जिनकी व्याख्या आगे की जाएगी। जैसे रस्सी में सर्प का और सीप में चांदी का भान होता है। इसे विपर्यय वृत्ति कहते हैं।

३. विकल्प

१६. शब्द ज्ञान के पीछे चलने वाली वस्तु से शून्य, सत्ता रहित वृत्ति विकल्प कहलाती है। जैसे सुख, शान्ति, आनन्द, मोक्ष नाम की कोई चीज़ नहीं है। ये हमारी चित्त की अनुभूति का परिणाम हैं। पर इसे पदार्थ समान पाने के लिए बाहर भटकते फिरते हैं। अथवा जैसे कोई कहे 'आकाश का फूल' 'खरगोश का सींग' 'बाँझ का लड़का' ये वस्तु शून्य कल्पित ज्ञान है, यही विकल्प-वृत्ति है।

४. निद्रा

१७. अभाव में भाव की-सी प्रतीति कराने वाली वृत्ति निद्रा है। यहाँ निद्रा का अर्थ स्वप्नावस्था है; क्योंकि स्वप्न में ही

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभाव में भाव की प्रतीति होती है और सुषुप्ति में तो सब इन्द्रियाँ और अन्तःकरण सुषुप्त और शून्य होते हैं।

५. स्मृति

१८. देखे, सुने भोगे और अनुभव में आए स्मरण का न खोया जाना स्मृति वृत्ति है।

चित्तवृत्ति-निरोध-उपाय

१९. इन वृत्तियों को कैसे रोका जाए। इसका उत्तर योग-दर्शन और गीता में एक-सा आया है।

पहला उपायः—

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः

—(यो० द० १-१२)

अभ्यास (बार-बार रोकने) और **वैराग्य** से उन (चित्त की वृत्तियों) का निरोध (रोकना) हो जाता है।

अभ्यास

२०. **तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः** —(यो० द० १-१३)

उन (अभ्यास और वैराग्य दोनों) से वृत्तियों को ठहराने का यत्न करना अभ्यास कहलाता है।

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः

—(यो० द० १-१४)

वह (अभ्यास) दीर्घ काल तक लगातार, सतत, निरन्तर, भली प्रकार, सत्कार पूर्वक सेवन किया हुआ दृढ़ अवस्था वाला हो जाता है।

सत्कार पूर्वक का अर्थ है तप, ब्रह्मचर्यपालन, श्रद्धा, भक्ति, प्रेम-प्रीति, अनुराग से परमात्म-साक्षात् के लिए साधना का अभ्यास करना।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैराग्य

२१. दृष्टाऽऽनुश्रविक विषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्
—(यो०द०-१-१५)

देखे और सुने विषयों में चित्त का मोह, आसक्ति, राग, द्वेष रहित होना, कहीं भी उसका आकर्षण न रहे और उस पर किसी का भी असर न पड़े। ऐसी वशीकार अवस्था का नाम वैराग्य है, जिसे अंग्रेजी में—Complete non attachment कहते हैं। सरल शब्दों में असत्य आचरण का त्याग और सत्य आचरण का अनुष्ठान ही वैराग्य है।

तत् परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् —(यो० द० १-१६)

आत्म-विवेक से प्रकृति के तीन गुण सत्, रज और तम में तृष्णा और लालसारहित होना, प्रकृति से अपने को भिन्न समझना परं वैराग्य है।

२२. वैराग्य की पूर्णता तब होती है, जब मनुष्य के हृदय-मन्दिर में ईश्वर-प्रेम अंकुरित, झंकृत, प्रतिष्ठित, आलोडित, वन्दनित, आलोकित होता है। ज्यों-ज्यों यह प्रेम बढ़ता जाता है; त्यों-त्यों मनुष्य तृष्णा-रहित होता जाता है और जैसे-जैसे कामना-रहित होता है; वैसे-वैसे वैराग्य का उदय होता जाता है। इस तरह से सांसारिक व्यक्तियों, वस्तुओं और विषयों का त्याग हो जाता है एवं निरोध-अवस्था बन जाती है।

२३. व्यास मुनि जी के शब्दों में वह समझने लगता है कि—

"प्राप्तम् प्रापणीयम्", "क्षीणाः क्षेतव्याः क्लेशाः", "छिन्नः श्लिष्टपर्वा भवसंक्रमः"।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् जिसकी मुझे इच्छा थी, उसे पा लिया। जो क्लेश दूर करना चाहता था, वे हट गए। जो गाँठ उलझी हुई थी, वह खुल गई।

यह वैराग्य की उत्कृष्ट अवस्था का फल है।

२४. अभ्यास और वैराग्य दोनों एक दूसरे के सहयोगी तथा पूरक हैं एवं आवश्यक हैं। जैसे पक्षी दोनों परों से उड़ सकता है, एक से नहीं। ऐसे ही मन-चित्त की निरोध-अवस्था इन दोनों की साधना से बनती है।

२५. गीता में इन दोनों का वर्णन इस प्रकार है --

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

—(गी० ६-३४)

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

—(गी० ६-३५)

श्री अर्जुन जी कहते हैं—

हे कृष्ण यह मन बड़ा चञ्चल, हठीला, दृढ़ और बलवान् है।
और इसको वश में करना, बहुत ही दुश्वार है ॥
जैसे वायु रोककर कोई ठहरा सकता नहीं।
इस तरह इस पर भी काबू, कोई पा सकता नहीं ॥ (६-३४)

कहा सुन के भगवान् ने—

महाबाहो ! बेशक यह मन है बड़ा चञ्चल।
और इसको रोकना भी है बहुत मुश्किल।
पर अभ्यास और वैराग्य में है यह कमाल।
वश में आ जाता है, यह कुन्ती के लाल ॥ (६-३५)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२६. अभ्यास वैराग्य को एक उपमा से समझें—

चित्त या मन की दो धाराएँ हैं। एक दुःख-सागर की ओर दूसरी कल्याण-सागर की ओर बहती है। जिसने पूर्व जन्म में संसारी विषयों के भोगार्थ कार्य किए हैं और कर रहा है। उसकी वृत्तियों की धारा उन संस्कारों के और वर्तमान के वैसे कर्मों के कारण पाप भूमि पर विषय-विकारों के मार्ग से बहती हुई दुःख-सागर में जा डूबती है।

जिसने पहले कैवल्यार्थ काम किए हैं और अब भी यम-नियमों के पालन का अभ्यास है तो उसकी धारा वैराग्य-भूमि पर विवेक मार्ग से बहती हुई कल्याण-सागर में जा मिलती है।

दूसरी धारा को वेद-मन्त्र, शास्त्र, गुरु, आचार्य तथा ईश्वर-चिन्तन खोलते हैं।

पहली पापवाहिनी धारा को बन्द करने के लिए विषयों के स्रोत चित्त-मन पर वैराग्य का बन्ध लगा दें और योग-अभ्यास के फावड़े से दूसरी धारा का मार्ग गहरा खोदकर वृत्तियों के समस्त प्रवाह को आध्यात्मिक मार्ग पर कर दें तो उन सात्त्विक वृत्तियों का प्रवाह निःसन्देह बहता हुआ ब्रह्मानन्द के सरोवर में लीन करा देगा।

कितना स्पष्ट है। इसी क्रिया का नाम अभ्यास और वैराग्य है।

२७. वैराग्य कैसे होता है?

(i) विषयों में दोष जानकर

सांसारिक विषयों से वैराग्य उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि हम उनके दोषों व हानि को बार-बार अपनी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि में लायें और उनसे अलग रहें। किसी वस्तु या व्यक्ति से भी जब कटु अनुभव होता है तो उसकी वेदना से वैराग्य होता है। जैसे जलते कोयले में हाथ जलने के कष्ट से बच्चे को अग्नि से द्वेष और वैराग्य हो जाएगा।

रूप एवं शब्द, आंख और कान के विषय हैं। जिनके विकार से अन्तःकरण अशुद्ध होता है, क्योंकि केवल इन्हीं दो इन्द्रियों के द्वारा बुद्धि और मन को जगत् का ज्ञान होता है तथा मन विचलित होकर कामी व व्यभिचारी होता है। इस रोग से व्यक्ति रोगी और अपमानित होता है, यह जानकर विषयों से वैराग्य हो जाता है।

विचार में रहना चाहिए कि सबसे बड़ी हानि यह है कि यदि हम आँख, कान, वाणी इत्यादि इन्द्रियों का दुरुपयोग करेंगे तो परमात्मा के अटल नियमों से आगामी जन्म में यदि और पुण्य कर्म पाप से अधिक हुए तो मनुष्य जन्म मिलने पर वह इन्द्रिय अधर्म की मात्रानुसार उतनी-उतनी गुण-रहित हो जाएगी। अर्थात् देखने, सुनने और बोलने की शक्ति कम या हीन हो जाएगी, तो वह जीना क्या जीना होगा। ऐसा जानकर विषय-विकारों से वैराग्य हो सकता है।

(ii) आप्त पुरुषों के अनुभवों से

ययाति

२८. (क) महाभारत में आया है कि ययाति शुक्राचार्य के शाप से बूढ़ा हो गया, बहुत गिड़गिड़ाने पर आचार्य की कृपा से फिर युवा हुआ, तब चिरकाल तक विषय-भोग कर अन्त में कहा–

न जातुकामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् विषयों के अति भोग से शान्ति नहीं होती, किन्तु जैसे घृत डालने से अग्नि की ज्वाला और ऊँची उठती है। इसी प्रकार भोगों से तृष्णा बढ़ती है।

२९. (ख) राजा भर्तृहरि जी ने लिखा है—

भोगा: न भुक्ता: वयमेव भुक्ता:
तपो न तप्तं वयमेव तप्ता:।
कालो न यातो वयमेव याता:
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा:॥

अथात्—

भोगों को हमने नहीं भोगा, किन्तु हम ही भोगे गए।
तपस्या तो नहीं बनी, बल्कि हम स्वयं तप गए॥

समय नहीं कटा, किन्तु हम ही कट गए।
तृष्णा जीर्ण नहीं हुई, हम ही बूढ़े हो गये॥

(iii) दृश्यों को देखकर जैसे—

३०. राजकुमार सिद्धार्थ को वैराग्य

(जीवन काल-५५७ ई० पू० से ४४७ ई० पूर्व)

सिद्धार्थ कपिलवस्तु के महाराजा शुद्धोधन के सुपुत्र थे। उनकी माता जी का नाम माया देवी था। जन्म लुम्बनी बन में ५५७ ई० पूर्व अर्थात् आज से २५४४ साल पहले हुआ था। जन्म के कुछ ही दिनों बाद इनकी माता का देहान्त हो गया, तो इनका पालन-पोषण इनकी मौसी ने किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमार बचपन से ही गम्भीर स्वभाव, एकान्तप्रिय और विचारक थे।

३१. एक बार राजकुमार सिद्धार्थ रथ पर बैठ घूमने निकलते हैं। मार्ग में देखा कि एक निर्बल वृद्ध झुकी हुई कमर से लाठी के सहारे बड़ी कठिनाई से धीरे-धीरे चल रहा है। उसे देखकर सारथी से पूछने पर उत्तर मिला कि "महाराज यह रोगी प्रतीत होता है, सामने हस्पताल है; वहाँ जा रहा है। ऐसी बीमारी और बुढ़ापे की अवस्था हर एक को आती है।"

आगे चलकर देखा कि एक मृतक का शव चार व्यक्ति उठाए ले जा रहे हैं, पीछे कई नारियाँ रो-पीट रही हैं। राजकुमार ने उस दुःखद दृश्य को देखा तो उनके सुन्दर मुख पर उदासी छा गयी। सारथी ने बताया कि "महाराज! यह व्यक्ति मर गया है। जो इस जीवन की अन्तिम अवस्था है। इसे श्मशान भूमि में जलाने ले जा रहे हैं। परिवार वाले उसके वियोग में दुःखी हैं, इसलिए उनके आँखों में आँसू हैं।"

राजकुमार के मन में आया कि 'यह संसार बड़ा भयंकर, अत्यन्त कष्ट, क्लेश, दुःख, पीड़ा, रोग, शोक, बुढ़ापा, बीमारी, मृत्यु आदि सन्तापों से भरा है। व्यर्थ है, निःसार है, निष्प्रयोजन है'। चित्त की वृत्ति ने सात्त्विक मोड़ लिया। विवेक जागा, विराग की अवस्था बनी और तत्काल सारथी को आज्ञा दी कि 'रथ को वापस ले चलो।'

३२. इसी सोच-विचार में रात के पिछले पहर इकलौते नन्हें बालक राहुल और सुन्दर पत्नी यशोधरा को छोड़कर मृत्यु पर विजय पाने के लिए जंगल में चले गये। योग-साधना के कठोर तप और अभ्यास से वे महात्मा गौतम बुद्ध के नाम से सदा के लिए अमर हुए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका निर्वाण ४४७ ई० पूर्व हुआ; जबकि उनकी आयु ११० वर्ष की थी।

(iv) पूर्वजन्म के संस्कारों से जैसे—

३३. आदिशंकराचार्य को वैराग्य

(जीवनकाल-सन् ७८८ से ८२० तक)

शंकराचार्य जी अखण्ड ब्रह्मचारी थे, सो इनका वर्णन ब्रह्मचर्य के अन्तर्गत भी लिखा है। इनका जन्म सन् ७८८ में ब्राह्मण-कुल में हुआ। इनकी अलौकिक प्रतिभा और वैराग्य की ऐश्वर्य देन पूर्वजन्म के प्रबल उच्च संस्कारों में आयी थी। १३ वर्ष की आयु में गुरुकुल से सब वेद-शास्त्र पढ़कर जब वे कालडी अपने घर वापस आए, तो उन्हें परं वैराग्य हो चुका था और सन्यास लेने का बहाना किया।

इनके घर के सामने पूर्णा नदी बहती थी। एक दिन प्रातः स्नान करने गए तो अपनी माता आर्याम्बा को चिल्ला कर कहा "मुझे मगर ने पकड़ लिया है और कहता है, तब छोड़ूंगा जब तुम संयासी हो जाओगे।" माँ घबराकर दौड़ी हुई आयी, तो उसको कहा "मां या तो मैं संन्यासी बनूं! वरना बच नहीं सकता।" विधवा मां का यह इकलौता बेटा था, भोली-भाली माँ ने रोते हुए कहा कि "अच्छा, परन्तु मेरा ख्याल रखना और मेरी मृत्यु पर तुम्हें ही मेरा संस्कार करना होगा।" इन्होंने स्वीकार कर लिया।

(मैं समझता हूं कि शंकर जी के मन में दरअसल विचार यह था कि 'मुझे संसार रूपी मगर ने जकड़ा है, जिससे छुटकारा संन्यास लेने पर ही मिल सकता है'।)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३४. शंकर जी ने कुछ दिनों बाद उदास चेहरा बनाकर वेदना भरी वाणी में नम्रतापूर्वक अपनी माता जी से कहा कि "अब मुझे संन्यास लेने के लिए किसी महायोगी-संन्यासी के पास जाना होगा, इसलिए अब मुझे घर त्यागने की आज्ञा दीजिए।"

बेटे की करुणा भरी पुकार सुन कर माता का कोमल हृदय और विचलित हो गया। वह उसे अपने आंखों के सामने से ओझल नहीं करना चाहती थी; किन्तु वचनबद्ध होने से धर्मसंकट उत्पन्न हो गया। इसलिए बहुत दुःखी हृदय से यह भी स्वीकार करना पड़ा।

३५. महाराज गोविन्द भवत्पाद जी से संन्यास लेकर बहुत शास्त्रार्थ, प्रवचन और ग्रन्थों के भाष्य करते रहे। एक दिन उनको आह्वान हुआ कि माता जी बीमार हैं और उन्हें याद कर रही हैं। अपनी प्रतिज्ञानुसार तुरन्त घर चले गये। कुछ दिन सेवा करने के बाद उनकी माता का देहान्त हो गया; जिसका उन्होंने बावजूद संन्यासी होने के उनकी इच्छा और अपने वचनानुसार उनका दाह-संस्कार किया।

सन् ८२० में ३२ वर्ष की अवस्था में वे जगद्गुरु की पदवी प्राप्त कर सदा के लिए अमर हो गए।

(v) किसी अपने शब्द से

३६. गुरु नानक देव जी महाराज को वैराग्य

(जीवनकाल-सन् १४६९ ई० से १५३८ तक)

इनका जन्म सन् १४६९ ई० में तलवंडी गाँव में हुआ, जिसका बाद में ननकाना साहब नाम हुआ, जो अब पाकि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तान में है। इनके पिताजी का नाम श्री कालूराम जी और माता का नाम तृप्ता देवी था। ये बचपन से ही दयालु, उदार, सौम्य स्वभाव के अत्यन्त विनम्र थे। इनके पिता ने इन्हें इनके बहनोई श्री जयराम जो कि सुल्तानपुर के नवाब दौलत खाँ के कारोबार के मैनेजर थे, के पास भेजा। जिन्होंने नवाब साहब के पास नानक जी को सरकारी अनाज के भण्डार पर रखवा दिया।

३७. एक दिन उन्हें दो मन अनाज तोलकर किसी को देना था। पाँच सेर की धारण तोला करते थे। १६ धारणें तोलनी थीं, प्रत्येक धारण को तोलते गिनती बोला करते थे। जिस वक्त तेरहवीं धारण तोल रहे थे तो बहुत सारी धारणें तेरां तेरां करके तोलते रहे जबकि ३ बार तोलना था तेरां पंजाबी में १३ गिनती के लिए कहते हैं। फिर तेरां-तेरां कहते उनकी वृत्ति परमात्मा की ओर लग गयी कि मैं तेरा हूँ ! तेरा हूँ !! तेरा हूँ !!!

यह कहते-कहते उन्हें वैराग्य हो गया और नौकरी छोड़कर जंगल में साधुओं की संगति में रहकर बहुत ज्ञान प्राप्त किया। फिर वे अपने दो शिष्यों, बाला एवं मरदाना के साथ समस्त भारत, ईरान, लंका, मक्का और अरब देशों में भी धर्म उपदेशों की अमृत वर्षा करते रहे। वे आध्यात्मिक कवि थे; उनकी सन्त-वाणी गुरुग्रन्थसाहिब में सन् १६०४ ई. में प्रकाशित हुई। सिख उन्हें अपना प्रथम गुरु मानते हैं और हिन्दू भी उनका उतना ही सम्मान करते हैं।

वे सच्चे देश और ईश्वर भक्त थे, सबमें समभाव था। सन् १५३८ में ६६ वर्ष की आयु में वे अपना चोला त्याग, यश और कीर्त्ति से अमर हो गए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(vi) प्रेम भरी आलोचनासे –

पं. अमीचन्द जी को वैराग्य

३८. महर्षि दयानन्द जी जेहलम (पाकिस्तान) में उपदेश दे रहे थे। उससे पहले किसी ने स्वामी जी से कहा कि "श्री अमीचन्द तहसीलदार साहब बैठे हैं, ये बहुत मधुर गायक और कवि हैं, किन्तु सदाचारी नहीं। रिश्वतखोर, शराबी और व्यभिचारी हैं।"

प्रवचन के बाद महाराज ने अमीचन्द जी को भजन सुनाने को कहा, सुनकर गदगद हो गये। बोले—

"अमीचन्द ! हो तो मोती, पर कीचड़ में पड़े हो।"

ऋषि के वचन ने काया पलट दी। उसी वक्त सब दुर्व्यसन त्यागने की प्रतिज्ञा ली और संकल्प किया। फिर जब भी कोई कुवासना जागती, तत्काल शब्द गूंजने लगते—

"हो तो मोती, पर कीचड़ में पड़े हो।"

थोड़े ही अर्से में वह धर्मात्मा हो गये, उनकी कीर्त्ति फैल गयी और उन्हें माल आफिसर बनाया गया। पर वैराग्य की तरंग में नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया। और कहने लगे:—

"नहीं प्यारी तहसीलदारी, नहीं जजो दरकार।
प्रभु राखो अपनी सेवा में, हूँ किंकर चौकीदार॥

होकर गवर्नर भी क्या बनेगा, जाऊँगा अन्त सुधार।
अमीचन्द जैसे नीच को तारो और करो जीवन उद्धार॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(vii) महापुरुष की चेतावनी से

बुराई छूटने का एक और उदाहरण

३९. महर्षि देव दयानन्द जी के पास एक समय एक साहूकार का इकलौता बेटा, जो मदिरासेवन और वैश्यागमन करता था; लाया गया कि 'महाराज ! इसका कुछ सुधार करो।' स्वामी जी ने उस युवक से इन दोषों के विषय में पूछा, वह इन्कार न कर सका। ऋषि ने कहा—

"बेटा ! बताओ कि आपसे यदि उस वैश्या की कन्या हो जाये तो वह किसकी होगी" ?

लड़का बोला—"मेरी" !

तब फिर स्वामी जी ने कहा—

"यदि वह पेशा पर बैठ जाये तो आपको लज्जा तो नहीं आयेगी ?"

यह सुनते ही युवक सचेत हो गया। शपथ ली, प्रतिज्ञा की कि ऐसा नहीं करूँगा। सब दुर्व्यसन त्याग दिए। आशीर्वाद ले कर धर्मात्मा बन गया।

देव दयानन्द जी ने अपने उपदेशों से अनेकों को विषयों से वैराग्य दिलाया। जैसे लाला मुन्शीराम जी को स्वामी श्रद्धानन्द बना दिया। मृत्यु समय पं० गुरुदत्त को नास्तिक से आस्तिक बना दिया।

यह ऐसे महान् बने; जिस प्रकार कि पारसमणि के संस्पर्श से लोहा भी सोना बन जाता है।

(viii) दूसरे के शब्द से

छज्जू भक्त को वैराग्य

४०. इसी बीसवीं सदी के शुरू में लाहौर (अब पाकिस्तान)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में छज्जूभक्त बहुत प्रसिद्ध सन्त हुए। वे सांसारिक कार्यों के साथ प्रभु-भक्ति भी करते थे। सनातन धर्म के सत्संगों और सभाओं में अपने अनुपम कीर्त्तन से सुनने वालों को प्रेम-विभोर और मस्त कर देते थे। एक प्रातः जब रोज़ की तरह वे रावी दरिया पर नहाने जा रहे थे तो सड़क साफ कर रही जमादारनी ने यह ख्याल करके कि इन पर धूल न पड़े कहा—'महाराज ! एक तरफ हो जाओ।' भक्त जी को लगा कि यह देव-वाणी मुझे सचेत कर रही है कि 'एक तरफ हो जाओ; या सांसारिक राग मार्ग या अनुराग के राजपथ पर।' तत्काल उन्हें वैराग्य हो गया। लौटकर अपने लौबारे में आकर ध्यान में बैठ गए और बाहर बहुत कम निकले।

पाकिस्तान से आए हुए सभी धर्म-प्रेमी उन्हें जानते हैं।

(ix) किसी पशु के शब्द से

सदना कसाई को वैराग्य

४१. पन्द्रहवीं सदी में एक और भक्त सदना कसाई हुए हैं। ये भेड़-बकरियों का मांस बेचा करते थे। एक दिन जब इन्होंने एक बकरे की गर्दन पर छुरी रखी, तो उसके मुंह से रुदन भरी मेऽ मेऽ की पुकार निकली और फिर मुख पर हँसी प्रतीत हुई। प्रभु प्रेरणा से इसमें उसने कुछ विचित्रता अनुभव की और बोले—"बकरे ! बता, तेरा यह आर्त्तनाद और हँसी कैसी ?" तो दयालु प्रभु की कृपा देखिए कि बकरे की ओर से देववाणी हुई "कि मैं इसलिए रो रहा हूँ; क्योंकि मर रहा हूँ, और हँसा इसलिए हूँ कि आज जो तू मेरे साथ कर रहा है; अगले जन्म में मैं तेरे साथ करूँगा।'

उसके हृदय पर आघात हुआ, उसने समझा कि 'आगामीजन्म में बकरा मैं बनूंगा और वह कसाई बनकर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी तरह मेरी गर्दन को काटेगा।' इस दुःख की वेदना में उसे वैराग्य हो गया और सदा के लिए इस हिंसक धन्धे को छोड़कर प्रभु-भक्ति में लग गया। परमात्मा की कृपा से उसे कविता के उद्‌गार मिले, जो हर भक्त को परमात्मा की यह देन मिल जाती है। क्योंकि उस परम कवि से उनका मेल होता है। उनके बहुत सारे दोहे गुरु ग्रन्थ साहिब में उद्धृत हैं।

(x) किसी ताने से:—

तुलसीदास जी को वैराग्य

(जीवनकाल-१४६९ से १५३८ तक)

४२. कविकुलभूषण भक्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी का शुभागमन (सन् १४६९ में) बाँदा ज़िले के राजपुर ग्राम में हुआ था। उनकी माता जी का नाम हुलसी एवं पिताजी का नाम श्री आतमाराम दुबे था। इनका बचपन का नाम रामबोला था।

मूल (अशुभ नक्षत्र) में पैदा होने के कारण माता-पिता ने अनिष्ट की आशंक से इनका परित्याग कर दिया। इनकी दासी चुनिया ने इनका पालनपोषण किया।

काशी में बाबा नरहरिदास जी से शिक्षा प्राप्त की, वहाँ इनका नाम तुलसी दास रखा गया।

४३. इनकी शादी खूबसूरत रत्नावली से हुई। जिस पर वे अत्यन्त आसक्त रहते थे। एक बार वह अपनी माइके चले गयी, तो प्रेमवश अपनी पत्नी का वियोग सहन न करते हुए उसी दिन रात तक वहाँ पहुंच गये। पत्नी ने हैरान होकर उन्हें लज्जित करते हुए कहा—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"लाज न लागत आपको, दौड़े आयो साथ ।
धिक्-धिक ऐसे प्रेम को, क्या कहूं मैं नाथ ।
अस्थि-चर्ममय देह मम, ता में ऐसी प्रीति ।
तैसी जो श्री राम में, होती ना तौ भवभीति ।।

४४. पत्नी की यह फटकार सुन उन्हें तत्काल वैराग्य हो गया और उनका पत्नी-प्रेम भगवान् राम प्रेम में बदल गया।

तुरन्त वापस लौटे एवं गृहस्थ आश्रम को त्याग कर विरक्त हो गये ।

उनमें कविता के उद्‌गार थे। बहुत से काव्य-ग्रन्थों की रचना की, जिनमें सर्वप्रसिद्ध श्री **रामचरित मानस** है; जो उन्होंने ३२ महीने में लिखी। आज यह पुस्तक घर-घर में पढ़ी जाती है। इसके अतिरिक्त इनकी पुस्तकें हैं। वैराग्य सन्दीपनी, विनय पत्रिका, कवितावली । गीतावली, दोहावली, जानकी मंगल, पार्वती मंगल इत्यादि ।

बनारस में सन् १५३८ में ६९ वर्ष की आयु को प्राप्त कर जीवन-लीला की समाप्ति पर अमर हो गये ।

(xi) अपनी अन्तरात्मा को आवाज़ से श्री राम दासजी को वैराग्य (जीवनकाल १६०८-१६८१)

४५. श्री रामदास ब्राह्मणकुल में जम्बगाँव, नासिक जिला में पैदा हुए, इनके पिताजी का नाम सुरवा जी था। पहले इनका नाम नारायण रखा गया, बाद में राम सेवक (राम भक्त) होने से अपना नाम रामदास कर लिया। जब इनकी शादी हो रही थी, तो पुरोहित ने कहा-'सावधान होकर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनो ! कि शादी के बन्धन से गृहस्थ आश्रम में अपनी पत्नी, परिवार, समाज आदि के प्रति क्या-क्या ज़िम्मेवारियाँ होती हैं।'

यह सुनते-सुनते सोच में तल्लीन हो गये और आत्मा से यह आवाज़ आयी—

"तू बन्धनमुक्त होने आया है, बन्धन लेने नहीं।"

तत्काल वैराग्य हो गया और किसी बहाने से संस्कार-वेदी से उठ, बाहर निकल, रात के अन्धेरे में भाग गये। कई साल बनारस, अयोध्या, मथुरा, प्रयाग, रामेश्वरम् आदि तीर्थस्थानों पर साधुओं की संगति में रहकर बहुत ज्ञानवान् योगी हो गये।

उनकी कीर्ति बहुत फैली। महाराष्ट्र के राजा शिवाजी सतारा के पास एक मन्दिर में जहां वे रहते थे, बहुत कीमती भेंट लेकर पहुँचे और कहा कि "महाराज ! कोई आवश्यकता हो तो फरमाइए !" उन्होंने कुछ भी लेने से इन्कार कर दिया। जहाँ स्थाई रूप से उन्होंने बहुत तप, साधना और उपदेश दिये, उसका नाम अब सज्जन गढ़ (fort of sants) रखा गया।

इनकी मृत्यु सन् १६८१ में ७३ साल की आयु में हुई।

(xii) किसी घटना तथा अपने प्रिय के वियोग-विषाद से

बालक मूल शंकर को वैराग्य

(जीवनकाल-१८२४ से १८८३)

४६. सन् १८२४ में गुजरात प्रान्त के मौर्वी राज्य के छोटे से टंकारा नामक ग्राम में एक सम्पन्न ज़मींदार श्री कृष्णलाल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिवेदी के घर में एक चमकते सितारे श्री मूल शंकर जी का जन्म हुआ।

सन् १८३८ ई० में १४ साल की आयु में पिता के आग्रह पर 'शिव रात्रि' का व्रत रखा और शिव-दर्शन की आशा से सारी रात जागते रहे। जबकि अन्य भक्तजन निद्रा में लीन थे; अचानक उनकी दृष्टि एक चूहे पर पड़ी जो शिव की पिण्डी पर चढ़ कर आस-पास पड़े मिष्ठान्न को खा रहा था। यह देखकर उन्हें आत्मीय विचार आया; बोध हुआ कि यह सच्चा शिव नहीं हो सकता। वह तो अन्य महती शक्ति होगी।

४७. सन् १८४० में उनकी छोटी बहिन की मृत्यु हुई, १८४३ में, उनके चाचा का देहान्त हुआ। इन दृश्यों और घटनाओं ने उनके हृदय में वैराग्य को जन्म दिया। १८४५ में, २१ वर्ष की आयु में बिना सूचना के सच्चे शिव की तलाश में घर से निकल गये।

४८. सन् १८४८ में स्वामी पूर्णानन्द जी महाराज से नर्मदा नदी के तट पर संन्यास की दीक्षा ली और घोर तपस्या एवं वेद और अनेक शास्त्रों के अध्ययन से कई अद्भुत रचनाएँ करके महर्षि दयानन्द सरस्वती के नाम से जगत्-विख्यात होकर सन् १८८३ में ५९ साल की आयु में परलोक गामी हुए।

उनकी ३०-१०-१९८३ में दिवाली के अवसर पर पहली निर्वाण-शताब्दि अजमेर में लाखों श्रद्धालुओं ने बड़ी धूम-धाम से मनायी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(xiii) किसी सिद्धपुरुष योगी के दृष्टि, स्पर्श और उपदेश से

मेहरबान जी को वैराग्य

४६. इनका जन्म सन् १८६४ में हुआ। जब वह १७ साल की आयु में डक्कन कालेज पूना में पढ़ते थे, तो उनकी भेंट मुस्लिम सूफी फ़कीर हज़रत बाबा जान से हुई। उनके स्पर्श से उसके अन्तःकरण में रोमाञ्च आ गया और वह समाधिस्थ हो गये (जैसे नरेन्द्र को परमहंस रामकृष्ण ने इसी तरह ध्यानावस्थित करके आनन्द की अनुभूति करायी थी और उन्हें विवेकानन्द बना दिया।) उन पर ऐसा जादू का प्रभाव हुआ कि वैराग्य में कॉलेज छोड़ कर जंगल में २५ साल तक मौन रहकर घोर साधना की। उनमें अपने गुरु की तरह बहुत यौगिक शक्तियाँ और सिद्धियां थीं। उन्होंने विदेशों में जाकर भी भक्ति का प्रचार किया और मुसलमान उन्हें बतौर मसीहा, श्रद्धा एवं अदब से याद करते हैं।

(xiv) आत्मग्लानि से

बिलवा मंगल को वैराग्य

५०. एक दिन बिलवा मंगल को भ्रमण करते समय प्यास लग गयी। रास्ते के कुएँ पर एक सुन्दरी चिन्तामणि से उन्होंने पानी पिया। कामदृष्टि से वासना जागी और उस पर मोहित हो, उसके पीछे-पीछे चल दिये।

रास्ते में उन्हें अपनी इस दुर्भावना पर आत्मग्लानि हुई। अन्दर से लानत, धिक्कार-फिटकार हुई और प्रायश्चित्त के तौर पर उसी देवी के घर से सलाई लेकर अपनी आँखों को ज्योतिहीन कर लिया। वे बाद में परमभक्त सूरदास के नाम से प्रसिद्ध हुए। आज भी उनके भक्ति-पद उपासकों द्वारा बड़ी श्रद्धा से गाये जाते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्द्रहवीं सदी में ऐसे बहुत सारे सन्त कवि भारत में हुए हैं, एक और सन्त कवि का परिचय देता हूं।

(xv) किसी कटु अनुभव से

अजामिल को वैराग्य

५१. अजामिल विद्वान् ब्राह्मण थे। अपनी पत्नी के होते हुए एक निम्न जाति की स्त्री से इन्हें प्रेम हो गया। उसके साथ रहने से उन्हें बहुत आर्थिक हानि, शारीरिक दुःख, मानसिक क्लेश और वृत्ति-विक्षेप हुआ। चुनांचे सख्त बीमार हो गए। प्रेमिका उन्हें छोड़ गई। उस कटु अनुभव की वेदना से उन्हें वैराग्य हुआ। सर्वथा गृहस्थ को त्याग, गंगा के किनारे कई साल बड़ा तप और योग-अभ्यास किया।

उस सन्त कवि के अनेक दोहे सिखों के 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में प्रकाशित हैं। उनका 'जप जी साहिब' में यह पद उद्धृत है—

मूत प्लीति कप्पड़ होये।
दे साबुन लिए श्रो धोये॥

भरये मत पापां के संग।
श्रो धोपे नामें के रंग॥

अर्थात् सन्त जी फ़रमा रहे हैं कि पेशाब से अपवित्र हुआ कपड़ा साबुन से धुल कर पवित्र हो जाता है। पापों से अन्तःकरण को मत भरो। यह मल परमात्मा के नाम, जप, ध्यान, उपासना के रंग से हटाया जा सकता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(xvi) विरक्तों के सत्संग से

बहिन लाजवन्ती को वैराग्य

५२. मेरी (लेखक की) छोटी बहिन लाजवन्ती के पति लाला सूरज नारायण जी का देहान्त सन् १९६३ में हुआ। बहिन की आयु उस समय ४५ वर्ष की थी। बहुत शोक में रहती थी। ब्रह्मकुमारियों ने उनके घर में जाकर वैराग्य के टेप किए हुए भजनों और अपने सदुपदेशों से योग में प्रवृत्त करा, उसका ध्यान स्वर्गीय पति की याद से हटा कर प्यारे प्रभु की ओर लगा दिया और वह उनके शक्ति नगर, दिल्ली के केन्द्र में जाकर सेवा के कार्य करने लगी। अपना सारा ज़ेवर, सामान भी बाँट दिया और उसका शेष जीवन १९८० तक योग-साधना में लगा रहा।

(xvii) वैरागियों तथा भक्तों की जीवनियाँ और सन्तकवियों के उद्‌गारों को पढ़ने से भी वैराग्य होता है।

५३. यह तो सर्वमान्य है कि जैसी कोई संगति और चिन्तन करता है, उसके संस्कार वैसे बनकर उसी प्रकार का हो जाता है। यह हर साधक का प्रत्यक्ष अनुभव है।

अब तक वर्णित भक्तों के अतिरिक्त जयदेव, रामानुज, रामानन्द, कबीर, फरीद, रहीम, रसखान, नामदेव, तुकाराम, दादू, ध्रुव, भर्तृहरि (जिन्होंने वैराग्य होने पर राजगद्दी छोड़ दी थी), महावीर स्वामी, परमहंस रामकृष्ण, विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ इत्यादि के गीतों, जीवनियों और उपदेशों को पढ़ने, सुनने-सुनाने से निश्चय वैराग्य की स्थिति बनती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(xviii) जैसे मीराबाई के गीतों से
(जीवनकाल-सन् १५१६ से १५४६ तक)

५४. विरक्ति से वैराग्य की उत्पत्ति होती है।

विरक्ति के भावों का उदय किसी को किसी के प्रेम से और किसी को प्यारे भक्ति गीतों से आरम्भ होता है जैसे—

मीरा जी मारवाड़ के राजा राव रतनसिंह की लड़की थी। पाँच साल की आयु थी कि एक दिन अपने महल के छज्जे से एक सजी बारात में सजी हुई घोड़ी पर सजे हुए दूल्हा को देखा तो अपनी माँ से पूछा कि 'मेरा दूल्हा कहाँ है?'

माता जी ने अपने घर के मन्दिर में भगवान् कृष्ण की मूर्त्ति की ओर इशारा करके कहा कि "यह गिरिधर गोपाल तुम्हारा दूल्हा है"। उसने इस पर विश्वास करके श्रद्धापूर्वक मान लिया और एक कृष्ण की छोटी मूर्त्ति मंगवा ली। बड़े सम्मान से उसे नहलाती, अच्छे कपड़े और सुगन्धित पुष्पों के हार पहनाती। सामने बैठकर पूजा करती, धूप-दीप से आरती उतारती। सारे दिन उसी के साथ गा-गा कर बातें, प्रार्थना करती। उसे नाच-नाच कर रिझाती और उसकी याद में रहती।

कहा जाता है कि मीरा ने भगवान् को गा-गा और नाच-नाच कर पाया। मगर सच तो यह है कि उसको गिरधर का प्रेम पहले हुआ और उसकी चाह की मस्ती में गीत बनाती गाती और नाचती।

सच्चा भक्त तो कवि, गायक, नर्तक हो जाता है चाहे वो नाचे न मेरा ऐसा अनुभव है भक्त बनकर देख लें।

उसकी शादी उदयपुर के महाराणा राणासाँगा के बड़े कुमार भोजराज के साथ हुई। बहुत मधुर गायिका और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्ण-स्तुति-गीतों के लिए मीरा की यश-कीर्त्ति दूर-दूर तक फैल चकी थी।

चुनांचे शहनशाह अकबर और उसके रत्न तानसेन को उत्कंठा हुई कि मीरा जी के भक्ति-गायन-नृत्य का रसपान किया जाए। इसलिए वे तपस्वियों का भेष बनाकर प्रातःकाल मीरा के मन्दिर में आ गए। उस वक्त वह अपने संगीत और नृत्य से भगवान् की आराधना कर रही थी। जैसा कि उन्होंने सुन रखा था, वे दोनों आनन्द-विभोर होकर ध्यान-समाधि में चले गए और बहुत देर तक अपनी सुध-बुध खोकर बैठे रहे। जब वन्दना समाप्त हुई तो इन्होंने अपना परिचय दिया। अकबर ने उन्हें एक बहुत सुन्दर नेकलेस और कीमती वस्तुयें भेंट कीं। उसने लेने से इन्कार कर दिया।

आखिर उन्होंने उसकी आज्ञा से मूर्त्ति के चरणों में ज़ेवर रख दिया; फिर प्रार्थना कि 'अब यह भगवान् की वस्तु हो गयी है, इस रूप में स्वीकार कर लो' ! तब मीरा इन्कार न कर सकीं।

मीरा के जीवन की अगली कड़ी मेरे इस विषय से बाहर है। उनकी मृत्यु द्वारिका में सन् १५४६ में ३० वर्ष की अल्पायु में हुई।

(xix) गोस्वामी हरिदास जी का गायन-प्रभाव

५५. तानसेन शहनशाह अकबर के नौ रत्नों में से एक रत्न थे। बहुत प्रकार के राग मल्हार, दीपक आदि गाते थे। जिनसे बादल छा जायें, वर्षा होने लगे और दीपक जल जायें।

एक दिन शहनशाह ने कहा कि "तानसेन ! आप

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतने बड़े गायक सम्राट हो और कहते हो कि 'मैं अपने गुरु महाराज के सामने कुछ भी नहीं हूँ।' मैं उन्हें सुनना चाहता हूँ। अतः उन्हें सादर बुलाया जाए।"

तानसेन ने कहा कि "वे सन्तयोगी हैं, जंगल में रहते हैं, यहाँ नहीं आयेंगे।" शहनशाह ने कहा—"तब कल सबेरे वहां चलेंगे।"

५६. दिल्ली से लगभग सौ मील पर उनकी कुटिया थी, वहाँ पहुँचे। स्वामी जी अक्सर ध्यान-समाधि में रहते थे और उस वक्त ऐसी ही स्थिति थी। जाकर बाहर बैठ गये। उन्होंने विचार किया कि 'कैसे इनका ध्यान हटायें?' तानसेन ने सोचा कि 'मैं साज़ को जानबूझकर ग़लत बजाऊँगा और गाऊँगा। तब वे उत्तेजित होकर स्वयं गा कर उसे ठीक करायेंगे, वरना कहने पर उनका mood न बने।' ऐसा ही किया गया।

सुनते ही स्वामी जी का ध्यान खुला और बाहर आकर झुंझला कर बोले—"तानसेन! तुमने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया। रियाज़ (अभ्यास) छोड़ दिया, जिससे राग भूल गये हो। लाओ तान-तम्बूरा और अपनी ग़लती को ध्यान से ठीक करो।" तब उन्होंने झूम-झूम कर प्रेम की उमंग में जो गाना गया, सभी आसपास के व्यक्ति, पशु-पक्षी खिंचे चले आये। गायन में वह तरंग, माधुर्य, आकर्षण, रोमांच और जादू था कि शब्द उसका वर्णन नहीं कर सकते। इससे मौसम सुहावना हो गया, प्रकृति ने दुल्हन का रूप धारण कर लिया। धरती, आकाश और दिशाओं ने नमन नमस्कार किया, वायु मन्द हो गयी, बहते जल रुक गए, सन्नाटा छा गया। इनके विनीत हृदयों में अनुराग छा गया, उन्हें द्यौ लोक के आनन्द

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अनुभूति हुई। राग समाप्त होने के बाद भी कुछ देर तक यह अवस्था बनी रही।

विदा होते समय उनके नयनों में जल और हृदय में प्रभु-प्रेम था न चाहते हुए भी जाना था। वापसी में भी उनकी मस्ती उतरी नहीं; दोनों ध्यान के वातावरण में मौन लौटे आकर, अकबर ने तानसेन से पूछा "आप में और आपके गुरु जी में ज़मीन आसमान का अन्तर क्यों है?" तो तानसेन ने उत्तर दिया कि "महाराज! मैं छोटे से राजा का कवि हूँ और वह शहनशाहों के शहनशाह अल्लाताला (महान् प्रभु) के सच्च खण्ड दरबार के महान् गायक हैं। जो अपने प्रीतम को रिझाने, पाने और अपने को आनन्दित-मस्त करने के लिए गाते हैं।"

दूसरा उपाय—

५७. सब दोष और पाप इन्द्रियों द्वारा चञ्चल मन के योग से होते हैं। इसे शान्त और सात्त्विक करने के लिए पहले इसे **शिव-संकल्पी** बनाना पड़ता है, तभी जीवन निर्दोष होता है। यह मन को विषयों से हटाने की पहली साधना है, दूसरी है एकाग्रता और तीसरी निरोध-अवस्था में लाने की।

जैसे युद्ध में विरोधी फौज के सेनापति को कैद करने पर विजय पायी जा सकती है। वैसे ही इन्द्रियों के नियामक मन को मौन के बन्दीगृह में डालकर इन्द्रियों को विषय-विकारों से रहित किया जा सकता है, तब जाकर समाधि बनती है।

मन शिव-संकल्प वाला हो। इसके लिए यजुर्वेद के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६ मन्त्र महर्षि ने 'शान्ति करणम्' में रखे हैं। प्रतिदिन आत्म-निरीक्षण के बाद इन मन्त्रों को अर्थों सहित गा कर रात को सोना चाहिए। इसलिए इन्हें ऐसा लिख दिया है। चन्द महीनों के अभ्यास से मन एकाग्र हो जायेगा।

शिव-सङ्कल्प-मन्त्र

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः
शिवसङ्कल्पमस्तु ।। —(य० ३४-१)

प्रभु ! जागृत अवस्था में जो, दूर-दूर तक जाता है।
सोते में भी दिव्य शक्तिमय, सपनों की दौड़ लगाता है ।।

भाग-भाग कर जाने वाला, ज्योतियों का भी ज्योतिर्मान्।
शुभ संकल्पों से युक्त रहे वह, मन मेरा सदा भगवान् ।।

ओ३म् येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे
कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे
मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।। —(य० ३४-२)

जिसके द्वारा धर्मी मनीषी, यज्ञ कर्मों को करते हैं।
संघर्षों में विचलित कभी नहीं जो होते हैं ।।

प्रजाओं में जिसकी, शक्ति का नहीं कोई अनुमान।
शुभ संकल्पों से युक्त रहे वह, मन मेरा सदा भगवान् ।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म् यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न-ऋते किंचन कर्मक्रियते
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।। —(य० ३४-३)

जिसमें धारण-चिन्तन ज्ञानशक्तियाँ रहती हैं भरपूर ।
मनुष्यों में न बुझने वाली, अमर ज्योति का रहता नूर ।।

जिसके बिना नहीं हो सकता, सफल कार्यों का कोई विधान ।
शुभ संकल्पों से युक्त रहे, वह मन मेरा सदा भगवान् ।।

ओ३म् येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।।
—(य०३४-४)

जो ईश युक्त हो तीन काल का, ज्ञान सभी कराता है ।
जो ज्ञान-इन्द्रियों, चित्त-बुद्धि को, ग्रहण शक्तियाँ देता है ।।

ये सप्त ऋषि जिस महतत्त्व से पाते हैं विस्तृत विज्ञान ।
शुभ संकल्पों से युक्त रहे, वह मन मेरा सदा भगवान् ।।

ओ३म् यस्मिन्नृचः सामयजू ꣳ षि यस्मिन्
प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिँश्चित्त ँ सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।। —(य०३४-५)

जैसे रथ-पहियों की नाभि में, लगे होते हैं अरे ।
वैसे ऋग्, यजुर् सामवेद के, ज्ञान हैं इसमें भरे ।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें प्राणियों के सम्पूर्ण चिन्तन का होता विधान।
शुभ संकल्पों से युक्त रहे वह, मन मेरा सदा भगवान् ।।

ओ३म् सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्या-
न्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनइव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु ।।

—(य० ३४-६)

चतुर सारथी वेगवान् घोड़ों को जैसे सही चलाता है।
लगाम से उनको कसके रखकर, सीधी राह ले जाता है ।।
मनुष्य-हृदय में प्रतिष्ठित है जो सदा युवा, तीव्र, महान् ।
शुभ संकल्पों से युक्त रहे वह, मन मेरा सदा भगवान् ।।

तीसरा उपाय—

५८. जब भी कर्त्तव्य कर्मों से निवृत्ति हो, मन को ओ३म् के मानसिक जप में लगाये रखना, खाली न रहने देना।

इस पर एक दृष्टान्त इस प्रकार है :—

एक साहूकार ने अपने कारोबार के लिए एक मैनेजर रखना था। इसके लिए विज्ञापन दिया। एक बहुत ही योग्य, सुन्दर नौजवान व्यक्ति जो हर काम में दक्ष था, उसे चुन लिया गया। जिसकी शर्त यह थी कि 'वह तनख्वाह कुछ नहीं लेगा। सिर्फ रोटी, कपड़ा देना और हर वक्त काम दिये रखना। नौकरी पक्की होगी; निकाल नहीं सकोगे। अगर खाली रखा तो तोड़-फोड़ शुरू कर दूंगा।'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेठ के पास काम बहुत ज्यादा था। ज़मीनों का, फैक्ट्री का, दुकानों का, व्यापार का, कचहरी का, घर का इत्यादि। सो शर्त मंजूर करके रख लिया। दिन भर का पूर्ण काम समझ कर उसे दे दिया। जो उस प्रबन्धक ने घण्टे भर में कर दिया। अब खाली होते ही उसने दुकान का माल अन्दर से बाहर और बाहर से अन्दर फेंकना शुरू कर दिया। हलचल मचा गई। मालिक बड़ा परेशान हुआ। झट अपने बड़े एक अनुभवी मुखिया के पास गया; सारी परेशानी बतायी। उसने कहा 'इसका समाधान बहुत सरल है। अपनी हवेली के आँगन में एक बाँस गाढ़ दो और सेवक को कहो कि जब खाली हो तो उस पर चढ़ते-उतरते रहना।'

उस ने ऐसा ही किया फलस्वरूप उस निरन्तर अभ्यास से थोड़े समय में ही वह सेवक सर्वथा चञ्चलता रहित होकर शान्त हो गया। तब उस दक्ष की योग्य सेवा से मालिक मालामाल हो गया।

वह सेवक यह मन है, जिसकी निरोध-अवस्था होने पर जीवात्मा अपने स्वरूप में स्थिर होकर परमात्मा का साक्षात् कर लेता है।

चौथा उपाय—

५६. सुखी पुरुषों से मित्रता, दुःखियों पर करुणा, पुण्यात्माओं पर हर्ष और पापियों से उपेक्षा करने से मन प्रसन्न होकर एकाग्र और निर्मल हो जाता है।

बुरे लोगों की उपेक्षा करने से मनुष्य क्रोध से बचता है। ऐसा करने से योगी का मन निरन्तर योग-युक्त रहता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँचवां उपाय—

६०. प्राणों को बलपूर्वक बाहर निकालने और रोकने से भी मन स्थिर हो जाता है । अर्थात् प्राणायाम के रेचक और बाह्य कुम्भक से मन-चित्त की वृत्तियां रुक जाती हैं ।

छटा उपाय—

६१. मन के द्रष्टा रहें और सदा देख-रेख में रखें कि कहाँ से भटका, किधर गया । अर्थात् विचार के मूल पर ही उसे रोकें ।

सातवां उपाय—

६२. मन की अशान्ति तथा चञ्चलता के कारण हैं भय, भ्रम, भ्रान्ति, संशय, निराशा, ईर्ष्या, राग, द्वेष, शोक, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, स्वार्थ, आसक्ति इत्यादि । ये यम, नियम के पालन से जो सत्य व्यवहार और सत्य आचरण के द्योतक हैं, इससे मन को शान्त, चिन्तारहित, धीर, गम्भीर रखने से भी एकाग्रता रहेगी ।

आठवां उपाय—

६३. किसी भी वीतराग, महात्मा, गुरुजनों के स्वरूप में संयम करके भी एकाग्रता आ जाती है । प्रत्येक दैनिक, शारीरिक एवं मानसिक कार्यों में तल्लीनता, एकाग्रता और समग्रता के अभ्यास से मन शान्त रहेगा ।

नौवां उपाय –

६४. मन पक्षी जब कामनाओं और संकल्प-विकल्पों की ऊँची उड़ान ले और एकाग्रता भंग करे तो उसे वेद की इस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्ति के जप से यथार्थ के धरातल पर पटक दें—

परोपेहि मनसः पापाः

ए मेरे मन के पाप (व्यर्थ विकल्पो) दूर हट जाओ।

दसवां उपाय—

६५. जैसे माँ शरारती बच्चे को ताड़ती और फटकारती है, ऐसे ही मन पर अंकुश करना चाहिए। कहना चाहिए कि 'अरे मन ! तुम हमारी सन्ध्या, ध्यान, चिन्तन में विघ्न डालते हो, अपनी सतरंगी चालें चलते हो, शर्म नहीं आती ! हमारे आध्यात्मिक मार्ग में इस तरह कांटे बिछाते हो, जीती हुई बाज़ी को हराते हो।'

इस यत्न से भी मन एकाग्र हो जाता है।

ग्यारहवां उपाय—

६६. किसी भी चिह्न, बिन्दु, पुष्प और अभीष्ट सुन्दर वस्तु पर ध्यान लगाये रखने के अभ्यास से भी मन की एकाग्रता होती है।

उषाकाल में चढ़ते हुए सूर्यदेव के दर्शन करके उसकी आकृति का आज्ञाचक्र (भृकुटि) पर आँखें बंद कर उस ज्योति को स्थिर करें और फिर मन द्वारा उसको देखें। थोड़ी देर बाद वह लाल चक्र विलीन हो जाएगा। पुनः सूर्य पर दृष्टि डालें, वैसे ही तिलक स्थान पर उस रूप को जमायें। निरन्तर हर रोज़ कई बार इस तरह अभ्यास करते रहने से मन उस प्रकाश में टिककर समाहित हो जाएगा। इस अभ्यास से स्मृति भी बढ़ जाएगी।

बारहवां उपाय—

६७, स्तुति, प्रार्थना, उपासना, चेतावनी, वैराग्य, विरक्ति के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तिगीत हृदय के अन्तराल से प्रेम-विभोर हो, श्रद्धापूर्वक ब्रह्म में अन्तर्ध्यान द्वारा मन की डुबकी लगा कर गाने से मस्ती छा जायेगी और एकाग्रता आ जायेगी। पुस्तक के अन्त में कुछ ऐसे भजन दे रहा हूँ।

तेरहवां उपाय—

६८. मन लगता है प्रेम से, भय से अथवा ज़रूरत से, क्रमशः इनका सम्बन्ध है हृदय से, कान से और आँख से।

प्रभु की दया भरी घटनाएँ स्मरण रखें, उनका ध्यान सदा हृदय-कमल में रहे।

पूर्ण न्यायकारी के भय से कान सदा चौकन्ने रहें, यह याद रखते हुए कि 'डरो ! वह बड़ा जबर्दस्त है' गुरु महाराज जी की यह पुस्तक अवश्य पढ़ें।

आँखें सर्वत्र प्रभु-सत्ता को देखें और आवश्यकता पूर्ति के लिए उपासक केवल परमात्मा का दरवाज़ा खटखटाये।

चौदहवां उपाय—

६९. गायत्री-मन्त्र को मन द्वारा मस्तक पर लिखना और देखना।

महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज ने एकाग्रता लाने की ऐसी जप-विधि बतायी थी, जो लाभदायक है:—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः (ध्यान हृदय में)

तत्सवितुर्वरेण्यं (ध्यान-भृकुटि-आज्ञाचक्र में)

भर्गो देवस्य धीमहि (हृदय में)

धियो यो नः प्रचोदयात् (आज्ञाचक्र में)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्द्रहवाँ—

मन को सम्बोधन करके प्रेम विभोर हो स्तुति-प्रार्थना और वैराग्य के भजन गाने से भी मन-चित्त की निरोधावस्था बन जाती है। इस पुस्तक में ऐसे भजन आप पढ़ेंगे।

दिव्य मन नित्य ओ३म् जपा कर, ओ३म् जपा कर, ओ३म् जपा कर। रे मन ऐसी होली खेलें……इत्यादि।

वैराग्य की साधना

५५. इन्द्रियों को विषयों से हटाना इन्द्रियों का वैराग्य है।

मन को इन्द्रियों से हटाना मन का वैराग्य है।

बुद्धि को मन और इन्द्रियों से पृथक् रखना बुद्धि का वैराग्य है।

चित्त को बुद्धि, मन, इन्द्रियों में जाने से रोकना चित्त का वैराग्य है।

आत्मा को इन सबमें जाने से रोकने का नाम परम वैराग्य है। आत्मस्थिति अवस्था है।

यह वैराग्य की अन्तर्मुखी साधना है।

५६. जब मनुष्य विवेक ज्ञान के साधन से विषय-विकारों को त्याग और मोह-ममता की बेड़ी को काट देता है तो तब उसके हृदय में वैराग्य की उत्पत्ति होती है।

वैराग्य के अभाव में परमात्मा से सच्चा प्रेम व अनुराग हो ही नहीं सकता।

५७. हमारा मिलन परमात्मा से क्यों नहीं होता, इसे इस कविता से पुनः जान लें। परमात्मा आशीर्वाद दें कि हम वृत्ति-निरोध का अभ्यास निरन्तर करते रहें। जिसके सिद्ध

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने पर हमारी ९५ प्रतिशत मोक्ष की दूरी समाप्त हो जाएगी ।

प्रीतम आये, झाँका और लौट कर जाने लगे ।
चौंक कर मैंने कहा, वापस हो क्यों जाने लगे ।।

देखी थी बाट कब से, प्रभु तेरे आगमन की ।
हृदय में आओ विराजो, शोभा बढ़े सदन की ।।

मुंह फेर कर वे चल दिए, देव यों कहते हुए ।
जगह कहाँ, चित्त-वृत्तियों के, तो ढेर हैं लगे हुए ।।

तब समझ में आया कि, गर निरुद्ध हो जाता कभी इनका ।
तो कितने जन्म पहले हो, आनन्द मिल जाता मुक्ति का ।।

।। ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!! ओ३म् ।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

१०. पञ्चमहायज्ञ-व्याख्या

१. जब तक हम ऋणों से उऋण नहीं होते, श्रेष्ठतम कर्म, निःस्वार्थ भाव से नहीं करते, मुक्त नहीं हो सकते। भगवान् मनु जी महाराज ने इसके लिए **पञ्च यज्ञ** अनिवार्य कहे हैं—

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥

—(मनु० ३-७०)

(i) वेदादि शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना **ब्रह्मयज्ञ** है।

(ii) पित्रों (माता-पिता, विद्वानों) को अन्नादि द्वारा तृप्त करना **पितृयज्ञ** है।

(iii) प्रातः-सायं अग्निहोत्र करना **देवयज्ञ** है।

(iv) भृत्यों, दीन जन्तुओं को भोजन का भाग बचा कर देना **भूतयज्ञ** अथवा **बलिवैश्वदेव यज्ञ** है।

(v) अतिथियों, विद्वानों का भोजनादि से सेवा-सत्कार करना **नृयज्ञ** अथवा **अतिथियज्ञ** है।
ये पांच महायज्ञ कहलाते हैं।

दूसरे ऋषियों ने इनका क्रम इसप्रकार रखा है—**ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और बलिवैश्वदेवयज्ञ या भूतयज्ञ।**

२. **व्याख्या—** **(i) ब्रह्मयज्ञ**

(i) वेदादि सत्शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तदनुसार आचरण करना तथा आत्म-निरीक्षण करते रहना स्वाध्याय कहलाता है।

(ii) परमेश्वर का भली-भाँति, श्रद्धापूर्वक प्रेम-सहित, मन-चित्त लगाकर जप, ध्यान, स्मरण, चिन्तन, कीर्तन, स्तुति, प्रार्थना, उपासना, आराधना, भक्ति-विशेष, ब्रह्मलीनता और योग अभ्यास द्वारा सन्ध्या करना।

स्वाध्याय और सन्ध्या मिलकर ब्रह्मयज्ञ कहलाते हैं।

सन्ध्या का अर्थ है, सर्वविधि (जो ऊपर लिखा है) परमात्मा का भली-भाँति सम्यक् ध्यान, उपासना करना। इसमें गायत्री-जप से लेकर इन्द्रियों को वश में रख और आत्मा को मन से संयुक्त करके योग-अभ्यास तक सब प्रकार से परमात्मा की उपासना आ जाती है।

जैसे मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार के लिए एक शब्द अन्तःकरण है, अहिंसा से लेकर अपरिग्रह तक पाँचों को यम कहते हैं, शौच से लेकर ईश्वर-प्राणिधान तक को नियम कहते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, चार अन्तःकरण चतुष्टय, इन उन्नीस शक्तियों के समूह को सूक्ष्म-शरीर कहते हैं। स्वामी ओमानन्द जी महाराज ने मन और चित्त को एक मानकर १८ शक्तियाँ कही हैं।

इसी प्रकार सब विधि, उपासना का नाम सन्ध्या है।

सन्ध्या कब करनी चाहिए ?

३. पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमर्कदर्शनात्।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात्॥

—(मनु० २-१०१)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थः—

प्रातः की सन्ध्या ब्रह्ममुहूर्त्त में सूर्योदय से पहले और सायंकाल की सूर्यास्त से लेकर तारों के दर्शन पर्यन्त। सावित्री (गायत्री-मन्त्र) के अर्थों को विचार कर हर समय कर सकते हैं।

४. वेदमाता उपासक की ज़बानी यही आदेश दे रही है—

ऋषि-मधुच्छन्दाः, देवता-अग्नि, छन्द-गायत्री

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि ।।

—(ऋ० १-१-७, सा० १४)

अर्थः—

अग्ने=हे अत्यन्त ज्योतिस्वरूप प्रभु !
उप त्वा=हम तेरे समीप
दिवे दिवे=प्रतिदिन, निरन्तर
दोषावस्तः=रात और दिन के समय, सायं-प्रातः
धिया वयम्=ज्ञान-कर्म से, भाव समाधि, ज्ञान समाधि और ध्यान-समाधि में रहते हुए
नमो भरन्त=अपने शुद्ध अन्तःकरण, श्रद्धायुक्त हृदय और नम्रभाव से नमस्कारों भरी अञ्जलि
एमसि=आपके पुनीत चरणों में आदरपूर्वक समर्पित करते हैं।

भक्त उपासक अपने ज्ञानमय कर्त्तव्य-कर्मों को भगवान् को अर्पण करते हुए आत्म-निवेदन करते हैं कि हे अत्यन्त तेजस्वरूप पिता ! अब तो हमारी जीवनयात्रा का एकमात्र यही उद्देश्य रह गया है कि मुक्तिलक्ष्य को पाने के लिए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिदिन प्रातः-सायं आपका ध्यान करते हुए आपको प्राप्त हों।

कविता में अर्थः—

हे ज्योतिस्वरूप भगवन्, तेरे समीप हम आते हैं।
प्रतिदिन सायं प्रातः, तुम्हारा ध्यान लगाते हैं॥

और नहीं कोई वस्तु अपनी, नमस्कारों की भेंट चढ़ाते हैं।
शुद्ध हृदय के प्रेमभाव से, समर्पित आपको होते हैं॥

सौभाग्य सदा बना रहे, कामना ऐसी करते हैं।
जब तक न हो मिलन आपका, अवस्था ऐसी चाहते हैं॥

५. ब्रह्मयज्ञादि कितने समय करना चाहिए ?

ऋषियों ने कहा है—'दिन का बारहवाँ हिस्सा अर्थात् दो घण्टे (सुबह-शाम का योग) उपासनादि निरन्तर करें, इस समय में देवयज्ञ भी शामिल है।

दान के विषय में कहा है कि 'अपनी आय का दसवाँ हिस्सा योग्य पात्र को दान दो।

६. सन्ध्या से क्या लाभ हैं ?

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम्॥

—(मनु० २-१०२)

अर्थः—

प्रातः काल सन्ध्या में बैठकर जपादि से रात्रि के दोष दूर होते हैं और सायंकाल की सन्ध्या से दिन की मानसिक मलीनता आदि नष्ट होते हैं।

७. सन्ध्या न करने वाला शूद्र होता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ।।

—(मनु० २-१०३)

अर्थः—

जो मनुष्य नित्य प्रातः और सायं सन्ध्या-उपासना को नहीं करता, उसको शूद्र के समान समझ कर द्विज कुल से अलग करके शूद्रकुल में रख देना चाहिए।

आत्म-निरीक्षण

८. इन्द्रियों द्वारा सब दोष होते हैं। इनकी प्रतिदिन पड़ताल किये बिना साधक उन्नति नहीं कर सकता। महर्षि देव दयानन्द जी की अद्भुत देन है कि उन्होंने सन्ध्या में दूसरा मन्त्र इन्द्रिय स्पर्श का दिया। जिसके द्वारा हम प्रत्येक इन्द्रिय का निरीक्षण कर सकते हैं कि कोई अंग दुर्बल और अपयश का भागी तो नहीं बन रहा। वह मन्त्र इस प्रकार है–

इन्द्रिय स्पर्श-मन्त्र

ओ३म् वाक् वाक् । ओ३म् प्राणः प्राणः ।
ओ३म् चक्षुः चक्षुः । ओ३म् श्रोत्रं श्रोत्रम् ।

ओ३म् नाभिः । ओ३म् हृदयम् ।
ओ३म् कण्ठः । ओ३म् शिरः
ओ३म् बाहुभ्यां यशोबलम् ।
ओ३म् करतल करपृष्ठे ।

अर्थः—

ओ३म् वाक्=प्रभु ! आपकी वाणी वेद है
वाक्=उसके अनुसार मैं बोलूं ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म् प्राणः प्राणः=हे प्रभु ! मेरे प्रत्येक प्राण की धड़कन से तेरे ओ३म् नाम का जप-स्मरण हो।

ओ३म् चक्षुः चक्षुः=हे प्रभु ! मेरी दृष्टि प्रत्येक सौन्दर्य में आपकी आभा देखे।

ओ३म् नाभिः=हे प्रभु ! मेरी नाभि में कोई काम-वासना का विकार न आये और ब्रह्मचर्य का पालन हो।

ओ३म् हृदयम्=हे प्रभु ! मेरा हृदय कोमल, उदार और आपकी प्रेम भक्ति से भरपूर हो।

ओ३म् कण्ठः=हे प्रभु ! मेरे कण्ठ के स्वर तुझे रिझाने वाले हों।

ओ३म् शिरः=हे प्रभु ! मेरे शिर में तेरे ज्ञान का प्रक श हो।

ओ३म् बाहुभ्यां=हे प्रभु ! मेरी दोनों भुजाएं निर्बलों की रक्षा करने वाली हों।

यशो बलम्=और तेरी कृपा से मेरी सब इन्द्रियाँ बलवती शक्तिशाली एवं यशस्वी हों।

ओ३म् करतलकरपृष्ठे=हे प्रभु ! मेरे हाथों द्वारा लेन-देन से यश मिले।

९. आत्म-निरीक्षण किए बिना दोष जाते नहीं। पवित्रता आती नहीं। इन्द्रियाँ यशस्वी होती नहीं उपासना बनती नहीं।

तो परमात्मा से मिलन कैसे हो सकता है ?

महर्षि जी ने इससे अगला मार्जन-मन्त्र इन्द्रियों की पवित्रता के सम्पादन का रखा; जिसे मैंने **'शौच'** के अन्तर्गत प्रकाशित कर दिया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०. साधक को आत्म-निरीक्षण प्रति सायं अवश्य करना चाहिए और इसके लिए पूरी सन्ध्या का यदि समय न हो तो कम से कम प्राणायाम के मन्त्र तक अवश्य कर अपनी गतिविधि को निहारें। भूलों, अपराधों को डायरी में लिखें, प्रायश्चित करें। दृढ़ संकल्प लें कि भविष्य में ऐसी गल्तियाँ नहीं करेंगे। यह अभ्यास करते-करते निश्चय हम लक्ष्य की ओर बढ़ते चले जायेंगे। यह सबसे आवश्यक साधना है।

इन्द्रियों में बल यश कैसे लायें ? इनका आत्म-निरीक्षण कैसे करें ? यह पैरा नं० १० और Page २३४/२३५ के चार्ट से जानें—

११. इन्द्रियों की इन सोलह शक्तियों के यशोबलम् से मनुष्य सोलह कला सम्पूर्ण हो जाता है—

२ बोलने-चखने की जिह्वाशक्ति (**वाक्-वाक्**)
२ प्राण-अपान की शक्ति—**प्राणः प्राणः**
२ दोनों नेत्रों की शक्ति—**चक्षुः चक्षुः**
२ दोनों क़ानों की शक्ति—**श्रोत्रं श्रोत्रम्**
१ नाभि की शक्ति—**नाभिः**
१ हृदय की शक्ति—**हृदयम्**
१ कण्ठ की शक्ति—**कण्ठः**
१ शिर की शक्ति—**शिरः**
२ भुजाओं की शक्ति—**बाहुभ्याम्**
२ हाथों की शक्ति—**करतलकरपृष्ठे**

१६ कुल

१२. अब बल और यश का महत्त्व जानें:—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो।

—(मुण्ड० ३-२-४)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०.

क्र.सं	मन्त्र	बल कैसे आयेगा ?	यश कैसे मिलेगा ?	अन्तः करण की मलीनता कारण दोषों का निरीक्षण कैसे करें ?
१.	ओ३म् वाक् वाक् (वाणी)	वाणी के सत्य, मौन, परमात्मा की स्तुति-प्रार्थना से	प्रिय, मधुर, सुरीला, हितकर, नम्र, कल्याणी और ओजस्वी वाणी से	देखें कि वाणी से कोई असत्य, अप्रिय, कठोर, असभ्य, अशुभ, क्रोध, चुग़ली आदि के अपशब्द तो नहीं निकलें
२.	प्राणः प्राणः (प्राणः)	प्रति श्वाँस ओ३म् के जप-स्मरण से और प्राणायाम से	दूसरे की प्राणों की रक्षा से	देखें कि प्राणों को तामसी खान-पान ,सिगरेट, बीड़ी, शराब, गन्दी आबोहवा और व्यर्थ दूषित कार्यों में तो नहीं खोया !
३.	चक्षुः चक्षुः (नेत्र)	लज्जा, पवित्र और पक्षपात रहित दृष्टि से	मित्र और मातृ-दृष्टि से	देखें कि मेरी दृष्टि में कोई काम-वासना या द्वेष क्रोध लोभ या अश्लील चित्र तो नहीं आया !

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. **श्रोत्रं श्रोत्रम्** (कान)	सत्य ज्ञान, वेद-उपदेश, और भजन-कीर्त्तन सुनने से	दीन-दुःखियों की पुकार सुनकर उनके दुःख दूर करने से	मेरे कानों ने कोई बुरी बातें, पर निन्दा, चुगली लोकेषणा के शब्द और अश्लील गानें तो नहीं सुनें !
५. **नाभिः**	संयम और ब्रह्मचर्य के पालन से	उत्तम सुसन्तान पैदा करने से	मेरी नाभि से कोई दुराचार व्यभिचार के भाव और काम-वासना तो नहीं जागी !
६. **हृदयम्** (हृदय)	सन्तोष, धैर्य से	उदारता, नम्रता, दया-भाव और दान भावना से	मेरे हृदय में किसी के प्रति कृपणता, कठोरता, निर्दयता, क्रूरता, संकीर्णता, घृणा, द्वेष आदि की कोई दुर्भावना तो नहीं आयी !
७. **कण्ठः**	सत्य, शुद्ध, आध्यात्मिक उद्गार निकलने से	मधुर स्वर, काव्यमय उद्गार और भक्ति संगीत से	मेरे कण्ठ से कोई हिंसक, असत्य, कठोर, अप्रिय वचन तो नहीं निकले
८. **शिरः** (बुद्धि)	निश्चयात्मक बुद्धि और सुविचारों से	ज्ञान और विद्या के दान से	मेरे मस्तिष्क में कोई अधर्म, पाप, हिंसा, काम, क्रोध, लोभ विषय-विकार अन्याय के भाव अश्लील स्वाध्याय और चित्र तो नहीं आये !

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९. **बाहुभ्याम्** (भुजाएँ)	परिश्रम और व्यायाम से	दीन-दुःखियों की सेवा से	मेरी बाहों से कोई हिंसा या अधर्म कार्य वासनामय आलिंगन तो नहीं हुआ !
१०. **करतल कर पृष्ठे** (हाथ)	पवित्र कमाई और लेन-देन की सफाई से	दान और परोपकार से	मेरे हाथों से किसी के साथ चालाकी, जालसाज़ी, बेईमानी, मिलावट, उत्पीडन कम नापने-तोलने आदि का कोई काम तो नहीं हुआ !

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलहीन-प्रमादी व्यक्ति को परमात्म-साक्षात्कार नहीं हो सकता है।

जब तक मनुष्य यश नहीं कमाता, अमर नहीं हो सकता। महाराजा जनक ने एक बार महर्षि याज्ञवल्क्य जी से पूछाः—

"सब वस्तुओं को कौन खाता है ?"

ऋषि का उत्तर—"अग्नि।"

प्रश्न—"अग्नि को कौन खाता है ?"

उत्तर—"जल।"

प्रश्न—"जीवन को कौन खाता है ?"

उत्तर—"मृत्यु।"

प्रश्न—"मृत्यु को कौन खाता है ?"

उत्तर—"यश।"

यश से ही भगवान्-ऋषि-मुनियों का नाम अमर चला आ रहा है और आगे भी अमर रहेगा।

भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने गीता में दूसरे अध्याय के ३३, ३४ श्लोकों में कहा है कि—"हे अर्जुन ! अगर तू यह धर्मयुक्त युद्ध नहीं करेगा, तो बहुत काल तक तेरा अपयश और अकीर्त्ति अक्षय हो जायेगी। जो जीते हुए मृत्यु से भी अधिक बुरा होता है।"

स्पष्ट है कि अपयश से जीते हुए भी मृतक हैं और यश से मृत्यु के बावजूद अमर हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर की एक कहानी है, जिसमें दर्शाया है कि यश का शरीर सदा अमर रहता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्ध्या क्यों ? किसकी ? किससे ? किसको ? किस समय ? कितनी देर ? इसका आसन कैसा ? इत्यादि गुरु महाराज जी की पुस्तक 'सन्ध्या सोपान' में पढ़ें।

१३. **सन्ध्या अष्टाङ्ग योग है**। इसके मन्त्रों से योग के किन अङ्गों की सिद्धि होती है, इसे नीचे लिखा है। पं० वीरसेन वेदश्रमी जी ने अपनी 'सन्ध्या-योग रहस्य' पुस्तक के पृष्ठ ३८ पर 'सन्ध्या की क्रियाओं में योग' पर चित्र द्वारा आचमन-मन्त्र को यम लिखा है और प्राणायाम-मन्त्र को योग का आसन लिया है कैसे होते हैं, यह व्याख्या नहीं की।

१४.

संध्या के मन्त्र	संख्या	योग का अंग
आचमन-मन्त्र	१	आसन
इन्द्रिय-स्पर्श	१	यम
मार्जन	१	नियम
प्राणायाम	१	प्राणायाम
अघमर्षण	३	प्रत्याहार
मनसापरिक्रमा	६	धारणा
उपस्थान	४	ध्यान
गायत्री-मन्त्र	१	समाधि
नमस्कार	१	समर्पण
	योग = १९	

१५. मैंने आचमन-मन्त्र को योग के अङ्ग आसन में लिया है। क्योंकि आसन लगाकर ही उपासना आरम्भ होती है। इस मन्त्र के अनुसार उपासक प्रीतम-मिलन की कामना लिए प्राणिमात्र की असंख्य कामनाओं को पूर्ण करने वाले प्यारे प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि—"हे स्नेहनिधे ! दयालु पिता, आप ही हमारे वांछनीय, अभीष्ट और सर्वस्व हो, आपकी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपार करुणा से हम पर चारों ओर सुख-शान्ति एवं आनन्द की वर्षा होती रहे।" इसमें शीतल जल के तीन आचमन का प्रयोग शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शान्ति की प्रार्थना को संजीव करने का भाव है। यह मन्त्र जीवन लक्ष्य को पाने की प्रथम भूमिका है । इसके द्वारा यम के किसी अङ्ग की सिद्धि नहीं होती। यह इस मन्त्र के अर्थों से जान लें—

देवता-आपः—व्यापक प्रजापति परमात्मा, छन्द-गायत्री

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥

—(य० ३६-१२)

अर्थः—

शन्नो देवी=शान्तिदायक, दिव्य गुणों और शक्तियों से भरपूर, कल्याणकारी, सबके प्रकाशक

आपः=समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले सर्वव्यापक परमेश्वर

अभीष्टय=वाञ्छनीय अभीष्ट देव

नः=आप हमको

पीतयेभवन्तु=आनन्ददायक होंवें (और)

शंयो=कल्याणकारी सुख-शान्ति, आनन्द की

अभिस्रवन्तु=सब ओर से वृष्टि करें।

इस मन्त्र में जो शब्द नः (हम) आया है। इससे स्पष्ट है कि सन्ध्या सपरिवार मिल कर करनी जाहिए।

कविता में अर्थः—

सर्वव्यापक दिव्य गुणों से युक्त हे परमात्मा।
जल की नाईं शान्त कर दो, मेरी अन्तरात्मा॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख-शान्ति, आनन्द की वर्षा करो सब ओर से।
तीनों तापों को हरो सब ठोर से॥

आप हो अभीष्ट हमारे, वाञ्छनीय सर्वस्व हो।
भूल न पायें कभी, हर समय सम्मुख रहो॥

१६. सन्ध्या के इससे अगले मन्त्र (इन्द्रिय स्पर्श) को मैंने यम-साधक लिखा है, अब इसकी व्याख्या करता हूं। इस मन्त्र में दैवी गुण लाने की प्रार्थना का संकल्प अथवा व्रत है। मन इन्द्रियों का नियामक है। **प्राणः प्राणः** मंत्र के भाग से दिखाया गया है कि प्राणों को बल प्राणायाम से मिलता है। इससे मन एकाग्र, सम, सात्त्विक, अहिंसक, शिव-संकल्पी और देव हो जायेगा, तभी तो इन्द्रियों में शक्ति और यश का सम्पादन हो सकता है। अब देख लें कि इन्हीं इन्द्रियों से यम के विरोधी हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचारी और जमाखोरी होती है

(१) हिंसा होती है, मन, जिह्वा, पैर और हाथ से।

(२) झूठ बोला जाता है मन और वाणी से।

(३) चोरी होती है मन, आँख, हाथ और पैर से।

(४) ब्रह्मचर्य का पतन होता है, मन, और आँख में विकार आने से।

(५) अपरिग्रह भंग होता है, इन्द्रियों के संयमरहित होने और लोभ आदि से। स्पष्ट है कि इससे यम के अङ्गों की साधना निश्चित है।

ऐसे ही व्याख्या द्वारा सन्ध्या के दूसरे मन्त्रों की योगाङ्ग सिद्धि जैसे ऊपर लिखा है, दर्शायी जा सकती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७. महर्षि देव दयानन्द जी ने आर्य समाज का तीसरा मन्त्र रखा है:—

"वेद सब सत्विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना, और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

प्रत्यक्ष प्रमाण से जाना जाता है कि आर्य समाज के पुरोहित, उपदेशक, विद्वान् वेद पढ़ते और कई पढ़ाते हैं। किन्तु ये परम धर्म करते हुए भी धर्मात्मा नहीं होते; बल्कि कई अधर्मी देखे जाते हैं; जो मैं बता सकता हूं। इसलिए वादी यदि आक्षेप करता है कि केवल वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना परम धर्म नहीं कहा जा सकता तो हमारा उत्तर यह बनता है कि महर्षि का आशय यह था कि पढ़ना-पढ़ाना तभी कहा जा सकता है, जब उनके अर्थों को सार्थक करें, साकार करें, आचरण में लायें, पर यह सब नहीं जानते। इसलिए मेरा 'आर्य सार्वदेशिक सभा' से यह विनम्र अनुरोध है कि इस पर विचार करें। आवश्यकता अनुसार नियमों के शब्दों को बढ़ाया-घटाया जाता है। जैसे वेद का प्रत्येक मन्त्र अर्थों से पूर्ण है; ऐसे ही यह नियम वास्तविक निहित अर्थों को प्रकट करने वाला होना चाहिए।

१८. (मैं) लेखक शुरू से ही जब घर में दैनिक यज्ञ किया करता था तो विजय बेटा ने सामवेद के १०१ यज्ञ का संकल्प किया हुआ था; जिसकी पूर्णाहुति १३ अप्रैल, १७७९ को की थी।

वेद यज्ञ शुरू करने से पहले हम मिलकर पढ़ा करते थे—

"......सुनना-सुनाना के बाद **और तदनुसार आचरण करना परम धर्म है।**"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब मैंने अपने समाज में दैनिक नित्यकर्म के साथ सामवेद का यज्ञ ३०-४० आहुतियां नित्य देकर आरम्भ किया और विशेष उत्सवों और अन्य घरों में जब वेद यज्ञ प्रारम्भ करता हूं तो ऐसे ही पढ़ता हूँ। इस पर मेरे चन्द समाजी भाइयों ने चर्चा की कि मैं महर्षि से अधिक विद्वान् बनता हूं। मेरा उत्तर था—

"मैं तो अपने आचार्य की चरण-रज भी नहीं हूँ। आप सबसे ज्यादा अनपढ़, अविद्वान्, अल्पज्ञ हूँ। इसलिये पढ़े-सुने को आचरण में लाने का संकल्प-व्रत लेने के लिए ऐसा और कहता हूँ। आप लोग यह नियम बोलते हुए इसके अन्तर्निहित अर्थों को ध्यान में रखते हो।"

१६

(II) देवयज्ञ

देव का अर्थ है देवता, दाता, जो सदा निःस्वार्थ भाव से दें।

देव दो प्रकार के होते हैं—जड़ देवता (पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु आकाश, सूर्य, चन्द्र आदि) और चेतन (ब्रह्मज्ञानी, आप्त, विद्वान्)।

देवयज्ञ में अग्निहोत्र यज्ञ लक्षित हैं।

यज्ञ से अभिप्राय है:—

यज्ञोमय श्रेष्ठतम कर्मः

अर्थात् सर्वश्रेष्ठ कर्म यज्ञ कहलाता है।

यज्ञ शब्द यज् धातु से बना है, जिसका अर्थ है, **देवपूजा, संगतिकरण** और **दान**।

देवपूजा (चेतन देवपूजा पितृयज्ञ के अन्तर्गत आती है) का अर्थ है, पवित्र होकर श्रद्धा, प्रेम, नम्रता पूर्वक भक्तिमयी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावना से अपनी सर्वश्रेष्ठ हविः को देवदूत अग्नि द्वारा वेद मन्त्रों के स्तुति-वचनों से सत्कारपूर्वक प्राकृतिक देवों के प्रति नित्य समर्पण करना।

संगतिकरण का अर्थ है संगठन, प्रेम, स्नेह, मेल-मिलाप। देवयज्ञ में संगति है पुष्टिकारक, मिष्ठान्न, सुगन्धित और रोग-विनाशक औषधियों की। जिसे हवन-सामग्री कहते हैं। ये सब शूरता, धीरता, बल, आरोग्य, बुद्धि को देने वाले पदार्थ हैं।

दान का तात्पर्य है परमात्मा की हर दी हुई दात को उसी की समझ कर पक्षपात रहित हो देश-काल और पात्र का विचार कर नम्रतापूर्वक देना।

२०. देने में भावना **रहीम** की होनी चाहिए—
रहीम से किसी ने पूछा कि

रहीम कैसी है ये अजीब निराली तेरी दन।
ज्यों ज्यों कर ऊँचे उठें, त्यों-त्यों नीचे नैन॥

उत्तर था—

देने वाला और है, जो देवत दिन-रैन।
लोग मुझे दाता कहें, इस विधि नीचे नैन॥

यहाँ दान का अर्थ है **'इदन्न मम'** की भावना से श्रद्धापूर्वक अग्नि में उसे परमात्मा का मुख समझ कर अर्पित करना।

देश का अर्थ है उस जगह देना जहाँ दान की आवश्यकता है और शुभ कार्यों में लगना है।

काल का अर्थ है उपयुक्त समय पर देना। जैसे कहीं वर्षा नहीं हुई, अकाल पड़ गया, लोग और पशु-पक्षी भूखे-प्यासे मर रहे हैं, तत्काल वहाँ पर अन्न, जल, चारा आदि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचाना। ऐसे समय यदि नहीं दिया जाये तो प्राणी मर जायेंगे। फिर देने से क्या लाभ।

पात्र को इसलिए देखना चाहिए कि यदि किसी शराबी, जुआबाज़, व्यभिचारी, दुराचारी को दिया गया तो उसके दुरुपयोग से दानी भी उल्टा अपराधी हो जाएगा। वह कुदान और अहित साधक है। कोई ब्राह्मण गोदान लेकर कसाई को भी बेच सकता है। दान देते समय यह देख लेना चाहिए।

२१ नं० पैरा **यज्ञों के प्रकार** पृष्ठ २४४ पर

२२. आध्यात्मिक यज्ञ

सन्ध्या में चौथा मन्त्र प्राणायाम का है जो परमात्मा के नाम हैं। जैसे यहाँ नगरों के नाम माननीय व्यक्तियों के नाम से होते हैं, ऐसे ही परमात्मा के इन नामों से लोक भी प्रसिद्ध हैं। वे मन्त्र अर्थ सहित इस प्रकार है—

मन्त्रः		अर्थ
(i) ओ३म् भूः	=	प्राणस्वरूप परमात्मा।
(ii) ओ३म् भुवः	=	दुःख विनाशक परमात्मा।
(iii) ओ३म् स्वः	=	सुख-स्वरूप परमात्मा।
(iv) ओ३म् महः	=	परं पूज्य महान् परमात्मा।
(v) ओ३म् जनः	=	जगत्-उत्पादक परमात्मा।
(vi) ओ३म् तपः	=	दुष्टों को दण्ड देकर सन्तप्त करने वाला परमात्मा।
(vii) ओ३म् सत्यम्	=	सत्य स्वरूप परमात्मा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२१. **यज्ञों के प्रकार**

(१) आध्यात्मिक यज्ञ	श्रद्धा-अग्नि में	सत्य की आहुति	अन्तः करण शुद्धि निमित्त
(२) आदिदैविक यज्ञ	भौतिक-अग्नि में	घी-सामग्री की आहुति	प्राकृतिक देवों के ,,
(३) आदि भौतिक यज्ञ	सेवा-अग्नि में	द्रव्य की आहुति	अभाव ग्रस्त प्राणी ,,
(४) मानसिक यज्ञ	निरुद्ध अग्नि में	जप की आहुति (ओ३म् या गायत्री-जप)	आत्म-साक्षात् ,,
(५) आत्मिक यज्ञ	आत्म-अग्नि में	सत्-रज-तम की आहुति	परमात्म साक्षात् ,,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२३. **उपासकों का यज्ञ-विवरण**

क्र.स.	उपासक श्रेणी	यज्ञ-अग्नि	आहुति	मन्त्र-शब्द प्रवेश	प्रतीक लोक में व्याप्ति	
१.	साधक	प्राण-अग्नि में	अपान की आहुति देते हैं अर्थात्—दोषों-बुराइयों आदि की	भू: में प्रवेश	पृथ्वी लोक	,,
२.	संयमी	संयम-अग्नि में	विषयों की आहुति देते हैं अर्थात्-काम-क्रोध आदि की	भुव: में ,,	अन्तरिक्ष लोक	,,
३.	ज्ञानी	ज्ञान-अग्नि में	क्लेशों की आहुति देते हैं अर्थात्-अविद्या, असमता आदि की	स्व: में ,,	द्यौ लोक	,,
४.	ध्यानी	ध्यान-अग्नि में	विकारों की आहुति देते हैं अर्थात्-राग-द्वेष आदि की	मह: में ,,	यक्ष लोक	,,
५.	योगी	योग-अग्नि में	चित्त वृत्तियों की आहुति देते हैं	जन: में ,,	गन्धर्व लोक	,,
६.	तपस्वी	तप-अग्नि में	द्वन्द्वों की आहुति देते हैं अर्थात् मान-अपमान आदि की	तप: में ,,	इन्द्रलोक	,,
७.	ब्रह्मवेत्ता	ब्रह्म अग्नि में	वासनाओं-संस्कारों की आहुति ,,	सत्यम् में ,,	ब्रह्म लोक	,,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवयज्ञ का फल

२४. मनु जी महाराज ने लिखा है—

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दैवे चैवेह कर्मणि ।
दैवकर्मणि युक्तो हि बिभर्तीदं चराचरम् ।।

(मनु० ३-७५)

अर्थः

मनुष्यों को चाहिए कि वह नित्य स्वाध्याय और देव-कर्म (अग्निहोत्र) अवश्य करें। क्योंकि इस संसार में रहते हुए अग्निहोत्र करने वाला व्यक्ति समस्त चेतन और जड़-जगत् का पालन-पोषण एवं भला करता है।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।।

अर्थः— (मनु० ३-७६)

अग्नि में अच्छी प्रकार डाली हुई घृत आदि पदार्थों की आहुति सूर्य को प्राप्त होती है और उससे वृष्टि होती है, जिससे अन्न पैदा होता है। फिर उससे प्रजाओं का पालन-पोषण होता है।

२५. भगवान् कृष्ण चन्द्र जी द्वारा यज्ञ की महिमा—

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थित चेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ।।

(गी० ४-२३)

अर्थः—

यज्ञ-आचरण करते जो, आसक्ति रहित, ज्ञान सहित ।
मुक्ति दायक कर्म वे होते, सभी बन्धन रहित ।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२६. पूजनीय गुरुवर महात्मा प्रभु आश्रित जी ने अपनी 'यज्ञ रहस्य' पुस्तक में इस विज्ञान पर अद्वितीय प्रकाश डाला है। इसमें लिखा है कि 'यज्ञों से जो वर्षा होती है, उसमें दिव्य गुण होते हैं। जो अन्न द्वारा उसके खाने वालों में भी आ जाते हैं।

इसके प्रमाण में उन्होंने यजुर्वेद १-१९ एवं १-२० उद्‌धृत किये हैं। उसमें उन्होंने यह भी लिखा है कि 'यज्ञ से सब बीमारियों का इलाज, तपेदिक जैसे रोगों की भी निवृत्ति हो जाती है। उन्होंने संकल्प शक्ति Auto Suggestion से भी बीमारी का निदान बताया है। इस पुस्तक को और स्वामी दीक्षानन्द जी महाराज की 'अग्निहोत्र सर्वस्व' को अवश्य पढ़ें। इनमें यज्ञ सम्बन्धी अद्‌भुत विज्ञान भरा पड़ा है।

२७. पूज्य स्वामी जी महाराज ने शतपथ ब्राह्मण में आये यज्ञ-सम्बन्धी महाराजा जनक-महाऋषि याज्ञवल्क्य संवाद का बड़े सुन्दर रोचक ढंग से वर्णन किया है। जो संक्षिप्त में इस प्रकार है—

(i) प्रश्नः—"अग्निहोत्र और उसकी हविः क्या है ?

उत्तरः—'**पयएवेति**' दूध ही की आहुति अग्निहोत्र है। अर्थात् जिस वस्तु में दूध हो या दूध से बने अन्य पदार्थ घी आदि से।

(ii) प्रश्नः—महाराज ! दूध-घी न हो तो फिर किसकी आहुति दें।

उत्तरः—चावल और जौ से।

(iii) प्रश्नः—ये भी न हों तो ?

उत्तरः—किन्हीं अन्य औषधियों से।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(iv) प्रश्नः—इनके अभाव में ?

उत्तरः—जंगल की वनस्पति समिधा आदि से

राजा जनक की जिज्ञासा फिर भी शान्त नहीं हुई तो **पुनर्प्रश्न** कियाः-कदाचित् ये भी उपलब्ध न हों ?

तो उत्तर मिलाः-जल से। अर्थात् मन्त्र पढ़कर जल से जल में आहुति देना।

प्रसंग को आगे बढ़ाकर पुनः पूछाः—

जल के भी न होने पर ?

उत्तरः--**श्रद्धा अग्निः सत्यमाज्यम्**। श्रद्धा की अग्नि में सत्य की आहुति दे दें।

जहां पर भी श्रद्धा में सत्य की आहुति पड़ रही हो, अग्निहोत्र हो रहा होता है। यह इस संवाद का सार है।

ऊपर लिखे हविः दूध इस प्रकार हैं—

गाय-पशु का तरल दूध।

पृथ्वी-गौ की औषधियां, वनस्पतियाँ आदि

शुष्क दूध।

अन्तरिक्ष-द्यौ रूपी धेनु का जल-दूध।

वाणी-गौ का सत्य रूपी दूध।

ये सब मूल्यवान् आहुतियाँ हैं।

दूध की हविः कैसे दें ? इसका उत्तर—सामग्री में डाल कर। अधिकतर याजक सामग्री में घी नहीं मिलाते, पर सब को इसमें दूध ही मिलाना चाहिए। यदि गाय का हो, तो सर्वश्रेष्ठ है।

२८. एक और समय महाराजा जनक ने याज्ञवल्क्य ऋषि से पूछा—'भगवन् ! बताइए यज्ञ की आत्मा क्या है, प्राण क्या है। और सार क्या है ?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर मिला—"यज्ञ की आत्मा **स्वाहा** है।"
"यज्ञ के प्राण **इदन्नमम** है"
"यज्ञ का सार **सुगन्धि** है।

यज्ञ न करने का फल

२६. **जो देवयज्ञ** नहीं करते, उनकी क्या गति होती है? वह इस मन्त्र से लें—

देवता-बृहस्पति—

ये त्वा देवोस्त्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः ।
न दूढ्ये अनु ददासि वामं बृहस्पते चयस इत्पियारुम् ॥
—(ऋ० १६०-५)

अर्थः—

देव =हे संसार के देवो !
उस्त्रिकं मन्यमानां =जो आपको गाय के समान देने वाले समझते हुए
वामं= सृष्ट भोगों और ऐश्वर्यों को
पज्राः= प्राप्त हुए जन
भद्रमुपजीवन्ति =(आप) भद्र, सुखदाता, कल्याणकारी पर जीवित रहते हैं।
पियारुम् =(और) पाने की इच्छा करने वाले
न अनु ददासि =परस्पर के दान का (बदले में) कुछ भाग नहीं देते।
पापाः =वह पापी, अधर्मी
दूढ्ये =दुष्ट, दुर्बुद्धि पुरुष (इतना भी नहीं विचारते कि)
बृहस्पते =बृहत् जगत् के पालक परमेश्वर (के अटल नियम से)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत् चयसे =निश्चय ही विनष्ट हो जाते हैं।

३०. वेद का आदि अग्नि ऋषि देवों को सम्बोधन की विचित्र शैली से हमें चेतावनी दे रहे हैं कि प्राकृतिक **देवों से** अन्नादि भोगों को प्राप्त कर जो बदले में अग्निहोत्र (**देवयज्ञ**) नहीं करते, ऐसे पापी और दुर्बुद्धि इतना नहीं जानते कि भोग और यज्ञ का सम्बन्ध अविच्छिन्न है। परस्पर एक-दूसरे पर आधारित है, अगर नहीं करते तो भोग-प्राप्ति की जड़ ही कट जाएगी और उनका नाश हो जाएगा।

जैसे गायों से भी बिना चारा दिए दूध नहीं ले सकते। यह सिद्धान्त सब जगह लागू होता है। यदि किसान सारा अन्न पृथ्वी से लेकर घर में रख ले और फिर उसे पृथ्वी में न बोये तो आगे भूखा मर जाएगा। सारे लौकिक सम्बन्ध भी आदान-प्रदान से चलते हैं।

कविता में अर्थः—

जो कल्याणकारी देवों के भोगों का नित्य सेवन करते हैं।
पर बदले में अग्निहोत्र यज्ञ नहीं वे करते हैं॥
वे पापी, दुष्ट, दुर्बुद्धि इतना नहीं विचारते हैं।
कि बिना खिलाए गायों से भी दूध नहीं ले सकते हैं॥
ऐसे ही बिना यज्ञ के भोग नहीं मिल सकते हैं।
बृहस्पति के अटल नियम से अयज्ञी नष्ट हो जाते हैं॥

३१. गीता में तो भगवान् कृष्ण चन्द्र जी महाराज ने यज्ञ न करने वालों को **चोर, पापी और अन्न खाने का अनधिकारी** कहा है। इस पर भी करोड़ों व्यक्ति जो इन्हें परमात्मा मानते हैं, इनमें से कोई विरले ही ऐसे भाग्यशाली हैं जो उनकी आज्ञा का पालन करते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता के अध्याय तीन, ९ से १६ श्लोकों में भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन से देव यज्ञ-सम्बन्ध में कहते हैं।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर॥
(गी० ३-९)

यज्ञ के अतिरिक्त सारे कर्मबन्धन कार हैं।
इसलिए आसक्ति रहित कर्म ही यज्ञार्थ हैं॥

सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक्॥
(गी० ३-१०)

प्रजापति ने यज्ञ से प्रजा को रच कर यह कहा।
याजक करते पूरे मनोरथ, हर वृद्धि को पाते हैं॥

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥
(गी० ३-११)

देवों को प्रसन्न करो यज्ञ से वह आपको उन्नत करें।
तो परस्पर के दान से कल्याण हो पाते रहें॥

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तान प्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः॥
(गी० ३-१२)

यज्ञ से तृप्त देव! इष्ट भोग देवें सदा।
बे दिए उनके जो खाये, निश्चय ही वह चोर है॥

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥
(गी० ३-१३)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ शेष सेवी सज्जन, सभी पापों से छूटें।
अपने हेतु जो पकाते, पाप-भक्षण वे करें॥

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः॥
(गी० ३-१४)

सम्पूर्ण प्राणी जोते अन्न से, उत्पत्ति जिसकी वृष्टि से।
वर्षा होती यज्ञों से, जो अग्निहोत्र कर्म है॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥
(गी० ३-१५)

इसका वर्णन वेद में, जिसका रचयिता सर्वव्यापी ईश्वर।
रहता सदा जो विद्यमान, इन सभी अनुष्ठानों में॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतोह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥
(गी० ३-१६)

हे पार्थ! इस सृष्टिचक्र के, अनुसार नहीं जो चलते हैं।
इन्द्रियों के दास वे, व्यर्थ में ही जीते हैं॥

३२. महर्षि देव दयानन्द जी से प्रश्न किया गया—"क्या इस होम करने के बिना पाप होता है?"

महर्षि दयानन्द जी ने उत्तर दिया—"हाँ! क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न हो के वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त करता है, उतना ही पाप उस मनुष्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को होता है। इसलिए उस पाप के निवारण-अर्थ उतना सुगन्ध व उससे अधिक वायु और जल में फैलाने चाहिए।" फिर आगे लिखते हैं—

"इसलिए आर्यवर शिरोमणि महाशय ऋषि, महर्षि, राजे, महाराजे लोग बहुत-सा होम करते और कराते थे। जब तक इस होम करने का प्रचार रहा, तब तक आर्यावर्त्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था। अब भी प्रचार हो तो वैसा हो जाए।"

३३. भगवान् कृष्ण चन्द्र जी महाराज अब और फरमाते हैं कि जो यज्ञ नहीं करता वह दोनों लोकों से गया-गुज़रा है।

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम॥

(गी० ४-३१)

अर्थः—

यज्ञ करके अमृत खाते जो सदा।
होते प्राप्त ब्रह्म को वे बर मला॥

हे अर्जुन! कर्म जो करते नहीं ऐसे।
नहीं है लोक यह उनका, तो परलोक फिर कैसे?

अहन्यहनि ये त्वेतानकृत्वा भुञ्जते स्वयम्।
केवलं मलमश्नन्ति ते नरा न च संशयः॥

(महा० १०४-१६)

अर्थ —

प्रतिदिन जो इन यज्ञों को किए बिना खाते-पीते हैं वे नर केवल मल खाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(iii) पितृयज्ञ

३४. अपने माता-पिता, बुजुर्गों और गुरुजनों की सेवा-सत्कार, तर्पण करना पितृ महायज्ञ कहलाता है।

माता-पिता बहुत कष्ट उठाकर कर्त्तव्य समझ, बड़े प्रेम और स्नेह से सन्तान का पालन-पोषण, पढ़ाना-लिखाना, इत्यादि योग्यता प्रदान करते हैं और अपना सब कुछ न्यौछावर कर देते हैं। उनका यह महान् ऋण तन, मन, धन से हर प्रकार की सेवा करने पर भी पूरा नहीं उतर सकता।

३५. महाभारत के बन पर्व में यक्ष-युधिष्ठिर संवाद आया है। जब सरोवर पर अन्य चारों भाई मूर्च्छित पड़े थे तो युधिष्ठिर वहाँ पहुँच कर बहुत दुःखी हुआ। परन्तु प्यास लगी थी, पानी पीने लगा। आवाज़ आई-"पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दो, वरना आपकी भी यही अवस्था होगी।" युधिष्ठिर बड़ा धैर्यवान् और विनम्र था सत्कार पूर्वक प्रार्थना की "भगवन् ! क्या आज्ञा है ?"

उन्होंने बहुत सारे प्रश्न पूछे। जिनमें से इस विषय के लिखता हूँ।

"पृथ्वी से भारी दर्जा किसका ?"

"माता का"।

"आकाश से ऊँचा किसका ?"

"पिता का"।

यक्ष ने प्रसन्न हो कर कहा—"आपने सब प्रश्नों का बहुत सही उत्तर दिया, अब जिस एक भाई को कहें, मैं ज़िन्दा कर दूं।"

युधिष्ठिर ने कहाः—"नकुल को कर दीजिए।"

यक्ष ने पूछाः—"आपने अर्जुन और भीम महायोद्धा०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का जीवन क्यों नहीं माँगा।"

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—नकुल और सहदेव मेरी दूसरी माता माद्रो के पुत्र हैं, इनमें से किसी एक को ज़िन्दा कर दें। ताकि उस माता की गोद सूनी न हो और उसकी प्रशंसा पा, पितृऋण से उऋ्ण हो आशीर्वाद का भागी बनूं।"

यक्ष ने कहा—"युधिष्ठिर तुम बहुत सच्चे धर्मात्मा हो, मैं आपके चारों भाइयों को ज़िन्दा करता हूं।"

यह पितृ यज्ञ की निःस्वार्थ भावना का प्रतिफल था।

माता-पिता का आशीर्वाद लिफ्ट का काम देती है। जो माता-पिता की अवहेलना और तिरस्कार करते हैं, वे आगामी जन्म में बचपन में ही अनाथ हो जायेंगे। यह उसका कर्म फल होता है। पितृ-यज्ञ का फल महर्षि मनु के शब्दों में—

३६· **अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।**

चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

(मनु० २-२१)

अर्थ:—

जो मनुष्य नित्य नम्र स्वभाव से अभिवादनशील रहता है और वृद्ध (गुण, ज्ञान, अनुभव, विद्या और आयु से बड़े हों) जनों की सेवा करता है। उसकी आयु, विद्या, यश (कीर्ति) और बल ये चार चीज़ें बढ़ती हैं।

३७. पितृयज्ञ का विधान है, तर्पण और श्राद्ध जो मनु महाराज जी के शब्दों में इस प्रकार है—

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा।

पयोमूल फलैर्वाऽपि पितृभ्यः प्रीतिमावहन्॥

(मनु० ३-८२)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् माता-पिता, वयोवृद्धों से अत्यन्त प्रेम करते हुए प्रतिदिन अन्न, जल, दूध, कन्द, फल, भोजन से उनकी सेवा करना श्राद्ध है।

इस श्लोक से स्पष्ट है कि श्राद्ध जीवित माता-पिता की श्रद्धा-पूर्वक सेवा-सत्कार करना है; मृतकों का नहीं। क्योंकि जब जीवात्मा शरीर से निकल जाती है तो दूसरी जगह जन्म लेती है या करोड़ों में एक मुक्त हो जाती है।

तर्पण का अर्थ होता है पितरों को तृप्त करना। सब प्रकार से सन्तुष्ट करना, रजा देना, उनकी सभी आवश्यकतायें पूरी करना, हर तरह से आराम पहुँचाना, उनके स्वास्थ्य का ख्याल रखना और उनकी यथार्थ आज्ञाओं का प्रीतिपूर्वक पालन करना।

(iv) अतिथियज्ञ

३८. अतिथि वह होता है, जिसकी आने की तिथि निश्चित न होती हो और जो संन्यासी, महात्मा, धर्मात्मा, आप्त, परोपकारी, विद्वान्, अनुभवी, ज्ञानी, ध्यानी, योगी, भक्त, सज्जन पुरुष हो और संसार का कल्याण करता हुआ नगर, ग्राम या अपने घर पर अकस्मात् आ जाये।

ऐसे अतिथियों को अन्न, जल, वस्त्र, आसन, शय्या आध्यात्मिक पुस्तकें अथवा आवश्यकता की और वस्तुएं सम्मान पूर्वक देना, सेवा-सत्कार करना अतिथि-यज्ञ कहलाता है।

अतिथि-सत्कार की प्रथा प्राचीन काल में बहुत थी। आर्य लोग किसी अतिथि को खिलाकर ही खाया करते थे। आजकल ऐसे पात्र नहीं मिलते। पर हम जैसे भक्ति-साधन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रम. धर्म-संघ, योग-निकेतन, संन्यास आश्रम, तपोवन आश्रम, गुरुकुल इत्यादि में मासिक दान देकर इस ऋण से उऋ॑ण हो सकते हैं।

अतिथि जो धर्म प्रचार करते हैं, उसके पुण्य का कुछ भाग अतिथि-याजकों को भी मिलता है।

अतिथि-गुरुजन जीवन की कायाकल्प कर देते हैं, बुराइयां छुड़ाते हैं, सत्य-ज्ञान देते हैं, धर्म-मार्ग पर चलाते हैं और ब्रह्म से मेल कराते हैं। मैं स्वयं अत्यन्त कृतार्थ हुआ हूं और इसके सैकड़ों और उदाहरण दिए जा सकते हैं।

(v) बलिवैश्वदेवयज्ञ (भूतयज्ञ)

३६. वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम्।
आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम्॥

—(मनु० ३-८४)

अर्थात् पाकशाला की अग्नि में विधिपूर्वक तैयार हुए भोजन का भाग बलिवैश्वदेव यज्ञ के निमित्त प्रतिदिन देवताओं के लिये आहूत करें।

देव दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश के चौथे समुल्लास में लिखा है:—

"जब भोजन सिद्ध हो, तब जो कुछ भोजनार्थ बने, उसमें खट्टा, नमकीन और क्षार को छोड़ के घृत, मिष्ठयुक्त अन्न लेकर अग्नि में निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति दें:—

ओ३म् अग्नये स्वाहा। ओ३म् सोमाय स्वाहा। ओ३म् अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा। ओ३म् विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। ओ३म् धन्वन्तरये स्वाहा। ओ३म्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुह्वै स्वाहा। ओ३म् अनुमत्यै स्वाहा। ओ३म् प्रजापतये स्वाहा। ओ३म् सह द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा। ओ३म् स्विष्टकृते स्वाहा।।

कुत्ते, बिल्ली, चिड़िया, कौआ, कबूतर इनको रोटी, जल, बाजरा, दाना डालना, कीड़े-मकोड़ों को तिल-शक्कर डालना, दरियाओं की मछलियों को आटे की गोलियां डालना, गाय-भैंसों के लिए चारा, बड़े नमक के डले रखना। घोड़े आदि पशुओं के लिए पानी के हौज़ भरे हुए रखना।

प्राणिमात्र की सेवा से ही सेवाधर्म का पालन होता है। जो सबसे महान है।

परमात्मा सबका पालक और रक्षक है। ये सब जीव-जन्तु परमात्मा की सन्तान हैं। परमात्मा के समान गुण, कर्म, स्वभाव धारण करने, उसका प्यारा बनने, उसके सख्यत्व को प्राप्त करने के लिए उसकी प्रजा का यथा सामर्थ्य पालन करना हमारा कर्त्तव्य धर्म है। अतः बलिवैश्वदेव यज्ञ अनिवार्य है।

४०. मनु जी महाराज इन पञ्चयज्ञों के न करने वालों को चेतावनी दे रहे हैं—

देवताऽतिथिभृत्यानां पितृणामात्मनश्च यः।
न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न स जीवति।।

—(मनु० ३-७२)

जो देवयज्ञ, अतिथियज्ञ, भूत यज्ञ, पितृ यज्ञ अपने लिए (ब्रह्मयज्ञ) और उनके भागों को नहीं देता है। अर्थात्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन पञ्च महायज्ञों को दैनिक नहीं करता। वह साँस लेता हुआ भी नहीं जीता। अर्थात् मरे हुए व्यक्ति के समान है।

४१. आजकल लोग बहुधा कहते हैं कि यदि हम अच्छे कर्म करते हैं तो फिर सन्ध्या, यज्ञ आदि करने की क्या आवश्यकता है और देवयज्ञ में हम घी सामग्री वैसे ही अग्नि में डाल दें तो वेदमन्त्रों को पढ़ने की क्या ज़रूरत है? ऐसे तर्कों का जवाब है—

(i) मोक्ष के लिए अनिवार्य है, कोई अज्ञान, अविद्या, अवर्ण न रहे।

(ii) प्रकृति, आत्मा एवं परमात्मा का पूरा ज्ञान हो और कुछ जानना बाकी न रहे।

(iii) परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुरूप आचरण बने, जिससे हमें परमात्मा स्वीकार करे।

(iv) इतना विवेक हो जाए कि कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप, ग्राह्य-त्याज्य का भेद प्रत्यक्ष दिखायी दे, कोई भ्रम, भ्रान्ति और उलझन न रहे। इसी विवेक-ख्याति से विरक्ति एवं वैराग्य उत्पन्न होता है। विषय-विकार हटते हैं। योग-अभ्यास द्वारा वृत्ति-निरोध करके धारणा--ध्यान-समाधि को सिद्ध कर, परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

सिवाय स्वाध्याय और सन्ध्या के इतना होना असम्भव है, इसलिए यह ब्रह्मयज्ञ अनिवार्य है।

४२. देवयज्ञ उनके लिए ज़रूरी नहीं, जो अन्न न खाते हों और मल-मूत्र का त्याग न करते हों; क्योंकि तब वे वातावरण दूषित नहीं करते। वरना परमात्मा का नियम है कि जो कोई खराबी या बिगाड़ करता है तो उसका सुधार करना अत्यावश्यक है। पृथ्वी, जल इत्यादि देवता हमें अन्न,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल देते हैं और हम मल-मूत्र के त्याग से अशुद्धि लाते हैं, उनका प्रतिकार किए बिना कोई मुक्त नहीं हो सकता । यह हमारे ऊपर देवऋण है और इसको उतारने के लिए सिवाय अग्निहोत्रयज्ञ के अन्य कोई भी साधन नहीं है। कोई भी वैज्ञानिक आज तक इसका कोई विकल्प नहीं निकाल सका ।

सर्वसम्मत है कि बिना सम्मान से दी हुई वस्तु कोई ज्ञानी पुरुष स्वीकार नहीं करता । ऐसे ही देवों को वेद के स्तुति-मन्त्रों से बैठकर विधिपूर्वक आहुति देने से ही देवयज्ञ होता है । साथ ही इससे वेद-ज्ञान की रक्षा, अन्तःकरण की शुद्धि, निरोगिता, समय पर वर्षा, भूमि-उपजाऊ आदि कई लाभ होते हैं । इसी एक कर्म से श्रेष्ठ जाति, आयु और भोग बनते हैं । जाति से अभिप्राय है; श्रेष्ठ मानवयोनि प्राप्त होती है । पूर्व वर्णित गीता के श्लोक ४-२३ में स्पष्ट है । इनसे कर्मबन्धन नहीं होते और ये मुक्ति के साधन हैं और बिना इन ऋणों से उऋण हुए कोई भी कभी मुक्त नहीं हो सकता । इसलिए सब सुखों की वृद्धि के लिए और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि के लिए इन यज्ञों के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं ।

४३. मैं स्वयं प्रभु की अपार कृपा से यह दैनिक नित्यकर्म करता हूँ; इसलिए मुझे नम्रता पूर्वक यह प्रार्थना करने का अधिकार है—

यह पञ्चयज्ञ महिमा पढ़कर न भूल जायें ।
हर रोज इनको करके जीवन सफल बनायें ।।

'यज्ञोवै विष्णु' की मैत्री को पायें ।
और जन्म-मरण का चक्र मिटायें ।।

।। ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!! ओ३म् ।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

११. साधकों के गुण-कर्म-स्वभाव

१. गीता में मुख्यतः तीन प्रकार के योग हैं—ज्ञानयोग, कर्मयोग; भक्तियोग। क्योंकि तीन साधनों से ही परमात्मा के दर्शन होते हैं; ज्ञान, कर्म और उपासना से। ऋ०, यजु०, और साम वेद इन्हीं तीन विद्याओं को दर्शाते हैं। इसीलिए साधक भी तीन प्रकार के होते हैं; ज्ञानी, कर्मकाण्डी और उपासक। इनमें देवताओं के गुण होने चाहिए।

२. (I) **ज्ञानी साधक**—

इनका देवता अग्नि है, अर्थात् ज्ञानी में अग्नि के गुण, कर्म, स्वभाव होते हैं। जैसे लोहा अग्नि में डालने से पहले इसका ज़ंग दूर होता है, फिर कालिमा जाती है, तब अग्नि का रंग, रूप, गुण धारण कर अग्निमय प्रज्वलित हो जाता है। ऐसे ही ज्ञानी भी ज्ञान से प्रकाशित हो जाते हैं। कूड़ा-करकट खत्म करना हो तो उसे आग के हवाले कर देते हैं। धातुओं का खोट दूर करना हो तो अग्नि में तपाते हैं। इसी प्रकार वेद-ज्ञान की अग्नि से मस्तक पर जो अज्ञान-अविद्या का अवर्ण (पर्दा) होता है; वह दूर हो जाता है। मनु के अनुसार बुद्धि ज्ञान से पवित्र होती है अर्थात् चमकती है। अपने एवं औरों के जीवनों को चमकाती है। ऊँचा ले जाकर उन्नति के शिखर तक पहुँचा देती है। अविद्या ही बन्धन का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण है। ज्ञान से प्रकाश की ग्रंथियाँ खुल जाती हैं। ज्ञान होता है, वेद, वेदान्त और योगादि दर्शनों को पढ़ने से।

३. (II) **कर्मकाण्डी साधक—**

इनका देवता वायु होता है, जिनके गुण हैं, निराकार, निर्विश्राम, निर्विकार। साधक इन तीन गुणों को लेकर वैदिक शास्त्रों के स्वाध्याय से प्राप्त ज्ञान के अनुसार आचरण करके परोपकार और निःस्वार्थ भाव से आसक्तिरहित यज्ञ कार्य प्रभु के निमित्त करता है; जो बन्धनरहित होते हैं। जैसा कि वेद और गीता के प्रमाण से पृष्ठ १२४ एवं १६६ पर दर्शाया है।

४. (III) **उपासक (भक्त) साधक—**

गीता में श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज ने प्रभु की ओर से कहा है—"हे अर्जुन ! चार प्रकार के भक्तजन मुझे भजते हैः—

अर्थार्थी (सांसारिक पदार्थ पाने के लोभी)
आर्त्त (संकट-निवारण चाहने वाले दुःखी, रोगी)
जिज्ञासु (प्रभु को जानने की इच्छा वाले)
ज्ञानी (निष्कामी, प्रभु दर्शन पाने की धुन वाले)
—(गी० ६-१६)

इनमें से तत्त्वज्ञानी भक्त मुझे अत्यन्त सर्वप्रिय हैं।"
—(गी० ६-१७)

५. ज्ञानी भक्त का देवता जल होता है। इसलिए भक्त में पानी के सभी गुण होते हैं और उसकी साधना का आदर्श जल होता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	भक्त के गुण		जल से उपमा
(I)	नम्रता		जैसे जल नीचे की ओर बहता है।
(II)	निर्वैरता अथवा तटस्थ	:	जैसे बहता जल मार्ग में कोई पहाड़ी या रुकावट आ जाये तो हटकर निकल जाता है, उससे टक्कर नहीं लेता।
(III)	निर्दोषता (दोषों को दूर करके बढ़ना)	:	जैसे जल आगे गड्ढा आ जाए तो उसे भर कर आगे बहता है।
(IV)	शुद्ध अन्तःकरण करना	:	जैसे जल से वर्त्तन, शरीर, कपड़े आदि का मैल दूर होता है।
(V)	शान्त रहना और सात्विक वृत्तियों को जगाना	:	जैसे जल का स्वभाव सात्विक और शीतल है, क्रोध करने वाले को जल पिलाया जाता है।
(VI)	औरों की औषधि बनना (भक्त गुरुजन गायत्री-जप द्वारा मनोदृष्टि से जल को औषधि बनाकर साधारण रोग दूर कर देते हैं।)	:	जैसे प्राकृतिक-चिकित्सा में जल से अनेक रोग और घाव ठीक किए जाते हैं।
(VII)	किसी दुःख-संकट से संतप्त होकर भी भक्त उसका विचार हटाकर शान्त रहते हैं।	:	जैसे जल अग्नि के संग होने पर उष्ण तो हो जाता है; पर अलग होने पर अपने आप ठण्डा हो जाता है।
(VIII)	भक्त अपने प्रेम जल से सबको ढाँढस देकर	:	जैसे जल सबकी प्यास बुझाता और तृप्त करता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	प्रसन्न और तृप्त करता है ।	
(ix)	भक्त अनेकों के जीवन-सुधार का आधार बनता है ।	जैसे जल जीवनाधार है, इसी से शरीर स्थित हैं ।
(x)	भक्ति से ही प्रभु का सत्कार होता है, अन्य और किसी वस्तु से नहीं ।	जैसे जल स्वागत का मुख्य साधन है, अतिथि-सत्कार इसी से होता है ।
(xi)	भक्त का हृदय अत्यन्त कोमल, द्रवित होता है । हर प्यारा दृश्य या रूप उसके मन को प्रेमातुर, चित्त को आनन्दित और नयनों को सजल कर देता है ।	जैसे जल का स्पर्श कोमल, वेग से बहते पहाड़ी झरनों का दृश्य मन को लुभाता है और हृदयों में कविता के उद्गार भरता है, गर्मियों में इसके तट पर बैठ कर मन आह्लादित होता है ।
(xii)	साधक दुःखों से व्यथित और पीड़ित चित्त को भक्ति से सान्त्वना देता है ।	जैसे प्यास से अति व्याकुल हुए को जल ही मृत्यु से बचाता है और जीवनदान देता है ।
(xiii)	नचिकेता की तरह भक्त प्रभु-मिलन के बदले दुनिया भर के प्रलोभन ठुकरा देता है ।	जैसे पानी का अतिशय प्यासा सम्पूर्ण विश्व के समस्त ऐश्वर्यों को त्याग कर बदले में केवल जंल की ही कामना करता है ।

६. अब भक्तों के विशेषण दिए जाते हैं—

सन्तनी रबिया जी का पहले परिचय दे चुका हूँ । एक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन वे अपने मुरीदों (भक्तों) को कुरान शरीफ़ से उपदेश दे रही थी। एक आयत (श्लोक) पढ़ी, जिसका अर्थ था—"तुम्हें अल्ला के भक्तों से प्रेम और शैतान से नफ़रत करनी चाहिए।" उसके हाथ में पेंसिल थी। जिस शब्द का अर्थ नफ़रत था उस पर लकीर फेर दी। श्रोतागण कहने लगे कि "हज़ूर आपने अल्लाताला की किताब की बेहूरमती (अपमान) कर दिया है।" इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि "यह मैंने अपनी ही पुस्तक में अपने ही लिए किया है; क्योंकि मेरे अन्दर नफ़रत है ही नहीं, शैतान के लिए कहाँ से लाऊँगी।" हमारे यहाँ वेद और योग-दर्शन में शैतान से उपेक्षा करने का उपदेश है, नफ़रत करने का नहीं। —(यो० द० १-३३)

७. बहुधा भक्त गुरुजनों के साथ हमेशा रहा करते हैं और उनके साथ चलते हैं। एक बार रबिया जी प्रातःकाल भ्रमण करते हुए किसी सनातन धर्म मन्दिर के सामने से गुज़र रही थीं, जिसकी रंगीन दीवार पर एक विचित्र चित्र-कार की कमाल की कलाकारी प्रकृति का सौन्दर्य दर्शा रही थी—गुलाबी उषा के आंचल से उभरते हुए सुर्ख सूर्य की ज्योति-रश्मियां सरोवर तट की उगी घास पर ओस के कणों को चमका रही थीं। पर्वतों की चोटियों से बहते जल झरनों की शोभा बढ़ा रहे थे। पक्षी घोंसलों को छोड़कर उड़ान की मुद्रा में थे। उसे इस दृश्य में अपने प्यारे अल्ला की झलक दिखायी दी। उसका मस्तक उसके सम्मान में झुक गया। उनके साथ चलते हुए मुरीदों ने कहा—"पीर (गुरु) जी! आपने तो मूर्त्तियों के मन्दिर को शिर झुका दिया।" उनका उत्तर था:—

मस्जिद है या मन्दिर यह तो ज़ोके बन्दगी जाने।
अल्ला का जलवा नज़र आया तो सजदा कर दिया मैंने॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थः—

मैंने तो, इस दीवार की चित्रकारी पर खुदा का नूर देखा तो भक्ति भरे प्रेम से नमन कर दिया।

८. भक्तों को अपनी प्रशंसा सुनना अच्छा नहीं लगता। इसे लोकेषणा कहते हैं (उनमें पुत्रेषणा, वित्तेषणा भी नहीं होती)।

जैसा कि पहले भी लिखा है कि रबिया जी कवयित्री और मधुर गायिका थीं। बड़े-बड़े लोग उनके चरणों में आकर आदर से अति प्रशंसा करने लग जाते जो उन्हें अच्छा नहीं लगता था। एक समय उन्होंने कह दिया:—

"हर वक्त की तारीफ़ नहीं भाती है मुझको।

लूं दादे सुख़न,[१] ये नहीं आदत मुझको।।"

९. एक बार किसी मनचले ने रबिया जी को कहा कि "आप कई बारबगैर वुज़ू[२] किए थोड़ी सी नमाज़ पढ़ती हैं।" तो उन्होंने फरमाया:—

"मान लो कि न अदायगी वुज़ु, नमाज़ आती है।

पर सजदा कर लेती हूं, जब झलक खुदा आती है।।"

१०. एक समय रबिया जी के पास एक बड़ा हाजी, गाज़ी, नमाज़ी ने आकर कहा कि "चालीस साल हो गये मुझे अबादत[3] करते। तीन बार हज (मक्का, मदीना की यात्रा) कर चुका हूं। कुरान शरीफ़ हिफ्ज़ (कण्ठस्थ) कर रखा है। रमज़ान के दिनों में पूरा महीना रोज़े रखता हूँ। पाँच वक्त रोज़ नमाज़ पढ़ता हूँ, पर मुझे अभी तक अल्लाताला का दीदार नहीं

---

१. रचनाओं की तारीफ. २. जल से मुंह हाथ धोना, ३. यादे ख़ुदा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ।" तो उन्होंने जवाब में कहा:—

"इश्के-सादिक भी हो तो तब मिलेगा ऐ हाफिज़।
फकत हज नमाज़ रोज़ों से खुदा नहीं मिलता॥"

११. सच्चे निष्काम ज्ञानी भक्त साधक में अनेक गुण और विभूतियाँ आ जाती हैं। महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज में कितनी ऐसी शक्तियाँ थीं, इसके कई उदाहरण हैं। चन्द एक मैं लिख रहा हूं—

जब पाकिस्तान नहीं बना था, उससे पहले की बात है कि पंजाब में एक भक्त-दम्पती महाराज के पास आए कि हमारी कोई सन्तान नहीं। थोड़ी देर ध्यान में बैठने के बाद उन्होंने आशीर्वाद दिया कि 'आपकी मनोकामना पूर्ण होगी, एक पुत्र हो जाएगा'! महाराज जी ने उसी दिन अपनी डायरी में लिख दिया कि इनका जो बालक होगा, उसकी आयु १४ साल होगी। ऐसा हुआ भी। लड़का १४ वर्ष की अवस्था में मर गया। बाद में वे महाराज के पास मिलने आए, तो उन्होंने लड़के की मृत्यु की दुःखद बात कही, महाराज जी ने अपनी पुरानी डायरी में देखा तो यही पाया, उनको सान्त्वना देते हुए उन्होंने कहा कि 'उसका संयोग आपके पास इतना ही था।'

१२. महात्मा जी के परम शिष्य स्वर्गीय लाला गणेशदास जी अग्निहोत्री ने सन् १९५३ में दिल्ली में शीशे के सामान का कारखाना खोला। उन्होंने महाराज को बताया तो गुरुवर ने मना किया कि 'इस काम से तुम्हारा व्यापार तबाह हो जाएगा और बहुत घाटे में रहोगे', लेकिन इन्होंने फैक्ट्री आदि इन्तज़ाम पूरे कर रखे थे, इसलिए वह काम शुरू कर दिया। नतीजा वही हुआ जो महाराज ने कहा था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज ने फिर इनको सलाह दी कि 'अपना कर्ज़ा चुकाने के लिए कारखाने की बिल्डिंग मत बेच देना, जप-यज्ञ पूर्ववत् करते रहो, परमात्मा वही दिन जल्दी लायेंगे।' परिणाम स्वरूप वही सम्पत्ति आज लाखों रुपये की है।

१३. पूजनीया बहिन शान्तिदेवी जी अग्निहोत्री के भाई श्री वेदप्रकाश सन् १९६२ में पेट दर्द आदि के इलाज के लिए विलिंग्डन हॉस्पिटल दिल्ली में दाखिल हुए। जाँच के बाद पता चला कि appendecitis है इसका ऑपरेशन के अलावा और कोई इलाज़ नहीं। अगले दिन ऑपरेशन होना था। महाराज जी ने इनको अभी आपरेशन न कराने की सलाह दी और खुद हस्पताल जाकर उसके पास बैठकर गायत्री-जप करते रहे और पेट पर हाथ फेरते रहे। फलस्वरूप उसी दिन दर्द दूर हो गया। अगले दिन उसका एक्सरे कराया गया तो वह रोग समाप्त था। सभी बड़े सर्जन एवं डाक्टर देखकर आश्चर्य चकित हो गए। मैं समझता हूं गायत्री-उपासना का चमत्कार देखकर ही वेद जी में गायत्री जप और यज्ञ के प्रति अब इतनी श्रद्धा है कि वह विशेष गायत्री-यज्ञ नित्य कर्म के साथ करते रहते हैं। एक बार महाराजजी की सुन्दरपुर कुटिया में कई घंटे गायत्री-यज्ञ करते रहे।

१४. महाराज के परम सेवक लाला इन्द्रसेन जी की धर्म-पत्नी शान्ति देवी जी को साँप के काटने से कुछ और रोग हो गया था, महाराज ने गायत्री-जप द्वारा ही उनका वह रोग दूर कर दिया और अपनी दृष्टि एवं स्पर्श से उनकी समाहित अवस्था बना दी, जिसमें उन्होंने अपने चक्रों को साक्षात् किया। बाद में अपनी अनुभूतियाँ महाराज को बतायीं; तो उन्होंने बिल्कुल ठीक पाया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५. महाराज जी को कितना अनुभव-ज्ञान था, इसका उदाहरण लें—

२५ साल पहले मेरा लोहे का काम रुड़की यूनिवर्सिटी की बिल्डिंग में चल रहा था। उन दिनों मैं महाराज को मिलने ऋषिकेश गया। मेरे नमस्कार करते ही उन्होंने कहा कि "आप तो अकस्मात् ही यहाँ आए हो" मैंने कहा कि "महाराज जी ! मैं आज ही सुबह सहारनपुर (वहां मेरी ससुराल है) से रुड़की आया था वहाँ पर मेरे मुलाज़म शतमन्यु ने ७०० रु० का हेर-फेर कर रखा था, वह पैसा भी लेना था और यूनिवर्सिटी से पेमेण्ट भी लेनी थी, इसलिए वहाँ आया था। वहाँ बस से उतरते ही मेरे मन में आपके दर्शनों का विचार आया, तत्काल अपना सामान फिर उसी बस में रख दिया; सो यहाँ चला आया।"

महाराज जी ने थोड़ी देर मौन होकर कहा, "नौकर का पैसा तो गया आपका, पर वह कभी फिर सज़ा पा जाएगा। वह अब मिलने से रहा।" मैंने कहा कि "जिस वक्त मैं रुड़की पहुंचा था उस वक्त मिल जाता ?" उनका उत्तर था "हाँ"।

अगले दिन जब मैं वापस आया तो पता लगा कि शतमन्यु कल १२ बजे अपना सामान लेकर चला गया, मैं दस बजे बस अड्डे पर पहुंचा था। तो निश्चय वह मुझे उस वक्त मिल जाता।

उसने पंजाब में किसी व्यापारी के पास नौकरी कर ली। मालिक ने बैंक से रुपया मँगवाया, वह लेकर भाग गया। पकड़ा गया और उसे एक साल की सज़ा हो गई। मेरी रकम नहीं मिली।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६. सत्यनिष्ठ ज्ञानी भक्त होने के लिए इस अष्टाङ्ग योग की साधना करें। ज्ञान के फल और भक्ति के पुष्प ही वास्तविक प्रभु-पूजा का नेवैद्य है। बाज़ार से खरीदे गए फल-फूल या हार नहीं।

ज्ञानी और भक्त ऐसे बनते हैं:—

बुद्धि की धरती शुद्ध बनायें।
ध्यान की **खाद** भरते जायें॥ १॥
वेद-स्वाध्याय का **बीज** तब पायें।
निरन्तर अभ्यास-जल से रिझायें॥ २॥
ब्रह्म-चिन्तन की **बाढ़** लगायें।
ज्ञान-भरा अमर-फल खायें॥ ३॥

श्रद्धा की **खाद** से भूमि हृदय की भरो।
निःस्वार्थ-प्रेम का **बीज** ले उसमें धरो॥ १॥
नम्रता के जल से सींचो, **बाढ़ निर्विकारों** की करो।
खिलाओ **पुष्प-भक्ति** का और भवसागर तरो॥ २॥

यहाँ अभ्यास का अर्थ है तदनुसार आचरण करना, क्योंकि--

स्वाध्याय चाहे कितना कर लें।
विद्या चाहे कितनी पढ़ लें॥
कार्य यदि अनुकूल नहीं।
जानने का कुछ लाभ नहीं॥
ज्ञानी कहलाने योग्य नहीं।
इसमें किञ्चित् भूल नहीं॥

१७. उपनिषद का यह मन्त्र इसका प्रमाण है—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥

—(ईश० मन्त्र-९)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ:—

ये अविद्यां=जो कर्म को (ज्ञान की उपेक्षा करके)
उपासते=सेवन करते हैं (वे)
अन्धन्तम:=गहरे अन्धकार में
प्रविशन्ति=प्रवेश करते हैं।
ये उ=और जो (कर्म की उपेक्षा करके केवल)
विद्यायां=ज्ञान में
रता:=रमते हैं
ते तत:=वे उससे
भूय इव=भी अधिक
तम:=अंधकार को प्राप्त होते हैं।

कविता में अर्थ—

ज्ञान की उपेक्षा से होते जिनके कर्म हैं।
अज्ञान के अन्धकार में, वे पाते अगला जन्म हैं॥
और जो केवल ज्ञान में रत, कर्म कुछ करते नहीं।
उससे भी अधिकतर अन्धकार में वे जाते हैं॥

१८. परमात्मा के अटल नियम से जिस इन्द्रिय से शुभ-अशुभ कर्म किए जाते हैं, वह इन्द्रिय वैसे ही आगामी जन्म में सुख या दु:ख देने वाली होती हैं। अर्थात् उत्तम, मध्यम अधम कर्मों के अनुसार शुभ कर्म करने वाली इन्द्रिय अगले जन्म में सुन्दर, सवल, नीरोग होंगी और अशुभ कर्म करने वाली कुरूप, निर्बल और हीन होगी।

इसी तरह से जिस इन्द्रिय का भी कोई दुरुपयोग करता है, वह इन्द्रिय उसे आगामी जन्म में नहीं मिलेगी। उपनिषद के इस मन्त्र में कहा गया है कि जो ज्ञान के अनुसार कर्म नहीं करता, वह अगले जन्म में बुद्धिरहित हो जाने से मनुष्य-जन्म से वञ्चित हो जाएगा। अर्थात् वह अन्धकारमयी पशु-योनि में जाएगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६. निष्काम ज्ञानी भक्त कैसे होते हैं, इस मन्त्र से जानें—

देवता-इन्द्र—

इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥

(ऋ० ७-३२-२, सा० १६७६)

अर्थः—

इमे हि ते=हे प्रभु ! निश्चय ही ये तेरे
ब्रह्मकृतः=ब्रह्मज्ञान-साधक, निष्काम-प्रेमी
जरितारः=स्तोता, भक्त
वसूयवो=अभीष्ट ऐश्वर्यों के इच्छुक (प्रभु मिलन की कामना वाले)
मधौ न मक्ष=मधुमक्खियों की भाँति
सुते सचा=प्रत्येक ज्ञान-निष्पादन स्थल पर निमग्न होकर
इन्द्रे कामम् न=केवल इन्द्र परमात्मा के प्रति अपने अभिप्रायों को लिए
आसते=आ बैठते हैं
रथे न पादम्=जैसे रथ में पैर रखकर
आ दधुः=बैठते हैं ।

वेदमाता ने इस मन्त्र में भक्त की उपमा मधुमक्खी से दी है । जैसे वह मधु के निमित्त भिन्न-भिन्न सुगन्धित खिले पुष्पों पर बैठ कर निष्काम भाव से हमारे लिए शहद सँजोती है । ऐसे ही सच्चे भक्त-शिरोमणि साधक दुनिया की अन्य सब इच्छाओं, कामनाओं, मनोरथों को छोड़कर केवल प्रभु-मिलन की विधि-ज्ञान को जानने के लिए जहाँ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं भी वेद-उपदेश, सद्ग्रन्थों के पाठ, ब्रह्मचर्चा, हरि-कीर्त्तन, विशेष वेद यज्ञ, आध्यात्मिक सत्संग एवं प्यारे प्रभु की महिमा-स्थलियों और दर्शनीय दृश्यों आदि पर श्रद्धा, प्रेम, भक्ति भरे हृदय से जा, तल्लीन होकर बैठते हैं तथा ज्ञाना-मृत वचनों को सुनकर ग्रहण और धारणाओं में धारण करते हैं; फिर उस पर चिन्तन, मनन, निदिध्यासन करके कर्मों द्वारा प्रभु का साक्षात् करते हैं।

उस ज्ञान-गुणों की सुगन्धि से और भक्तिरस की सोमसुधा से अपने प्यारे प्रीतम को रिझाते, लुभाते और प्रसन्न करते हैं । ऐसे वे प्रभु आश्रित होकर अपने जीवन-लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। जैसे रथ में बैठकर निश्चित स्थान तक पहुँचते हैं।

कविता में अर्थ:—

जैसे मधुमक्खियाँ नाना पुष्पों पर बैठ मधु संजोती हैं।
वैसे ही ब्रह्मसाधक सब हरि चर्चाओं पर जाते हैं।।

प्रभु-मिलन की विधि जानने, ज्ञान-सम्पादन करते हैं।
और नहीं कोई इच्छा होती, आनन्द-मुक्ति का चाहते हैं।।

इन्द्र प्रभु निष्काम भक्तों की, अभीष्ट पूर्ति करते हैं।।
जैसे कि रथ में बैठ नियत स्थान पहुँचते हैं।।

२०. इस मन्त्र के आधार पर प्रार्थनामय भजन —

प्रभु और कछु नहि चाहिए, तेरे ज्ञान-धन का धनी बनें।
तेरे दिव्य रस से सदा भरे, तेरे चरणों में ही झुके रहें ।।१।।

तेरी मिली हुई हर दात को, मधुमक्खी भाँति दिया करें।
तेरे स्नेह रथ पर हो बैठकर, सदा तेरी ओर बढ़ा करें ।।२।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरी चाह हरदम बनी रहे, नहीं कामना कोई और हो।
देव ऐसी कृपा महान् हो, तेरे ध्यान में ही मग्न रहूं ॥ ३ ॥

हमें अपने भक्ति-रंग से, ऐसा दयालु रंग दे।
तेरी याद ही हो जिन्दगी, इसे दिल से न हम जुदा करें ॥ ४॥

सब बन्धनों को तोड़ दो, जीवन को ऐसा मोड़ दो।
तेरे नाम का स्मरण सदा, हर पल, घड़ी, क्षण किया करें ।५।

हमें अपना दुःख तिल भर लगे, औरों का दुःख पर्वत समान।
परवरदिगार दया करो कि हम हर किसी की दवा बनें ।६।

जो भला किसी का न कर सकें, तो बुरा किसी का भी न करें
सेवा-धर्म जो महान् है, सदा पालन उसका किया करें ॥ ७ ॥

तेरे सन्तों का सदा साथ हो, हमारे सिर पर उनका हाथ हो।
तेरे प्रेम की अमृत-सुधा तेरे भक्तों से हम पिया करें ॥ ८ ॥

यज्ञ-कर्मों को ही सदा करें, जीवन अपना ऐसा बसर करें।
इस तरह से तेरा दर्शन पा, चक्र आवागमन खत्म करें ॥ ९ ॥

२१. हर-एक ज्ञानी भक्त नहीं हो सकता। क्योंकि:—

प्रभु-भक्ति के लिए हृदय विशेष होते हैं।
ये वो नग्मा है जो हर साज पर गाया नहीं जाता ॥

इसके लिए सत्कर्मी साधक होना पड़ता है। जैसे कि इस मन्त्र में वेदमाता ने फरमाया है—

देवता-व्रात्यः—

तस्य व्रात्यस्य। एकं तदेषा ममृतमित्याहुतिरेव।

—(अथ० १५-१७-१०)

अर्थः—

इति एव = निश्चय ही

तस्य व्रात्यस्य = वह सत्यव्रतधारी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एमं तदेषाम्=केवल इन सत्य कर्मों की
ग्राहुतिः=हविः द्वारा अर्थात् सत्याचरण द्वारा
तत्=वह साधक
ग्रमृतम्=अमृत पद को प्राप्त करता है,
मृत्यु पर विजय पाता है।

ग्रथ कविता में—

सत्यव्रतों को जो धारण कर गया,
क्रियात्मक पवित्र जीवन बन गया।
निश्चय हो वह मृत्यु से फिर तर गया,
मोक्ष का द्वार उसका खुल गया॥

२२. यह साधना किसी लक्ष्य को लेकर होती है, जैसेः—
साधक पहले व्रत ले ग्रावागमन से छूटना।
ब्रह्म के निज धाम को है लौटना॥

और साधक ऐसा दृढ़ विश्वासी एवं तपस्वी होना चाहिए जैसा कि एक कवि के चार पदों को परिवर्तित कर लिख रहा हूँ—

सिद्धि से पहले चरण जो बीच में रुकते नहीं।
जो कभी दब कर किसी के सामने झुकते नहीं॥ १॥

ग्रनेक कष्टों में भी विचलित, जो कभी होते नहीं।
ग्रापदाग्रों को चुनौती में भी घबराते नहीं॥ २॥

जो हिमालय-से ग्रटल, सत्य से हटते नहीं।
ग्राग पर चलते हुए भी, जो चरण जलते नहीं॥ ३॥
उन पगों के रज-कमल का नाम है यह साधना।
प्रभु-मिलन की राह पर गमन, है यह साधना॥ ४॥
साधना का पथ हैं प्रकाश का
ध्येय है ग्रन्धकार के विनाश का॥ १॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी का मंगल लिये हृदय के अन्तराल में
साधक कदम आगे बढ़ा ईश्वर-प्रणिधान में ॥ २ ॥

२३. मुक्तक:—

सड़क मंज़िल की तरफ जाती हो अगर
तेरे कदम बढ़ रहे हों उस डगर।
निश्चय जानो ये प्यारे बशर
लक्ष्य पर पहुँचोगे इक दिन सर-बसर ॥ १ ॥

हिम्मत न उस मुसाफ़िर की भाँति कभी हारिए।
जो बैठ गया निराश मंज़िल के सामने।

हो यदि साधक का मुख ही परमात्मा की ओर।
गति रहे योग-मार्ग पर सदा बेशोर ॥ १ ॥

जान लिया मैंने कर के बहुत ग़ौर।
पायेंगे प्रीतम इसी जीवन के दौर ॥ २ ॥

२४. ज्ञानी भक्तों के भाव ऐसे होते हैं:—

राहे उल्फ़त में चला जाता हूँ दीवाना वार
कुछ नहीं मालूम कितना फासला मंज़िल में है ॥

नहीं कोई कशिश दुनिया की सजधज में रही है।
प्रभु के जलवों पे जब से तबियत हुई मायल है ॥

जलवा अगरचे प्रभु का लगता अयां नहीं।
पर भक्त की निगाह हो, तो फिर कहाँ नहीं ॥

चलते-चलते एक और—

भक्त बनने का और नुस्ख़ा ये मुझ से ले लेना।
बड़ी मासूमियत से अपना आपा प्रभु को दे देना ॥

॥ ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!! ओ३म् ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

१२. रहस्यमयी आध्यात्मिक जानकारियाँ

१. यह आध्यात्मिक आदिदैविक जानकारियों का अध्याय अन्त में रखना निश्चित किया था, किन्तु इनका ज्ञान आगे **उपासना-विधि** आदि में भी सहायक होगा। इसलिए मैं आज १०-१-८७ को इसे पहले ही ले रहा हूं। पुस्तक को इसी माह में प्रकाशित करना आवश्यक है, अतः समयाभाव के कारण आगे अब इस पुस्तक को संक्षिप्त कर रहा हूं।

२. मानव-शरीर का वर्णन वेद में इस प्रकार है:—

अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या।

तस्यां हिरणमयः कोश स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥

(अ० १०-२-३१)

अर्थ:—

हमारा शरीर देवताओं की अयोध्यापुरी (अपराजित नगरी) है, यह आठ चक्र, नौ द्वार और १ चमकदार हिरणमय ज्योति से आच्छादित है।

वे नौ द्वार इस प्रकार हैं—

द्वार	इन द्वारों से निकले प्राणों से आगामी जन्म कैसा ?
आंखें-२	— सर्वश्रेष्ठ मानव-जन्म।
कान-२	—द्वितीय श्रेणी का मानव-जन्म।
नाक के नथने २	—तृतीय श्रेणी का मनुष्य-जन्म।
मुख-१	—सामान्य मनुष्य-जन्म।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपस्थ-१ —पशु-पक्षी   जिनका जन्म-मरण बना रहता
गुदा १ —कीट-पतंग आदि । हैं; उनके प्राण इन्द्रियों के इन
द्वारों से निकलते हैं ।

मुक्त होने वाली आत्माओं के प्राण ब्रह्मरन्ध्र से निकलते हैं ।

अब आठ चक्रों को जानें, जिनमें योगी ध्यान लगाकर ज्ञान और संयम से सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं ।

I **मूलाधार चक्र**:—स्थान:--यह गुदामूल से दो अंगुलि ऊपर और उपस्थ मूल से दो अंगुलि नीचे है, इस लोक का नाम भू: है । इस चक्र के ऊपर ध्यान लगाने से आरोग्यता और चिदानन्द की प्राप्ति होती है । इसके नीचे त्रिकोण यन्त्र जैसा एक सूक्ष्म योनि मण्डल है; जिसके मध्य के कोण से सुषुम्ना (सरस्वती) नाड़ी, दक्षिण कोण से पिङ्गला (यमुना) नाड़ी और वाम कोण से इड़ा (गङ्गा) नाड़ी निकलती हैं । इसलिए इसको मूल त्रिवेणी भी कहते हैं ।

इस योनि-मण्डल के मध्य में स्थित तेजोमय रक्त वर्ण वाली ब्रह्मनाड़ी के मुख में कुण्डलिनी शक्ति साढ़े तीन कुण्डल में लिपटी हुई है । जिसे मूल शक्ति भी कहते हैं । इस शक्ति का आधार होने से ही इस चक्र का नाम मूलाधार-चक्र है ।

II. **स्वाधिष्ठान-चक्र**—स्थान:—मूलाधार चक्र से दो अंगुलि ऊपर पेंडु के पास । यह भुव: लोक में है । इस चक्र पर ध्यान से जिह्वा पर सरस्वती का वास हो जाता है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

III. **मणिपूर्वक-चक्रः**—स्थानः—नाभिमूल में और लोक स्वः है, इस चक्र पर ध्यानस्थ होने से शरीर-व्यूह का ज्ञान एवं अजीर्ण आदि रोग दूर होते हैं।

IV. **अनाहत चक्रः**—स्थानः—हृदय के पास तथा लोक महः है।

इस पर ध्यान लगाने से जितेन्द्रियता और कवित्व-शक्ति का लाभ होता है।

V. **हृदय चक्रः**—इसका स्थान हृदय तथा लोक महः है, इसमें आत्मा का निवास है। इस पर ध्यान लगाने से आत्म-साक्षात् होता है।

VI. **विशुद्ध चक्र**—इसका स्थान कण्ठदेश एवं लोक जनः है। इसमें ध्यान लगाने से शान्तचित्त, नीरोगी, शोकहीन, दीर्घजीवी, कवि और महाज्ञानी हो जाते हैं। इसका विशुद्ध नाम रखने का यह कारण बतलाया गया है कि इस स्थान पर मन की स्थिति होने से मन आकाश के समान विशुद्ध हो जाता है।

VII. **आज्ञा चक्रः**—इसका स्थान दोनों भौंओं के मध्य में भृकुटि के भीतर, जहां तिलक लगाया जाता है। यह तपः लोक में है। भिन्न-भिन्न चक्रों में ध्यान द्वारा जो फल प्राप्त होते हैं, वे सब एक मात्र इस पर ध्यानस्थ होने से मिल जाते हैं। इससे स्मरण-शक्ति तीव्र होती है। इस स्थान में ज्योति आ जाती है। जिससे दूसरों पर पवित्र-आचरण का प्रभाव पड़ता है।

VIII. **सहस्रधार या शून्यचक्र अथवा ब्रह्मचक्रः**—स्थान तालु के ऊपर मस्तिष्क में, जो सब शक्तियों का केन्द्र है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सत्यं लोक में स्थित है। इस पर ध्यान लगाने से अमरत्व, मुक्ति की प्राप्ति होती है।

३. **कुण्डलिनी शक्ति का जागरण:**—जब कुण्डलिनी के लपेट खुलकर सीधे हो जायें और इसका मुख सुषुम्ना नाड़ी के भीतर चला जाये तो इसको कुण्डलिनी का जागरण कहते हैं।

कुण्डलिनी जागरण करने के उपाय—एक तो हठयोग की क्रिया है जो कि कठिन है। दूसरा आध्यात्मिक साधन यह है कि शुद्ध अन्तः करण से सात्त्विक विचारों द्वारा ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए ज्ञानमयी ईश्वर की सच्ची भक्ति, परिपक्व वैराग्य की अवस्था में निरुद्ध चित्त और मन की पूर्ण एकाग्रता में निश्चल ध्यान लगाने से जागृत होती है।

अलौकिक शक्ति, अद्‌भुत चमत्कार तथा असाधारण ज्ञान का विकास जब देखने में आये तो समझना चाहिए कि कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर सुषुम्ना के मुख में चली गयी है। इससे सब प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त होती है।

४. शरीर में कोष

स्थूल शरीर

(i) **अन्नमय कोष**—पाँच भूतों से बना हुआ स्थूल शरीर और दस ज्ञान-कर्म इन्द्रियां।

(ii) **प्राणमय कोष**—पाँच प्राण (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान) और पाँच कर्मेन्द्रियों की शक्ति का केन्द्र।

ये १० शक्तियाँ

(iii) **मनोमय कोष:**—मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति का केन्द्र। ये ६ शक्तियां

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(iv) विज्ञानमय कोष:—बुद्धि और अहङ्कार का स्थान।

ये २ शक्तियाँ और (ii) (iii) का जोड़ यह अठारह शक्तियों का समूह **सूक्ष्म शरीर** कहलाता है।

कारण शरीर

(v) आनन्दमय कोष:—आत्मा और महतत्त्व (चित्त)।

प्रत्याहार के अर्थ

(श्री एस. एस. पनवार, योग-अध्यापक द्वारा):—

विषय और इन्द्रियां जो जावें
अपने स्वादों को ललचावें।
तिनकी ओर न जाने देई,
प्रत्याहार कहलावे सोई॥

५. परमात्मा की शक्ति, ज्ञान, वाणी प्रेरणा का निवास अखण्ड मौन में है और अत्यन्त मौन में जाकर इनको ग्रहण कर सकते हैं।

जैसे-सूर्य के गिर्द पृथ्वी की परिक्रमा से दिन की तीन अवस्थाएं बनती हैं। अर्थात् दिन, रात और सन्धिकाल।

जब पृथ्वी सूर्य के सामने होती है तो दिन होता है। जब सूर्य से विमुख होती है तो रात होती है और उस परिवर्तन के समय को सन्धिकाल कहते हैं।

इसी प्रकार आत्मा के प्रति शरीर की गतिविधि से जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति तीन अवस्थाएँ बनती हैं।

जब बाह्यकरण और अन्तःकरण आत्मा के अभिमुख होता है, तब शरीर की अवस्था का नाम जागृति है।

जब बाह्यकरण आत्मा के विमुख और अन्तःकरण के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिमुख होते हैं तो स्वप्न-अवस्था होती है। यह कार्य सूक्ष्म शरीर में होता है।

जब बाह्य और अन्तः करण दोनों आत्मा के विमुख होते हैं तो सुषुप्ति अवस्था बनती है। यह कार्य कारण-शरीर में होता है।

जब यही अवस्था जागृति में आ जाये तो इसका नाम आत्मस्थिति अर्थात् सम्पर्ग्यात् समाधि है, जिसमें आनन्द की अनुभूति होने लगती है। स्पष्ट हुआ कि जब आत्मा का अन्तःकरण और बाह्यकरण की इन्द्रियों से कोई सम्पर्क नहीं रहता, तभी आनन्द की प्राप्त होती है।

जागृत में कार्य तीनों शरीरों (स्थूल, सूक्ष्म, कारण) से होते हैं।

स्वप्न में कार्य सूक्ष्म और कारण शरीरों से होते हैं।

सुषुप्ति में जीवात्मा अपने कारण शरीर में स्थित होती है। इसलिए स्थूल और सूक्ष्म शरीर से कोई कार्य नहीं होता।

संगीत और राग से आध्यात्मिक लाभः—

६. संगीत का स्तुति उपासना से बड़ा सम्बन्ध है, ब्रह्मकुमारियाँ भक्ति और वैराग्य के रिकार्ड लगाकर ध्यान में बैठाती हैं। मैं उनके शक्तिनगर दिल्ली-केन्द्र में सन् १९८० में कुछ माह योग-साधना करता रहा और मेरा अनुभव है कि इस विधि से मन ध्यानस्थ हो जाता है।

यह प्रसिद्ध है कि संगीत सुनकर गाएँ दूध अधिक देती हैं। प्रारम्भिक पागलपन भी संगीत से दूर हो जाता है।

संगीत के सम्बन्ध में कुछ रागों के नाम और गुण इस प्रकार हैं—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

i. **भैरो**:—इस राग के निरन्तर अभ्यास से हृदय-रोग नहीं होता, खाँसी-कफ आदि रोग दूर होते हैं।

ii. **आसावरी**:—इस राग से सिरदर्द चला जाता है।

iii. **विभास**:—इससे मिरगी रोग भी दूर होता है और मस्तिष्क सबल होता है।

iv. **भैरवी**:—इससे वात, पित्त, कफ त्रिदोषों का निदान होता है।

v. **सारङ्ग**:—इससे ज्वर उतर जाता है।

vi. **केदार और (vii) विहाग**:—इन्हें गाकर सोने से नींद बहुत अच्छी आती है, मन पर जादू का-सा असर होता है।

जिस राग में साधक को मस्ती आ जाए उसके लिए वही राग आध्यात्मिक है।

७. शब्द में बोलने वाले का आकार निहित होता है। जैसे हम किसी परिचित व्यक्ति को उसकी आवाज़ से पहचान लेते हैं। ऐसे ही परमात्मा की वेदवाणी में परमात्मा का स्वरूप विद्यमान रहता है। जो निराकार, निर्विकार, निष्क्रिय परन्तु महान् प्रेरक हैं। इस मन्त्र-विज्ञान से यज्ञ द्वारा अनेक बीमारियों का चमत्कारी इलाज हो सकता है।

मैं बचपन में पंजाब (अब पाकिस्तान) के एक गाँव में रहता था; वहाँ के एक मौलवी से प्रथम कक्षा में पढ़ा करता था। वे झाड़-फूंक के कुछ मन्त्र पढ़कर रोगियों के सिरदर्द, दांत का दर्द, बुखार, साँप-बिच्छू के काटे का इलाज किया करते थे। बड़ा होकर मैंने उनसे जिज्ञासा की कि ये आप कैसे ठीक करते हैं ? उन्होंने उत्तर दिया "कुरान सरीफ़ की आयत पढ़कर फूंक मारता हूं तो ठीक हो जाते हैं। लोगों की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धा है, ये उस की शक्ति है, मेरी अपनी नहीं ।"

शब्दों की शक्ति तो प्रत्यक्ष है, अभी किसी को गाली देकर या स्तुति-वचनों से सम्मान देकर देख लो तो आपको प्रभाव का पता लग जायेगा ।

देवयज्ञ में वेदमन्त्रों से आहुति दी जाती है, स्तुति, आदर, सम्मान के लिए, मानसिक, बोधक और आध्यात्मिक शक्तियों को उद्‌बुद्ध करने एवं आत्मा को उन्नत-जागृत-विकसित, दिव्य बनाने के लिए ।

वेद मन्त्रों से रोग प्रभावशून्य हो जाता है:—

८. मैंने पूज्य महाराज प्रभु आश्रित जी से अपने सुषुप्ति रहित, स्वप्न सहित अनिद्रा के सम्बन्ध में पूछा था । उन्होंने मुझे इस रोग का कारण बहुत भयानक मानसिक पाप का फल बताया और कहा कि परमात्मा की दया और न्याय यह है कि उस पाप का फल बहुत हल्के-हल्के रूप में लम्बे काल तक मिलता रहेगा । जैसे किसी को अपराध का दण्ड सौ कौड़े (बेंत) मिलना है । यदि एक साथ उसे वह दण्ड दिया जाए तो वह मर सकता है । यदि धीरे-धीरे एक-एक कोड़ा उसको मारा जाए तो वह सहन कर सकेगा और उसका कुछ बिगड़ेगा नहीं । पर इस रियायत का वही अधिकारी होता है, जो दोषों को छोड़कर आध्यात्मिक मार्ग पर चलने लग जाता है । मेरे रोग का इलाज उन्होंने यह बताया कि उठते ही परमात्मा की इस दया की भावना को हृदय में रखकर धन्यवाद करूं और जप-ध्यान में बैठूँ, या वेद-स्वाध्याय करुं तो इस रोग का प्रभाव सिरदर्द, भारीपन,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्कर आना, दिन में ऊँघना आदि दूर हो जाएगा। परमात्मा की कृपा और आशीर्वाद से यह ऐसा ही हो रहा है, इसलिए इस रोग-निवृत्ति के लिए औषधि के रूप में स्वाध्याय, स्तुति, प्रार्थना में प्रवृत्त हुआ, सो मेरा यह रोग मेरे लिए वरदान सिद्ध हुआ।

९. जैसे हर अंक में ० (शून्य) मौजूद होता है, ऐसे ही संसार के समस्त प्राणियों, तत्त्वों, भूतों, वस्तुओं, शब्दों और कण-कण, अणु-अणु में परमात्मा विद्यमान है। इस ज्ञान के सदा ध्यान में रहने से परमात्मा की सर्वव्यापकता का भान रहता है, जिससे हम पापों, अपराधों एवं भूलों से बच सकते हैं।

१०. जीवन का आधार:— परमात्मा।
,, का लक्ष्य:— धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि।
,, का अन्तिम उद्देश्य:—परमात्म-साक्षात् करना।
,, का रहस्य:— आत्म-साक्षात् करना।
,, का शृंगार:— दिव्य-गुण।
,, का रत्न:— ब्रह्म-ज्ञान।
,, का रस:— नम्रता।
,, की ज्योति:— ब्रह्म-दृष्टिकोण, दिव्य-दृष्टि।
,, की साधना:— योग-अभ्यास।
,, का सार:— आत्म-दर्शन।
,, की सार्थकता:— निष्काम सेवा।
,, की शक्ति:--- ब्रह्मचर्य।
,, का तप:— यमों का पालन।
,, का उत्थान:— सतत पुरुषार्थ।
,, का सोपान: - विवेक, वैराग्य, त्याग।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन की सुगन्धिः— यश, मान, कीर्त्ति, सत्य-आचरण
,, का धनः— शील, सन्तोष।
,, का कल्याणः— जप, यज्ञ, योग।
,, का सुखः— इन्द्रिय-संयम।
,, की महानताः— सहन व क्षमाशीलता।
,, की पराकाष्ठाः—ज्ञान, कर्म, उपासना।
,, का आनन्दः— प्रेम-भक्ति।
,, की शान्तिः— शिव-संकल्प।
,, का मननः— ब्रह्म-चिन्तन।
,, का सेतुः— पञ्च यज्ञ।
,, की शानः— ज्ञान।
,, का यशः— प्राणीमात्र की सेवा।
,, की निश्चिन्तताः—ऋणों से उऋण होना।
,, का सम्मानः — धर्म-आचरण और सत्यवाणी।
,, का चमत्कारः— ऋतम्भरा बुद्धि।
,, की दुर्बलताः— आलस्य, प्रमाद।
,, का बलः— आत्म-विश्वास।
,, का सखाः— ईश्वर-विश्वास।
,, का स्वाध्यायः— आत्म-निरीक्षण।
,, की विभूतिः — मौन।
,, की पूंजीः— दान।
,, की पवित्रता— तप।
,, की जिज्ञासाः— वेद-ज्ञान सम्पादन।
,, का व्रतः— कोई दोष, अपराध, पाप नहीं करेंगे।
,, की कलाः— संयम (धारणा, ध्यान, समाधि)।
,, का व्यवहारः— विश्व-प्रेम।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन का आरम्भः— नमस्कार से।
,, का मध्यः— प्रभु-आज्ञाओं का पालन।
,, का अन्तः— सर्मापित होना।

११. धार्मिक तथा राष्ट्रीय कर्त्तव्य—

ब्राह्मण का:— अविद्या दूर करना।
क्षत्रिय काः— अन्याय दूर करना।
वैश्य काः— अभाव दूर करना।

शूद्र का:— अपने परिश्रम से उद्योगों को बढ़ाना।

शूद्र वह है जो ऊपर के तीन कार्य स्वयं नहीं कर सकता।

१२. **क्या करें**— निष्काम सेवा, चिन्तन, मनन, निदिध्यासन और हर रात्रि आत्म-निरीक्षण। प्रत्येक इन्द्रिय के दोष-निरीक्षण के अलावा यह भी देखें कि आज किसी की हानि या अपमान तो नहीं किया।

क्या जानें—जन्म-मरण् का कारण (अविद्या)।

क्या सदा याद रखें:—परमात्मा और मौत को। मौत को याद रखने से लोभ, राग, द्वेष, काम-वासना आसक्ति आदि छूट जायेंगे। परमात्मा को याद रखने से दोषों और पापों से बचेंगे।

बचपन की निःसहायता को याद रखने से अहंकार विलीन हो जाता है।

क्या भूलें:—दूसरे का अपकार एवं अपना उपकार।

क्या जीतें:—मन को।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या तरें:—भव-सागर को।

क्या मानें:—वेद-आज्ञा।

क्या धारें:—प्रत्येक इन्द्रिय हमारी धारणा है।

इनमें धारण करें—

आँख में लज्जा को।

कानों में दुःखियों की पुकार को।

वाणी में सत्य को।

कण्ठ में मधुरता को।

प्राणों में ओ३म् नाम को।

बुद्धि में विवेक-विश्वास को।

चित्त में परमात्म-चिन्तन को।

मन में श्रद्धा को।

अहंकार में नम्रता को।

सब इन्द्रियों में संयम को।

शरीर में अहिंसा को।

हृदय में वैराग्य और दया को।

आत्मा में विश्व-प्रेम को।

क्या बनें:— ईश-आज्ञाकारी, सदाचारी, परोपकारी, ब्रह्मचारी, विदेह, जीवन-मुक्त।

क्या वरें:— सत्य को, धर्म को, संगठन को।

क्या करें:— पञ्च यज्ञों को।

क्या सुनें:— वेदवाणी, ऋषिवाणी, आत्मवाणी।

क्या समझें:—परमात्मा, जीवात्मा, प्रकृति को।

१३. **क्या रोकें**:—

शरीर को: —हिंसा करने से।

इन्द्रियों को:—विषयों में जाने से।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन को:—दुश्चिन्तन से।
चित्त को:—वृत्तियों से।
बुद्धि को:—अधर्म से।
हृदय को:—द्वेष-भावना से।
अहंकार को: – मैं, मेरा कहने से।

१४. **कौन क्या करता है:—**

कामी:—बुद्धि-बल का ह्रास करता है।
क्रोधी:—अपनी शान्ति को भंग करता है।
लोभी:—अपने भोगों को घटाता है।
मोही:—अपनी निरपेक्षता को तिलांजलि देता है।
अहंकारी:—अपने सम्मान को गँवाता है।
ईर्ष्यालु:—मानसिक रोगी होता है।
द्वेषी :— शत्रुओं को पैदा करता है।

इन स्वभावों से दैवी वृत्तियों का नाश, आसुरी वृत्तियों का जन्म और शारीरिक, मानसिक रोगों की उत्पत्ति होती है।

१५. मनुष्य पाप करता है:—

जब परमात्मा की सर्वव्यापकता का भान नहीं होता।
या उस कर्म-फलदाता के न्याय में विश्वास नहीं होता।
या उसे वेद का ज्ञान नहीं होता।

या ज्ञान होता है तो उसको अमल करने में प्रमाद कर जाता है।

या प्रमाद भी नहीं, तो समय पर भूल जाता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६.

क्रम सं.	इन्द्रिय	देवता	देवता के गुण	देवता के कर्म	देवता के स्वभाव
१.	श्रोत्र	आकाश	शब्द	सबको बसाना, सब में बसना	निर्लेप, निर्विकार
२.	त्वचा	वायु	स्पर्श	निरन्तर चलना	सम रहना
३.	चक्षु	अग्नि	रूप	ऊपर उठना	जलाना
४.	जिह्वा	जल	रस	नीचे की ओर बहना	शीतलता
५.	नासिका	पृथ्वी	गन्ध	अन्न पैदा करना, आश्रय देना	धृति, सहनशीलता
६.	हाथों का	इन्द्र			
७.	पैरों का	उपेन्द्र			
८.	बुद्धि का	ब्रह्मा			
९.	मन का	चन्द्रमा			
१०.	अहङ्कार	रुद्र			

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७. यह जानें कि:—

ब्रह्मचर्य:—ब्रह्म में विचरण करना।
ब्रह्मचारी:—जो ब्रह्म का आचरण करता है।
ब्राह्मण:—जो ब्रह्म को जानता है।
ब्रह्मवेत्ता:—जो ब्रह्म को कण-कण- में देखता है।

१८. यज्ञ मांगता है:—आहुति।
,, सिखाता है:—विश्व-प्रेम।
,, देता है:—वरदान।

१९. आहार शुद्धि:—सत्त्विक अन्न से।
व्यवहार शुद्धि—यम-पालन से।
आचार शुद्धि:—नियम-पालन से।
विचार शुद्धि:—ब्रह्म-परायणता से।

२०. ब्रह्माण्ड का राजा:—परमात्मा।
देवताओं का राजा:—इन्द्र।
शरीर का राजा:—आत्मा।
इन्द्रियों का राजा:—मन।
ऋतुओं का राजा: —वसन्त।

पृथ्वी का स्वामी सूर्य। नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा। बहते जलों (नदियों) का स्वामी समुद्र।

—(अथर्व० ६-८६-२)

२१. मनुष्य चार बातें जानने आया है:—

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि:—

—(य० ७-२९ की सूक्ति)

अर्थ:—

प्रश्न— १. कोऽसि=तुम कौन हो ?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर— मैं अजर, अमर, अविनाशी, पवित्र, नित्य, सूक्ष्म, अणु, चेतना आत्मा हूँ।

प्रश्न— २. कतमोऽसि=कौन से, कहाँ से हो ?

उत्तर – मैं अनादि काल से हूँ और अनन्त काल तक रहूँगा।

प्रश्न— ३. कस्यासि=किसके हो ?

उत्तर— मैं अमृत पिता परमात्मा का अमृत पुत्र हूँ।

प्रश्न— ४. को नामासि=तुम्हारा क्या नाम है ?

उत्तर— मैं ऋतु हूँ, कर्मशील हूँ, इसीलिए परमात्मा ने मुझे दो कर दिए हैं।

२१. **इनके**	**आत्मा**	**प्राण**	**सार जानें**
१. वेद की	परमात्मा	गायत्री-मन्त्र	ब्रह्मसाक्षात्
२. गायत्री का	सविता	भर्गः	वरेण्यं
३. यज्ञ का	स्वः	इदन्न मम	सुगन्धि
४. योग का	ईश्वर प्राणिधान	यम-नियम	समाधि
५. भक्ति का	प्रेम	नम्र-नमस्कार	समर्पण
६. शब्द का	भाव	अर्थ	मनन
७. साधना का	तप	संयम	योग-सिद्धि
८. जप की	भावना	आचरण	उपासना-सिद्धि
९. तप की	ब्रह्मचर्य	द्वन्द्व-सहन	पवित्रता
१०. धर्म का	सत्य	धृति	धर्म-परायणता
११. विद्या का	ज्ञान	स्वाध्याय	विवेक-ख्याति
१२. जगत् की	परत्मामा	प्रकृति	जीव-जन्तु का भोग-साधन

२२. **योग से बढ़कर कोई साधना नहीं।**
सांख्य से बढ़कर कोई ज्ञान नहीं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यान से बढ़कर कोई आत्म-ज्योति नहीं।
भक्ति से बढ़ कर कोई उपासना नहीं।

२३. सुकर्मों से आयु बढ़ती है, दुष्कर्मों से घटती है। पशु का मूल्य उसके शरीर से है; मनुष्य का उसके सदाचार से।

२४. ब्राह्मण का धन—वेद-विद्या।
क्षत्रिय का धन—यश-कीर्त्ति।
वैश्य का धन —श्री लक्ष्मी।

२५. **इससे क्या बनती है—**
धारणा से " स्थिति।
ध्यान से " परमात्मा से प्रीति।
समाधि से " परमात्म-साक्षात्।

२६. **दान-साधन**	**कैसे**	**आगामी जन्म में फल**
I. तन से	सेवा-परोपकार कार्य करना	निरोग शरीर, लम्बी आयु
II. मन से	प्राणीमात्र का कल्याण चाहना और शुभ-चिन्तन	मानसिक शान्ति
III. धन से	प्राणियों के अभाव दूर करना	सभी सुख और सुख के साधन
IV. विद्या से (सर्वश्रेष्ठ)	गुरुकुल-संचालन, वेद-प्रचार करना	ज्ञानी और विद्वान्

२७. **याद रखें कि** - सुख धर्म के आचरण में (सुखस्य मूलं धर्मः) शान्ति नमन में, आनन्द परमात्म समर्पण में है।

परमात्मा की उपासना मन द्वारा नम्र भाव से होती है। बहिर्मुखी मन जब अन्तर्मुखी उल्टा हो जाये, अर्थात् नम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाये तो परमात्मा की भक्ति सिद्ध होती है।

परमात्मा की याद के बदले में परमात्मा की दया मिलती है, क्योंकि याद शब्द का उल्टा दया होती है।

२८. **हमारे पाँच चेतन देवता हैं:—**

माता, पिता, आचार्य, आतिथि तथा पति के लिए पत्नी और पत्नी के लिए पति।

जड़-देवता भी पाँच हैं—(इन्हें पञ्चमहाभूत भी कहते हैं) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश।

२६. पशु कर्म करता है, भोग-वासना से।
मनुष्य कर्म करता है, लोभ से।

देवता कर्म करते हैं, कर्त्तव्य समझ कर स्वभाव से।

जब हमारे शुभ कर्म स्वभाव से होने लगेंगे, तब हम देवश्रेणी में जायेंगे।

३०. साधना की उत्पत्तिः—सत्यव्रतों के धारण, पालन और अभ्यास से।

आराधना की उत्पत्तिः—स्तुति, प्रार्थना और उपासना से।

ज्ञान की उत्पत्तिः—श्रवण, मनन, निदिध्यासन से।

ध्यान की उत्पत्तिः—मन के निर्विषय, निर्विचार, निर्विकार होने से।

भक्ति की उत्पत्तिः—श्रद्धा, प्रेम, अनुराग से।

विवेक की उत्पत्तिः—स्वाध्याय, ज्ञान, ध्यान से।

वैराग्य की उत्पत्तिः—वेदना, विषाद, वियोग से।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्याग की उत्पत्तिः—विवेक, वैराग्य, विरक्ति से ।
समाधि की उत्पत्तिः—प्रत्याहार, धारणा, ध्यान से ।
संयम की उत्पत्तिः—धारणा, ध्यान, समाधि से ।
दुःखों की उत्पत्तिः—जीवात्मा, मन और प्रकृति के संयोग से ।

३१. परमात्मा-मिलन साधनों से हमारा सम्बन्ध—

गायत्री हमारी **माता** है ।
यज्ञ हमारा **पिता** है ।
योग हमारा **आचार्य** है ।
भक्ति हमारा **भगवान्** है ।

३२ आत्मा की पहचान—

इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दुःख ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम् ।।

—(न्या० सू० १०)

जिस शरीर में ये ६ चिह्न पाए जायें तो समझें कि इस में आत्मा है ।

वैसे आत्मा का स्वाभाविक गुण ज्ञान और प्रयत्न प्रसिद्ध है ।

३३. क्या-क्या चौबीस हैं इसे जानें—

(क) (i) चार वेद	आदि ऋषि	विवरण	मन्त्र संख्या
ऋग्वेद (ज्ञानकाण्ड)	अग्नि	(१० मण्डल, १०२८ सूक्त)	१०,५८९

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजु: (कर्मकाण्ड)	वायु	(४० अध्याय)	१,९७५
साम (उपासना-काण्ड)	आदित्य	(२७ अध्याय, ६+२१)	१,८७५
अथर्व (विज्ञानकाण्ड)	अंग्रा	(२० काण्ड, ७३१ सूक्त)	५,९७७
			२०,४१६

(ii) **चार उपवेद**—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, अर्थ शास्त्र ।

(iii) **छः वेदाङ्ग**--शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष ।

(iv) **चार ब्राह्मण-ग्रन्थ**—ऐतरेय (ऋग्वेद का)
शतपथ (यजुर्वेद का)
ताण्ड्य (सामवेद का)
गोपथ (अथर्ववेद का)

(v) छः दर्शन (उप वेदाङ्ग) और उनके रचयिता:—

योग — महर्षि पतञ्जलि जी
सांख्य — महर्षि कपिल जी
वैशेषिक — महर्षि कणाद जी
न्याय — महर्षि गौतम जी
वेदान्त — महर्षि वेदव्यास जी
मीमांसा — महर्षि जैमिनी जी कुल=२४

(ख) गायत्री मन्त्र के भी २४ शब्द हैं ।

(ग) शरीर के भी २४ अंग हैं ।

(i) **शिर का भाग**—(द्यौ लोक) बुद्धि, आँखें दो, कान दो, नासिका दो, मुख एक=८

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ii) **मध्य भाग**:—(अन्तरिक्ष लोक) आंत, फेफड़ा, हृदय (दिल), मन (चित्त), तिली, आमाशय (उदर)=८

(iii) **अधः भाग**—(पृथ्वी लोक) गुदा, उपस्थ, जंघाएं दो, पिण्डली दो (घुटने से नीचे का हिस्सा), पैर दो=८

(घ) चौबीस शक्तियाँ ब्रह्माण्ड में काम कर रही हैं—

रुद्र—११

बसु—८

नक्षत्र—५—मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि।

(ङ) **चौबीस पक्ष वर्ष में होते हैं**—

१२ शुक्ल पक्ष, १२ कृष्ण पक्ष

(च) चौबीस अंगुलि फासला सिर की चोटी से लेकर गर्दन के निचले भाग तक होता है, यह शरीर का द्युलोक है।

(छ) चौबीस अंगुलि फासला कण्ठ से लेकर नाभि तक होता है। यह अंतरिक्ष भाग है।

(ज) चौबीस मुद्रायें होती हैं, जिनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—

ज्ञानमुद्रा, वायुमुद्रा, सूर्यमुद्रा, प्राणमुद्रा, अग्निमुद्रा, पृथ्वीमुद्रा, सुरभिमुद्रा, वर्णमुद्रा, लिंगमुद्रा, शून्यमुद्रा, मृगीमुद्रा आदि।

इनमें से उपासना के लिए ज्ञानमुद्रा सर्वश्रेष्ठ है। पहली अंगुलि (तर्जनी) को ऊपर से अंगुष्ठ के साथ मिलाने से ज्ञानमुद्रा बन जाती हैं। जैसे कि महर्षि देव दयानन्द जी के आसन में बैठे चित्र में आप देखते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(झ) जीव की समर्थ शक्तियाँ २४ होती हैं—

बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भीषण, विवेचन, क्रिया, उत्साह, स्मरण, निश्चय, इच्छा, प्रेम, द्वेष, संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वादन, गन्ध-ग्रहण और ज्ञान।

(सत्यार्थ प्रकाश-समु० ९)

(ञ) हमारा शरीर २४ तत्वों का है—

मूल प्रकृति-१, महत्तत्व-१/अहङ्कार-१, पञ्चतन्मात्रा (सूक्ष्मभूत)/पाँच स्थूल भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और एक मन=कुल चौबीस।

—(यो० द० २-१९ की व्याख्या से)

३४. **३३ देवता**—इस संसार में ३३ दिव्य-शक्तियाँ काम कर रही हैं। इसीलिए इन्हें देव कहा जाता है—

८ बसु — अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य, द्यौ, चन्द्रमा और नक्षत्र गण।

११. रुद्र — **दस प्राण**—प्राण अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कुर्म, कर्कल, देवदत्त, धनञ्जय और ग्यारहवाँ आत्मा।

१२. आदित्य (मास) — जो कार्य-जगत् को क्षय की ओर ले जा रहे हैं।

१. इन्द्र — विद्युत्-शक्ति।

१. प्रजापति — यज्ञ-शक्ति।

३५. जैसे समिधा से भौतिक अग्नि प्रज्वलित होती है-—
वैसे स्वाध्याय से ज्ञान-अग्नि ,, ,,
चिन्तन से ध्यान-अग्नि ,, ,,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणायाम से प्राण-अग्नि प्रज्वलित होती है
देवयज्ञ से आत्म अग्नि ,, ,,
योग-समाधि से ब्रह्म-अग्नि ,, ,,

३६. स्वाहा का अर्थ:—

पूर्ण समर्पण का नाम स्वाहा है।

ऐसा बन जाए तो यह निकलता है—

न मैं मेरा न कुछ मेरा।

जो अर्पित हैं ये सब तेरा।।

३७. **बहनो, कहनो, रहनी, सहनी को यशस्वी बनायें।**

सजावट, बनावट, दिखावट, गिरावट से बचें।

३८. ज्ञान केवल इन्द्रियों से नहीं होता; किन्तु जब आत्मा का सम्बन्ध मन से, मन का सम्बन्ध इन्द्रियों से, इन्द्रियों का सम्बन्ध वस्तुओं से हो तब उस अर्थ का ज्ञान होता है।

३९. मरने के वाद—

प्राण वायु में लीन हो जाते हैं।
शरीर पृथ्वी में ,, ,,
आँख सूर्य में ,, ,,
मन चन्द्रमा में ,, ,,
कान दिशाओं में ,,
आत्मा आकाश में ,, ,,
देह के लोम औषधियों में ,,
केश वनस्पतियों में ,,
लहू व रस पानी में ,,
सब अपने-अपने कारण में ,,

बृहदारण्यकोपनिषद

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४०. ग्यारह उपनिषदों के नाम—

१. ईश, २. केन, ३. कठ, ४. प्रश्न, ५. मुण्डक, ६. माण्डूक्य, ७. तैत्तिरीय, ८. ऐतरेय, ६. छान्दोग्य, १०. बृहदारण्यक, ११. श्वेताश्वतर

४१. **प्रवृत्ति**—मन इन्द्रियों और शरीर को काम में लगाना प्रवृत्ति कहलाती है, ये राग, द्वेष और मोह के कारण से होती हैं।

यदि मन अकेला काम करता है तो वह कर्म मानसिक कहलाता है।

यदि मन और वाणी दोनों मिलकर काम करते हों तो वह वाचक कर्म कहलाता है।

यदि मन, इन्द्रियाँ और शरीर मिलकर काम करें तो वह शारीरिक कर्म कहलाता है।

४२. **पुण्य और पाप क्या**—

जिस कर्म का फल अन्त में सुख हो वह पुण्य कहलाता है।

जिस कर्म का फल भविष्य में दुःख-जन्य हो वह पाप कहलाता है।

४३. हाथ की अंगुलियों के नाम और देवता—

१. अंगुष्ठ इसका देवता अग्नि है।
२. तर्जनी ,, ,, वायु है।
३. मध्यमा ,, ,, आकाश है।
४. अनामिका ,, पृथ्वी है।
५. कनिष्ठिका ,, जल है।

४४. धन से आर्थिक बल बढ़ता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गायत्री-जप से बौद्धिक बल बढ़ता है।
प्राणायाम से प्राणों का ,, ,, ।
सन्ध्या उपासना योग से मानसिक ,, ,, ।
देव यज्ञ से आत्मिक ,, ,, ।
ब्रह्म-अग्नि में आत्म हविः ब्रह्मयज्ञ है।

४५. हमारे तीन शरीर हैं, जिनकी तीन आवश्यकतायें हैं और जिनको पूरा करने के तीन साधन इस प्रकार है—

३ शरीर	**इन्हें चाहिए**	**जिनका एकमात्र साधन है**
१. **स्थूल शरीर** जिसमें बाह्य पाँच ज्ञान, पाँच कर्मेन्द्रियां हैं।	सुख, जो मिलता है हर प्रकार की नीरोगिता से	अग्निहोत्र, देवयज्ञ
२. **सूक्ष्म शरीर** जिसमें मन, बुद्धि अहङ्कार है।	शान्ति, जो मिलती है हर प्रकार से चिन्ता-रहित होने से	जप, सन्ध्या, ब्रह्मयज्ञ
३. **कारण शरीर** हृदय जहाँ आत्मा का निवास है।	आनन्द, जो मिलता है केवल परमात्मा को समर्पण होने से।	योग यज्ञ-समाधि

इन तीन यज्ञों को किए बिना कोई भी, कदापि मुक्त नहीं हो सकता। इस ध्रुवसत्य को सदा याद रखें।

आज जो बीज नहीं रहा, कल (आगामी जन्म में) सारे सुख और सुखों के साधन कभी नहीं पा सकते, यह परमात्मा का अटल नियम है।

४५. **प्रश्न** तीन से कमरा खचाखच भरा है और बारीक सुई की नोक जितनी भी जगह किसी एक से खाली नहीं, किन्तु फिर किसी भी वस्तु से पूरा भर सकते हैं। वे तीन क्या हैं ?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर—आकाश, प्रकाश और वायु। इन प्रत्येक से कमरा भरा होने पर खाली रहता है। इससे सिद्ध होता है कि सूक्ष्म वस्तु व्यापक होते हुए भी कोई जगह नहीं घेरती।

जिन लोगों को बगैर यज्ञ किए सुख मिल रहे हैं, वे निश्चय जान लें कि ये उनके पिछले जन्म के यज्ञ, दान कर्मों का फल है और अब वे बासी खा रहे हैं।

४६. **प्रश्न**—कौन-सी चीज़ बन्द आँखों से भी जानी जाती है?

मनोयोग से सुनी जाती है?
हृदय से अपनायी जाती है?
बुद्धि से सराही जाती है?
चित्त में समायी जाती है?
हाथों से बजायी जाती है?
मुख से वाह! वाह!! कही जाती है?

उत्तर—सरस कविता।

४७. अब मैं कुछ अपनी निजी मान्यता लिख रहा हूँ:—

हम देखते हैं कि सृष्टि के इस भाग पर जब भारत में दिन होता है, तो अमेरिका आदि में रात होती है। ऐसे ही ब्रह्मा का भी कहीं दिन और कहीं रात (प्रलय) होती है।

इसे मैं इस तर्क से सिद्ध करता हूँ कि यदि यह माना जाए कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एक साथ प्रलय होती है, जैसे कहा जाता है, तो उस समय परमात्मा के निमित्त से बना हुआ संसार निश्चेष्ट हो जाएगा और उसका प्रवाह रुक जाएगा। यह कहना कि सृष्टि प्रवाह से अनादि है, ग़लत हो जाता है।

४८. दूसरी मान्यता मेरी यह है कि आजकल संसार के इस भाग में कलियुग चल रहा है, परन्तु इस समय और लोकों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कहीं सत्युग, कहीं त्रेता, कहीं द्वापर है। जैसे दुनिया के इस भाग में मौसम एक ही समय में भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न होते हैं। कहीं गर्मी, कहीं सर्दी, कहीं वर्षा, कहीं सूखा। पर मैं अपने पक्ष में एक और प्रमाण भी देता हूँ एवं अपनी मान्यता भी।

४६. मेरी तीसरी मान्यता यह है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी जो सन् १६४८ में शहीद हुए थे और महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज, जिन्होंने सन् १६६७ में चोला त्यागा था। उनकी दिव्य आत्माओं ने किसी अन्य लोक में जन्म लिया है। इसे मैं इस युक्ति से समझाता हूँ कि:—

इन महान् आत्माओं की इस जन्म में मुक्ति नहीं मानी जा सकती, क्योंकि मुमुक्षुत्व के सारे चिह्न उनमें नहीं थे। मैं यह बहुत नम्रतापूर्वक अदब से कहता हूँ। वे रजोगुण और तमोगुण रहित थे और उनमें सतोगुण प्रधान था। जब तक सतोगुण भी अपने कारण प्रकृति में लीन नहीं होता; निर्वाण कैसे हो सकता है? इसलिए मैं समझता हूँ कि इन महापुरुषों का अगला अन्तिम जन्म किसी और लोक में उत्तम युग में हुआ है।

बृहदारण्यकोपनिषद् के अध्याय ३, ब्राह्मण-६ में गार्गी के प्रश्न पर महर्षि याज्ञवल्क्य ने बहुत सारे लोक गिनाए हैं, जो इस प्रकार हैं:—

"अन्तरिक्ष, गन्धर्व, आदित्य, चन्द्र, नक्षत्र, द्यौ, इन्द्र, प्रजापति और ब्रह्मलोक।"

यदि उनका जन्म इस लोक में हुआ होता तो वे अब युवावस्था प्राप्त किए होते। शास्त्रों के ज्ञाता जानते हैं कि अगले जन्म में हमारा सूक्ष्म शरीर साथ जाता है, जब तक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्त नहीं होते और अगले जन्म में उसी योग्यता से आगे वह महान् आत्मा वैसे विशेष कार्य करने लग जाते हैं।

पूज्यनीय बापू जी में प्राणी-मात्र के प्रति अत्यन्त प्रेम था और वह अहिंसा के पुजारी थे। इस समय संसार में युद्ध, जैसे ईरान-ईराक में और हिंसा, जैसे भारत के पंजाब में, जहां बेगुनाह बच्चों तथा स्त्रियों को भी उग्रवादी कत्ल कर रहे हैं, सहन न करते। अवश्य यहाँ आते, जिस देश में उनका सम्बन्ध रहा और जहाँ उन्होंने अपना बलिदान दिया और इसके खिलाफ आवाज़ उठाते, विश्व शांति के लिए और संसार में महानाश के छाए बादल छिन्न-भिन्न करने में लगे होते। जिससे अनुमान हो जाता कि यह व्यक्ति महात्मा गाँधी की आत्मा हैं, परन्तु ऐसा कोई नहीं।

महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज जप, यज्ञ, योग के परम साधक और महान् भक्त थे, अगर उन्होंने कहीं जन्म लिया होता तो यज्ञ आदि की पुनः धूम मचा देते।

५०. मेरे इस कथन को आगम (शब्द) प्रमाण से परख लें, जिसे मैं गीता से उद्धृत कर रहा हूँ, जो कि वेद-मन्त्रों के आधार पर है—

भगवान् कृष्ण से अर्जुन ने पूछा कि "जिस श्रद्धावान् का शिथिल यत्न से योग सिद्ध न हो और इस जन्म में ईश्वर-साक्षात् न हो तो वह किस गति को प्राप्त होता है।"

(गी० ६-३७)

"कहीं प्रभु-भक्ति की राह में छिन्न-भिन्न बादलों की भाँति इस लोक और परलोक दोनों घरों से नष्ट तो नहीं हो जाता?" (गी० ६-३८)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् कृष्ण ने बड़े विस्तार से आगे कई श्लोकों में इसका उत्तर दिया कि :—

"हे पार्थ ! उस पुरुष का न तो इस लोक में, न परलोक में ही नाश होता है। क्योंकि हे प्यारे ! कोई भी शुभ कर्म भगवदर्थ करने वाला दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है।

(गी० ६-४०)

अगले दो श्लोक इस प्रकार हैं:—

प्राप्यपुण्यकृतां लोका-
नुषित्वा शाश्वतोः समाः
शुचोनां श्रीमतां गेहे
योग भ्रष्टोऽभिजायते ॥

(गी० ६-४१)

अर्थ कविता में:—

योग से भटका हुआ लोकों में ऐसे जाता है।
पुण्यात्माओं का जहां पर होता वास है ॥
बहुत समय तक ऐसे रहता है वहां।
फिर जन्म लेता है श्रीमान् का हो घर जहां ॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥

(गी० ६-४२)

अर्थ कविता में:—

या वह जा कर जन्म लेता है किसी योगी के घर।
जो इस संसार में है बड़ा दुश्वार तर ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगले तीन श्लोकों में कहा है; कि 'वहां उस पिछले शरीर में साधन किये हुए निर्मल, बुद्धियोग के संस्कारों को अनायास ही प्राप्त हो जाता है और हे कुरुनन्दन ! उसके प्रभाव से फिर अच्छी प्रकार भगवद्-प्राप्ति के निमित्त यत्न करता है। इस तरह पहले के अभ्यास से आगे बढ़ता हुआ निःसन्देह वह समत्व-बुद्धि-रूप योग का जिज्ञासु वेद में कहे हुए सकाम कर्मों के फल उल्लंघन कर जाता है और वह योगी साधना करता हुआ परम गति को प्राप्त हो जाता है अर्थात् परमात्मा को पा लेता है।"

५१. सेवा के लिए चार चीज़ें जरूरी होती हैं:—

ख़ादम, मख़्दूम, खिदमत और खितमत का सामान
सेवक, सेवा, सेविये, सेवा को सामग्री

५२. भक्त शिरोमणि परम गुरु नानकदेव जी महाराज के पद हैं जो ध्यान में रखने चाहिए, इसमें चन्द शब्द लेखक के हैं –

देह नैन बिन, रैन चन्द्र बिन, नारी पुरुष बिना।
कूप नीर बिन, धेनु क्षीर बिन, मन्दिर दीप बिना॥

तरुवर फल बिन, मेहन्दी रंग बिन पुष्प सुगन्धि बिना।
और जैसे पंडित वेद विहीना, वैसे मन हरि भजन बिना॥

५३. अब मैं प्यारे सनातनधर्मी भाइयों की ओर से स्वयं एक प्रश्न उठा रहा हूँ :—

किसी भी देवता को मानकर Supreme भक्तिभाव गर
जागें।
और इसके माध्यम से विषय-विकार सब भागें॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो क्यों जाने कि असली अराध्य क्या है ?
मीरां की तरह भगवान् क्या मिलता नहीं है ?

जानकर भी मैं इस उत्तर के लिए अन्जान बनता हूँ।
कि विद्वानों से स्वयं इस पर सुनना चाहता हूँ ।।

इसलिए यदि पूज्य विद्वान्-गण मेरी इन मान्यताओं और इस ऊपर उठाये प्रश्न पर अपने विचार प्रकाशित करायें तो मेरी उनसे विनीत प्रार्थना है कि वे मुझे कृपया उसका हवाला देकर सूचित कर दें। ताकि मैं लाभ उठा सकूं।

इस अध्याय को इन उद्‌गारों से समाप्त करता हूँ।

बिन पानी कौन डूबते हैं ?

जो शर्मो हया को खोते हैं, बिन पानी में वे डूबते हैं ।।

आत्मा को कब चैन आती है—

नदी जब मिलती सागर में तभी विश्राम पाती है।

आत्मा परमात्मा में जब मिले तो चैन आती है ।।

।। ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!! ओ३म् ।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

१३. उपासना-विधि

१. नित्यकर्म या उपासना विधि वही जानना चाहेगा, जिसे परमात्मा के दर्शनों की इच्छा है या उससे प्रेम है अथवा कोई आवश्य कता है या वह अपना कर्त्तव्य समझता है, किन्तु ऐसे बहुत कम व्यक्ति हैं। उपासना से लाभ के अध्याय में मैंने बहुत कुछ लिख दिया है। उपासना क्यों करनी चाहिए ? इस महत्व को दर्शाने के लिये अब मैं इस वृत्तान्त से आरम्भ करता हूँ।

२. बहुत काल पहले जब सफ़र करने के साधन रेल, बस आदि नहीं थे, तो लोग पैदल यात्रा किया करते थे। एक बार जो आजकल हरियाणा प्रदेश है, यहां के एक जाट किसान ने अपनी गेहूँ आदि की फसल काटकर वैसाखी के बाद (अप्रैल के अन्त में) एक साल का अनाज घर में रख अपने लड़के को आगे की खेती के लिए सब कुछ समझाकर हरिद्वार गङ्गास्नान के लिए जाते समय कह गया कि 'मैं वहाँ कुछ महीने ठहरूँगा, वापस माघी (जनवरी के आखिर) तक लौट आऊँगा'।

चलते-चलते रास्ते में बीमार हो गया। बेबसी और लाचारी में मार्ग की एक सराय में उसने शरण ली। वहां के कर्मचारियों ने उसकी निःशुल्क सेवा एवं इलाज करके स्वस्थ कर दिया। रहने के लिए कमरा, भिन्न-भिन्न प्रकार के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुचिकर जलपान, नाश्ता, भोजन, सुन्दर कपड़े, मनोरंजन के सामान और अत्यन्त सुख के साधन देकर हर प्रकार से तृप्त तथा प्रसन्न रखा। इस प्रकार छः महीने रहकर वहाँ से चलते समय उसके मन में आया कि जिसके कर्मचारी इतने उदार और ईमानदार हैं; इनका मालिक कितना महान् एवं ऐश्वर्य-शाली होगा, जिसके दान का कोई अन्त नहीं। निश्चय वे दर्शनीय और सम्माननीय हैं और मेरा कर्त्तव्य बनता है कि उनके दर्शन कर, अपनी कृतज्ञता प्रकट कर, प्रणामाञ्जलि देकर ही आगे यात्रा पर जाना चाहिए।

चुनांचे मैनेजर से उसने मालिक साहब का नाम, पता मालूम कर लिया कि आठ योजन दूर ब्रह्म नगर में उनका निवास है। हर समय मिलते हैं। उस वक्त की एक योजन दूरी एस समय का १०० किलो मीटर था। उन्होंने बताया कि प्रथम दो योजन रास्ता चढ़ाई-उतराई का बहुत कठिन है, आगे आसान है।

किसान मालिक का अत्यन्त ऋणी था। दृढ़ निश्चय किया कि चाहे कितना तप करना, कष्ट झेलना पड़े उन्हें अपनी प्रेम भरी श्रद्धामयी नमस्कारों की भेंट दिए बिना गंगास्नान को हरगिज़ प्रस्थान नहीं करूँगा। यह मेरा पहला धर्म बनता है। ऐसी भावनाओं को संजोये वह हर्षितमन बड़ी लगन उत्साह से उनके मिलन को चल पड़ा।

३. प्रिय पाठको! वह अनपढ़ किसान इतनी बुद्धि रखता था कि जिस मालिक के सेवकों ने उसे सुख और सुख के साधन दिए, उसे बिना जाने-देखे अपने काम पर जाना अत्यन्त कृतघ्नता एवं महापाप होगा। पर जो लोग उस परम पिता परमात्मा की अनेक कल्याणमयी देनों को देवों द्वारा प्राप्त

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर प्रतिदिन ऐश कर रहे हैं। किन्तु न तो उन प्राकृतिक देवों के प्रति देवयज्ञ करते हैं, न उनके स्वामी के प्रति ब्रह्म-यज्ञ करते हैं। उनके लिए वेदमाता, भगवान् कृष्ण चन्द्र जी और वेदव्यास जी ने कठोर शब्दों में इन किस्म के लोगों की निन्दा इस प्रकार की है—

"वे अधर्मी, पापी, दुष्ट, दुर्बुद्धि, चोर, अन्न खाने के अनधिकारी, केवल मल खाने वाले और दोनों लोकों से गये-गुज़रे हैं।"

४. कृतघ्न कितना महापापी होता है, यह इस उदाहरण से जानें:—

किसी जानवर-प्रेमी भूमिपति ने एक अपना चिड़िया-घर बना रखा था, जिसमें उसने मुर्गे, कौए, कबूतर, गीध, तोते, बत्तख, मैना, कुत्ते, बिल्ली, बन्दर आदि पाल रखे थे। उनके लिए जल भरा तालाब, उद्यान और सेवकों का बहुत सुन्दर प्रबन्ध ओर पानी का प्याऊ और यात्रियों के लिये आरामगाह। कदाचित् एक व्यापारी अपनी किसी से वसूली और कुछ सहायता के सम्बन्ध में कहीं जा रहा था। रास्ते में उसे प्यास लगी तो वहां कुएँ पर पानी पीकर पेड़ के नीचे आराम करने लगा। और प्रभु से करुणाभरी, वाणी में आतुर हृदय से प्रार्थना करने लगा कि 'प्रभु इतना धन दिला दो कि बेटियों की शादी सुगमता से हो जाये' इत्यादि। इसके बाद जब वह मायूस बैठा था तो उसके सामने की जगह पर एक मुर्गी ने पाँव से ज़मीन खोदना शुरू किया, बन्दर एक फावड़ा उठा लाया और खोदने का संकेत किया, उसने समझा कि इसके नीचे कुछ दबा हुआ है। खोदने पर चाँदी के सिक्कों से भरा एक पात्र मिला। वह बड़ो खुशी से लेकर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी आसामी की ओर चल पड़ा। कुछ दिन वहाँ अपना काम करके वापस लौटा रास्ते में भूख लगी तो उसके मन में दुर्विचार आया कि उस पूर्व स्थान पर मुर्गियाँ थीं, एक मुर्गी को मार कर ले चलता हूँ; आगे जाकर भूनकर खा लूंगा। वहां पहुँचा तो उसे एक मुर्गी नज़र आयी उसकी गर्दन मरोड़ कर अपने थैले में डाल लिया। इत्तफ़ाक से यह मुर्गी वही थी जिसने उसे भूमि खोदने का इशारा किया था। उसके इस कुकर्म को देखकर वहां के बन्दर, कुत्ते, कौए आदि उस पर झपट कर ज़ख्मी कर दिया, ओर वह तड़फ-तड़फ कर मर गया।

चिड़ियाघर के मालिक (संचालक) को जब यह सूचना मिली तो उसे बड़ा क्रोध आया कि यह कितना कृतघ्न, महा-पापी है, इसके मांस को कुत्तों और गीधों को खिलाना चाहिए। उसने अपने शिकारी कुत्तों और गीधों को वहां लाकर कहा कि 'इसके मांस को खाओ'। दोनों जातियों ने सिर हिलाकर खाने से मना कर दिया। मालिक समझ गया कि ये कृतघ्न होने की वजह से इसका मांस नहीं खा रहे हैं। इससे जानें कि जो किसी के अत्यन्त अहसानों की अवहेलना करता है, वह ऐसा घृणित और त्याज्य होता है।

५. मुस्लिम शासन का आखिरी हुक्मरान शहनशाह बहादुर शाह ज़फ़र जो शायर भी थे, उन्होंने यहां तक कहा है कि जिसको परमात्मा की याद और खौफ़ नहीं, वह इन्सान ही नहीं है।

ज़फर आदमी उसको न जानियेगा।
चाहे कितना हो साहबे फहमोज़ का[1]॥

---

१. विद्या एवं योग्यता वाका

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसे ऐश में यादे खुदा न रही।

जिसे तैश में खौफे खुदा न रहा॥

एक और मुस्लिम शायर ने परमात्मा के सुखों के गुणों की स्तुति एक नज्म में की है, जिसका एक पद इस प्रकार है:—

तू ही तबीब[1] मेरा तू, ही दवा है मेरी।

तू ही सकून मेरा, तू ही शफ़ा[2] है मेरी॥

यह जानकर भी परमात्मा की उपासना न करना सबसे बड़ी अविद्या और अज्ञान है। मुझे यह उपासना विधि इसलिए लिखनी पड़ रही है कि धार्मिक व्यक्ति जिस तरह से कर रहे हैं; उससे कुछ लाभ नहीं क्योंकि, वे वेद-विहित आज्ञाओं का पालन नहीं कर रहे।

६. ग्यारहवें अध्याय में आप ईशोपनिषद् मन्त्र-९ को पढ़ चुके हैं कि कितनी चेतावनी है, यदि ज्ञानपूर्वक उपासना नहीं की तो मनुष्य जाति से हीन हो जायेंगे। परमात्मा ने हमें चार इन्द्रियाँ अन्य सब प्राणियों से विशेष दी हैं—हाथ, वाणी (बाह्य), मन और बुद्धि (आन्तरिक)। जो इनका सदुपयोग नहीं करता, वह अगले जन्म में निश्चय इनसे वञ्चित हो जाता है। अर्थात् मनुष्य नहीं बन सकता।

इन्हीं इन्द्रियों से हमारे जाति, आयु और भोगों के कर्म बनते हैं (जाति का अर्थ मनुष्य या पशु आदि), जिनसे वेद-मन्त्रों द्वारा किया अग्निहोत्र यज्ञ के परिणामस्वरूप हम सर्वश्रेष्ठ मानव-जन्म, लम्बी नीरोग आयु और सर्व प्रकार

---

१. वैद्य

२. इलाज

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के उच्चतम सुख-ऐश्वर्यों के भोग प्राप्त कर सकते हैं।

७. परमात्मा को साक्षात् करने की उपासना-विधि केवल अष्टाङ्ग योग है। सब ऋषियों ने यही कहा है। भगवान् श्रीकृष्ण जी ने भी गीता में जो ज्ञान, कर्म, भक्ति-योग, दर्शन है, ऐसा ही कहा है। इसमें सांख्य का ज्ञान, यज्ञों का उपदेश और ध्यानयोग द्वारा भक्ति का निर्देश है। इसके छठें अध्याय के १० से १५ श्लोक में कहा है—

"योगी एकान्त में स्थित अकेला सतत, निरन्तर कामना, वासना, संग्रह रहित होकर अपनी आत्मा को परमेश्वर में लगाए।" —(श्लोक-१०)

"पवित्र स्थान में सबसे नीचे वस्त्र (दरी), उस पर मृग छाला और उस पर कुश का आसन बिछा कर न अति ऊँचा न अति नीचा, इस प्रकार से दृढ़-स्थापन करके"

—(श्लोक-११)

"उस आसन पर बैठ कर मन, चित्त और इन्द्रियों को एकाग्र और वश में कर अन्तःकरण एवं आत्मा की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करे।" —(श्लोक-१२)

"शरीर, सिर और ग्रीवा को सम करके अर्थात् रीढ़ की हड्डी-मेरुदण्ड सीधा रखकर अचल, निश्चल, स्थिर धारणा से नासिका के अग्र भाग पर ध्यान को टिकायें, अन्य किसी भी दिशाओं में वृत्ति न जाए" —(श्लोक १३)

भगवान् ने नासिका के अग्रभाग पर ध्यान लगाने को इसलिए कहा है कि इस स्थान पर संयम करने से दिव्य सुगन्धि आने लगेगी और जिस प्रकार भौंरा सुगन्धित पुष्प पर मुग्ध हो जाता है, उसी प्रकार मन रूपी भौंरा उसमें समाहित हो जाएगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ब्रह्मचर्य के व्रत में स्थित रहता हुआ भय रहित, अच्छी प्रकार शान्त अन्तःकरण वाला सावधान होकर मन को बस में करके परमात्म-परायण हो जाए।"

—(श्लोक-१४)

इस श्लोक में 'विगतभीः' (भयरहित) शब्द दर्शाता है कि भगवान् के ध्यान में बैठा हुआ साधक निर्भय हो जाता है, जैसे माता की गोद में बैठा हुआ शिशु। क्योंकि भक्त के योगक्षेम की चिन्ता भगवान् स्वयं अपने ऊपर ले लेते हैं। ऐसी उपासना से इतना महान् लाभ है।

"इस प्रकार आत्मा को निरन्तर परमेश्वर के स्वरूप में लगाता हुआ मन को वश में करने वाला अभ्यासी योगी उस शान्ति और आनन्द को प्राप्त कर लेता है, जिसे निर्वाण कहते हैं।" —(श्लोक-१५)

८. श्लोक १० में बताया है कि उपासना के लिए अलग कमरा या शुद्ध, शान्त, निर्जन, नीरव, रमणीक स्थान होना चाहिए, जहाँ पर कभी भी किसी किस्म की अन्य बातें नहीं होनी चाहिए, ताकि वहाँ के संस्कार भक्ति-भावों से ओत-प्रोत रहें, उस कमरे में ऐसे-ऐसे कपड़े या बोर्ड पर moto लिखे होने चाहिए।

(i) **ब्रह्मचारी, सदाचारी, योगी, ज्ञानी भक्त बनें।**
प्यारे प्रभु का दर्शन पाकर, अपना जीवन सफल करें॥

(ii) **हीरा जन्म अनमोल है, मिले न बारम्बार।**
इसको न गर सफल किया, डूबेंगे मंझधार॥

(iii) **प्रभु नैनों में बस रहे हो, हृदय में रम रहे हो।**
मैं हूँ संयुक्त तुम से कब आप भी जुदा हो॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(iv) सुख के माथे सिल पड़े, जो नाम हृदय से जाये।
बलिहारी वा दुःख को, जो तेरा पल-पल नाम रटाये ॥

(v) आदमी को चाहिए, दुनिया में रहना इस तरह।
कमल पानी में है रहता जिस तरह ॥

(vi) दोस्त दुनिया में नहीं कोई प्रभु से बढ़कर।
उसकी इमदाद से बढ़कर कोई इमदाद नहीं ॥

(vii) बेताब सदा कान रहें, प्रभु की वाणी सुनने।
आँखें रहों उसी के दीदार की प्यासी हरदम ॥

९. ग्यारहवें श्लोक में आसन के विषय में है, वह इस प्रकार का होना चाहिए। लकड़ी की चौकी १ मीटर लम्बी, १ मीटर चौड़ी और ऊँचाई आधा मीटर से थोड़ी कम हो, क्योंकि उस पर बैठकर आगे पुस्तकें, जल पात्र (ताम्बे की आचमनी), माला आदि भी रखनी होती है। कमरा बढ़िया सन्दल आदि की खुशबूदार अगरबत्ती धूप से सुगन्धित रखना चाहिए।

१०. महर्षि दयानन्द जी ने उपासना विधि इस प्रकार लिखी है—

"जब-जब मनुष्य लोग ईश्वर की उपासना करना चाहें, तब-तब इच्छा के अनुकूल एकान्त स्थान में बैठकर अपने मन को शुद्ध और आत्मा को स्थिर करें। सब इन्द्रिय और मन को सच्चिदानन्दादि लक्षण वाले अन्तर्यामी अर्थात् सब में व्यापक और न्यायकारी परमात्मा की ओर अच्छी प्रकार से लगाकर सम्यक् चिन्तन करके, उसमें अपनी आत्मा को नियुक्त करें। फिर उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना को बारम्बार करके अपने आत्मा को भली-भाँति उस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में लगा दें। इसकी रीति पतञ्जलिमुनिकृत योग शास्त्र में है। उन्हीं सूत्रों पर वेदव्यास मुनिकृत भाष्य के प्रमाणों से लिखते हैं—

उपासना के समय परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य विषय से और व्यवहार के समय सब अधार्मिक व्यवहार से अपने मन की वृत्ति को सदा रोकना चाहिए, यही योग है। इसी प्रकार परमेश्वर से दूर होने और उसकी आज्ञा के विरुद्ध बुराइयों में फँसने को वियोग कहते हैं।"

—(ऋ० भा० भू० उपासना विषय)

११. सम्पूर्ण वैदिक ग्रन्थों में जिनका ब्यौरा पिछले chapter १२ में दिया है इन सब में उपासना की विधि वेद के आधार पर अष्टाङ्ग योग ही बताया है।

तनिक विचारें कि भगवान् के पहले उद्धृत किए यज्ञ सम्बन्धी आदेश (पृष्ठसंख्या २५१) और ऐसे योग अभ्यास के लिए किसी मन्दिर में न यज्ञशाला है, न किसी भी मूर्त्ति के सामने या अलग से ध्यान-कक्ष बना हुआ है। भगवान् की आज्ञाओं का पालन करना भक्ति है केवल नमस्कार करना नहीं।

प्रातः जागरण

१२, साधक को गर्मियों में प्रातः ३ बजे और सर्दियों में ४ बजे तक उठ कर सर्वप्रथम समस्त दिशाओं धरती, गगन, आकाश, प्रकाश, दिशायें, वायु आदि को परमात्मा के विराट् स्वरूप की भावना से दो कर जोड़ हृदय के अन्तराल से प्रीतिपूर्वक भक्ति भरा प्रणाम करें और कमरे में लगे भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, महर्षि दयानन्द अथवा अपने-२ पूजनीय गुरुजनों के चित्रों को श्रद्धाभरी नमस्कार करें, ऐसे फोटो निजो शयनकक्ष में अवश्य लगाने चाहियें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर गायत्री-मन्त्र अथवा पाँच ब्रह्म मुहूर्त्त के मन्त्र पढ़ कर परमात्मा की स्तुति-वचनों से प्रार्थना करें कि उनकी दया से रात्रि में आनन्दपूर्वक सोये, प्रभु देव दिन भी मेरा धर्मानुकूल कार्यों में सुखपूर्वक गुज़ारें। यदि रात को कोई बुरा स्वप्न आया हो तो उसके लिए प्रायश्चित करें। तदनन्तर बिस्तर को त्याग, 'ओ३म् नमः तेरी दया' का जप करते हुए Bath room जायें।

उपासना स्थल

१३. मुंह हाथ धो या नहा कर उपासना स्थल पर बैठ कर मानसिक वातावरण को भक्ति-अनुकूल करने के लिए ऐसा भजन गा लें, जिसमें स्तुति और प्रार्थना दोनों हों, जैसे यह बनाया है या अलग-अलग दो हों।

स्तुति

सत्ता प्रभु जी तेरो, जग में समा रही है।
हर पुष्प में सुगन्धि, तेरी ही ग्रा रही है॥ १॥

रवि-चन्द्र ग्रौर तारे ग्राकाश में सजाये।
इन सब में ज्योति तेरी ही जगमगा रही है॥ २॥

विस्तृत वसुन्धरा पर सागर बनाये कैसे।
तह जिनकी मोतियों से क्या चमचमा रही है॥ ३॥

पृथ्वी को सारी तुमने रत्नों से भर दिया है।
जल-थल में तेरी महिमा, हे ईश! छा रही है॥ ४॥

पर्वतों की चोटी, कैसे ढकी बर्फ से।
महती तेरी कृति ये, प्रीति बढ़ा रही है॥ ५॥

दिन-रात, प्रात-सन्ध्या, मध्याह्न ढल रहा है।
हर ऋतु पलट-पलटकर जलवा दिखा रही है॥ ६॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे जगत् के नियन्ता क्या गायें तेरी लीला।
ये अद्भुत तेरी रचना, अचम्भे में ला रही है ॥ ७ ॥

प्रार्थना

हे ऐसे प्यारे भगवन्! निज शरण अपनी लीजे।
जो मल, अवर्ण, विक्षेप, सब दूर हमसे कीजे ॥ ८ ॥

दुर्गुण सभी मिटायें, गुण तेरे सारे लायें।
शुद्ध अन्तःकरण होवे, इस भाग्य को जगायें ॥ ९ ॥

विवेक-विराग लायें, फिर तुझ में जा समायें।
हो मिलन तेरा शीघ्र, ऐसी आशीष पायें ॥ १० ॥

यज्ञ-कर्म ही करें सब, उपकार भावना से।
उपासना हमारी हो, योग की विधि से ॥ ११ ॥

जप-ध्यान में अब लग रहे, तेरी प्रेरणा से।
वृत्ति निरुद्ध होवे, प्रीतम तेरी दया से ॥ १२ ॥

१४. यदि समय अधिक न हो तो केवल ये चार बन्ध गा लः—

प्यारे प्रभुजी ज्ञान का प्रकाश अपना दीजिए।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए ॥ १ ॥

लीजिए निज शरण अपनी जो सदाचारी बनें।
ब्रह्मचारी, निर्विकारी, वीर व्रतधारी बनें ॥ २ ॥

यज्ञ कार्य ही करें, पिता आपके आशीष से।
योग-मार्ग पर चलें, उपवर्ग के उद्देश्य से ॥ ३ ॥

जप-ध्यान में सो लग रहे हैं प्रेरणा से आपकी।
वरदान दें अब याद न आवे, किसी भी और की ॥ ४ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५. इसके बाद ओ३म् या गायत्री-जप एकाग्रचित्त होकर करें। फिर वेद या ऋषिकृत यामहात्माओं-गुरुजनों की रचनाओं का स्वाध्याय करें। इन सब में एक घण्टा प्रभु-अर्पण करें।

सैर पर जाने वाले जप, ध्यान करके, मौन रहकर हो आएँ और शारीरिक योग आसन व्यायाम भी करें। पर स्वाध्याय आधा घंटा प्रतिदिन रात तक किसी समय अवश्य हो। नित्यकर्म का अर्थ ही यह होता है कि वह कर्म जिसमें कोई छुट्टी नहीं। खाने का उपवास तो करें, परन्तु नित्यकर्म का त्याग कभी न करें।

स्वाध्याय में कम से कम संध्या, प्रार्थना-मंत्र, शांति-करण, स्वस्तिवाचन और यज्ञ मंत्रों के अर्थ तो अवश्य जान लें, जिससे लाभ हो।

संध्या में हम "**ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं**" (यजु० ३६-२४) मन्त्र हर रोज़ सुबह-शाम पढ़ते हैं। इसमें पहले "**पश्येम शरदः शतं**" आया है। उपासक उस सर्वदृष्टा, शुद्धस्वरूप, देवों के हितकारी परमेश्वर से यह वरदान मांग रहा है कि मैं सौ वर्ष तक देखता रहूं। अर्थात् जानता रहूं, ज्ञान प्राप्त करूँ।

पहले माता-पिता आचार्य से बड़े होकर स्वयं वैदिक ग्रन्थों के स्वाध्याय से जानें कि हमारे जीने का नियम, विधान, उद्देश्य लक्ष्य क्या है ? इसके पश्चात् मन्त्र में शब्द है "**जीवेम शरदः शत ७**" अर्थात् देव तेरी कृपा से मैं (सौ साल) पूरी आयु को प्राप्त करूँ और ज्ञान के अनुसार सुनूं, प्रवचन करूँ, अदीन रहूं और इससे भी अधिक ऐसे ही जीवन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यतीत करूँ। अगर यह भाव न होता तो पहले सौ साल जीने की प्रार्थना होती, क्योंकि जब जीएंगे, तभी देखेंगे, सुनेंगे।

दूसरे, केवल देखने-सुनने की प्रार्थना का मंत्र तो अंग-स्पर्श भी था, यह मन्त्र फिर महर्षि ने क्यों रखा ?

तीसरे, जब हमें यातायात के पहले नियम आते हों तो फिर ड्राईविंग लाईसेंस मिलता है।

चौथा, हम जब कहीं जाते या कुछ करते हैं तो किसी उद्देश्य से। तो दुर्लभ मानव जीवन के उद्देश्य को जाने बिना क्या जीना हुआ।

इसलिए जानने (ज्ञान) की प्रार्थना पहले की, तदनुसार कर्म करें ताकि उपासना प्रार्थना का फल मिले, 'यथा प्रार्थना तथा साधना' के सूत्र को हम सदा याद रखें। प्रार्थना के अनुसार यदि आचरण नहीं करें तो वह प्रार्थना स्वीकार नहीं होती, इसीलिए स्वाध्याय ज़रूरी है।

यज्ञ-स्थल पर

अब स्नान करके स्वच्छ धोती-कुर्ता (याजक का वेश पीताम्बर होता है) पहनकर मौन रहते हुए यज्ञ-स्थान पर प्रसन्न और दत्तचित्त हो ज्ञान-मुद्रा (पहली-तर्जनी को ऊपर से अंगूठे के साथ मिलाकर) में पूर्वाभिमुख होकर आसन ग्रहण करें। इन दो अंगुलियों का देवता क्रमशः वायु और अग्नि हैं। उनके संयोग से जैसे अग्नि शीघ्र एवं अधिक प्रज्वलित होती है, वैसे ही आध्यात्मिक ज्ञानाग्नि इस मुद्रा में बैठने से जागृत रहती है। ऐसा मुद्रा-विज्ञान शास्त्र में लिखा है।

गर्मियों में प्रातः ५ बजे और सर्दियों में ६ बजे तक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपस्थित हो जायें। समय की पाबन्दी प्रत्येक आध्यात्मिक साधना में अनिवार्य है। परिवार के सदस्य यथायोग्य एक-दूसरे को हाथ जोड़, मस्तक झुका, मौन नमस्कार करते हुए बैठते जायें।

१६. सन्ध्या विधि

आरम्भ ओ३म् के तीन दीर्घनाद से करें। इससे प्राणायाम भी हो जाता है। फिर गायत्री-मन्त्र पढ़कर उसके अर्थ इस प्रकार की कविता में गायें:—

कविता:—

ओ३म् है प्राणों से प्यारा, दुःख का मोचन हार है।
सब सुखों का दाता है, आनन्द का भण्डार है।।

सविता है विज्ञानमय प्रकाश का प्रकाश है।
है प्रेरक जगत् का और सबका सर्जनहार है।।

भक्त हों हम उस प्रभु के, ऐसी इच्छा सब करें।
प्रेम से उसके गुणों का रात-दिन चिन्तन करें।।

शुद्ध बुद्धि दीजिए प्रभु! मेधा-बुद्धि दीजिए।
हैं द्वारे आपके स्वयं ही रक्षा कीजिए।।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।।
ओ३म् है प्राणों से प्यारा······ ।।

१७. अब सन्ध्या आरम्भ होती है शिखा-बन्धन से, जिसका तात्पर्य है कि शिर के अन्दर बिखरी हुई शक्तियों और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृत्तियों को बांधना अर्थात् एकाग्र करना । बाह्य शिखा का बन्धन तो आलंकारिक है।

फिर गायत्री-मन्त्र पढ़कर मैं समर्पण-मन्त्र से प्रार्थना करता हूं ।

हे ईश्वर दयानिधे भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादि-कर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः ।।

अर्थः—

हे ईश्वर दयानिधे ! आपकी अनन्त दया, कृपा, करुणा, मिहर, अनुग्रह, बख्शिश, दी हुई सामर्थ्य शक्ति, योग्यता, प्रेरणा, एकाग्रता, निश्चिन्तता, नीरोगिता आदि से हम शुभ कार्य कर पाते हैं ।

हे परम पावन देव ! दया करो कि धर्म जो सत्य और न्याय का आचरण करना है, अर्थ जो धर्म साधनों से वस्तुओं का उपार्जन करना है, काम जो धर्म, अर्थ एवं न्याय से प्राप्त किये इष्ट भोगों को सेवन करना है । आपकी राह पर लगाना है । यज्ञकर्मों में व्यय करना है और मोक्ष जो तीनों प्रकार के तापों अर्थात् आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक दुःखों से सर्वथा छूटकर आनन्दमय अवस्था को प्राप्त करना है । कृपा करके इन चारों पदार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि हमें शीघ्रतम प्रदान करो । **इति समर्पणम् ।**

१८. यह पहले इसलिये पढ़ता हूँ, क्योंकि संकल्प, व्रत, समर्पण प्रार्थना से शुभ कार्यों को आरम्भ करने का विधान है । इस पुस्तक के पृष्ठ २ पर दिए प्रार्थना-मन्त्र में साधक कहता है—

'आदि करता हूं सब कर्मों को लेकर तेरा नाम प्यारे ।'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सन्ध्या का पहला आचमन-मन्त्र (पृष्ठ-२३८ पर उद्धृत) भी इस विधि का प्रमाण है जिसमें उपासना का उद्देश्य है।

१९. **आचमन**—इसके पश्चात् तीन आचमन करके अङ्ग-स्पर्श एवं मार्जन-मन्त्रों में इन्द्रियों का स्पर्श जल से नहीं बल्कि मन से करता हूँ ताकि वृत्ति बाहर जल-क्रिया में न जाये।

दूसरा; क्योंकि कपड़े पहनकर सन्ध्या करते हैं, इसलिए जल का स्पर्श सब अंगों पर हो ही नहीं सकता।

तीसरा; इन्द्रियों में यश, बल जल के स्पर्श से नहीं, मन जो इन्द्रियों का स्वामी है, उसके दृढ़ संकल्प शक्ति से आता है।

आचमन-महत्त्व

२०. अब इसे जान लें —

(i) उपासना का इष्ट देवता या आदर्श जल है। इसके गुण, कर्म, स्वभाव उपासक में होने चाहिए; जिसका वर्णन अध्याय ११ में किया है। जल के विनय-योग से इस मन्त्र का नाम भी आचमन-मन्त्र हुआ।

(ii) उपासना के लिए बाह्य स्थान, वस्त्र, आसन आदि की पवित्रता के साथ आन्तरिक शान्ति भी अनिवार्य है। जल में पवित्रता और शान्ति के दोनों गुण हैं। इन भावनाओं को जीवित और सजीव करने के लिए मानसिक शान्ति और पवित्रता भी जरूरी है।

(iii) ईर्ष्या, राग, द्वेष, क्रोध आदि के विकार मन में चञ्चलता न लायें, इसलिए शीतल जल का आचमन करते हैं।

(iv) उपासना के लिए शारीरिक, मानसिक और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मिक त्रिविध शान्ति चाहिए। इन तीनों की उन्नति के उद्देश्य से तीन आचमन किये जाते हैं।

शतपथ ब्राह्मण के आरम्भ में महर्षि याज्ञवल्क्य आचमन के सम्बन्ध में लिखते हैं:—

तद् यदप उपस्पृशति तेन हि
पूतिरन्ततः पवित्रं वा आपः ।।

(शत० १-१-५-१)

अर्थात् जो यह जल का आचमन किया जाता है। उससे आन्तरिक पवित्रता होती है। क्योंकि जल पवित्र करने वाला है।

(v) जल के आचमन से राजसिक और तामसिक वृत्तियों का क्षय होता है और सात्विक वृत्तियाँ जागृत होती हैं, जो ब्रह्म-प्राप्ति का साधन हैं।

(vi) जल से एक भावना यह भी बनती है कि जैसे व्याकुल अतिशय प्यासा चन्द घूंट जल के लिए सारी दुनिया के वैभव और साम्राज्य को त्याग देता है। वैसे ही परमात्मा के मिलन की चाह में बैठे उपासक को अन्य कोई प्रलोभन विचलित न करे।

(vii) जल के आचमन से सुस्ती जाती है, चुस्ती आती है और कफ आदि की निवृत्ति होती है।

२१. महर्षि दयानन्द जी ने संस्कार-विधि में पञ्चमहायज्ञ विधि के अन्तर्गत अघमर्षण मन्त्रों और उपस्थान मन्त्रों के बाद भी **शन्नो देवो**…'मन्त्र के साथ जल के तीन-तीन आचमन लेने के लिए लिखा है। मैं इसके महत्त्व को नहीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानता और सन्ध्या में ध्यान को विचलित करना नहीं चाहता। एकाग्रता भंग न हो इसलिए मैं नहीं करता; क्योंकि सन्ध्या ध्यान-योग है।

विद्वान् मध्य के इन तीन जल-आचमनों के विशेष महत्त्व एवं आवश्यकता को दर्शाने की कृपा करें। महर्षि ने आचमन का प्रयोजन यहाँ एकमात्र लिखा है—"आचमन से गले के कफादि की निवृत्ति होना प्रयोजन है।"

'शन्नो देवी'......मन्त्र से ही तीन जल-आचमन करके अग्नि-होत्र-यज्ञ प्रारम्भ करने के लिए कहा है। जबकि **'ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि'** आदि की विधि से होता है।

उन्होंने सन्ध्या के मन्त्रों का संकलन जिस क्रम से किया है, उससे उनकी महान् प्रज्ञा और प्रतिभा का परिचय मिलता है।

२२. **प्रार्थनामन्त्र**—सन्ध्या के पश्चात् अग्निहोत्र यज्ञ के प्रारम्भ में ८ प्रार्थना-मन्त्र पढ़े जाते हैं। प्रायः विद्वान् और संन्यासी भी पहले मन्त्र के आरम्भ में ओ३म् लगाते हैं, बाकी मन्त्रों में नहीं। किन्तु भक्तों को हर मन्त्र के साथ प्यारे प्रभु का ओ३म् नाम अवश्य लगाना चाहिए। इससे परमात्मा में प्रीति बढ़ती है। सन्ध्या के दूसरे, तीसरे, चौथे मन्त्र में हर पद के साथ ओ३म् लगा हुआ है। इन मन्त्रों के उपरान्त आत्मीय समर्पण भावनाओं से और विकलता से अपने शब्दों में, हृदय के अन्तराल से, गहन संवेदना, प्रेम से द्रवित होकर परमात्मा से ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए कि प्यारे पिता आपकी कृपा से हमारे अन्दर जो भी दुर्गुण, दोष, विकार, रोग, पीड़ा हैं सब दूर हों और आपके गुण, कर्म, स्वभावों को धारण करें। तथा प्रभु से माँगें उनका प्यार,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुलार, स्नेह, पवित्रता, भक्ति, ज्ञान, प्रकाश, सत्कर्मों में प्रेरणा, दोषों पर विजय और उसकी प्रसन्नता तथा आशीर्वाद आदि। इसे करते-करते भाव-विभोर होकर नयन सजल हो जायें। प्रार्थना के अनुसार कर्म-साधना होनी चाहिए और उसमें जो बाधा, विघ्न, कठिनाई आये उसके लिए प्रभु की सहायता माँगनी चाहिए।

२३. प्रार्थना द्वारा परोक्ष से सहायता मिलती है। यह पर्वतों को भी हिला देती है और अभीष्ट तक पहुँचा देती है। प्रायः बहुधा कम लोग प्रार्थना करते हैं और जो करते भी हैं, वे हवन-मन्त्र की पुस्तकों में प्रकाशित प्रार्थना को रटकर करते हैं, जिससे कुछ लाभ नहीं होता।

इस सम्बन्ध में महात्मा प्रभु आश्रित जी की 'गायत्री रहस्य' में पृ० ४०२ के ये विचार ध्यान रखने योग्य हैं:—

"जप और सन्ध्या आदि यज्ञ करने वाले सज्जनों को स्वाध्याय और प्रार्थना अवश्यमेव करते रहना चाहिए। स्वाध्याय तो नाना प्रकार के दोषों और दुर्विचारों को रोकने के लिए बाढ़ का काम देता है और प्रार्थना जल का। किसी खेती के भली-भाँति फलने-फूलने के लिए ये दोनों परमावश्यक हैं। जो लोग सन्ध्या, जप और अग्निहोत्रादि यज्ञ तो नित्य करते हैं, परन्तु प्रार्थना नहीं करते, उनकी खेती मानो बिना जल के सूखी रहती है और फल नहीं सकती।"

"स्वाध्याय के बिना सब सन्ध्या, जप, यज्ञ, हवन ऐसा ही होगा जैसा उपजाऊ हरी-भरी खेती पशुओं के हवाले कर दी जाए। यह पशु हमारी पाशविक वृत्तियों के सिवाय और दूसरे कोई नहीं। इन्हें काबू में रखने के लिए स्वाध्याय से अच्छा साधन और कोई भी नहीं हो सकता।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ विधि

यज्ञ स्थल पर बैठते ही जहाँ अखंड अग्नि नहीं, घी की ज्योति व अगरबत्ती जलाएँ। जल, घी, सामग्री (जिसमें दूध मिला हो) समिधाएँ बड़ी व छोटी (जो आठ अंगुलि सीधी हों), पंखा, चिमटा आदि रख लें पुस्तकों के लिए चोकी होनी चाहिए।

२४. प्रार्थना के बाद गायत्री-गायन करें और फिर उस ज्योति से अग्नि प्रज्वलित करें। एक याजक की जिम्मेवारी हो कि वह ख्याल रखे कि अग्नि बुझने न पाए, मन्द न हो, धुआँ न दे और हवनकुण्ड से बाहर ऊँची उठे। ताकि उस द्वारा हमारी आहुति सम्पूर्ण लोकों में पहुंचे। वरना भू लोक अर्थात् पृथ्वी पर ही रह जाएगी।

यज्ञ करते समय हमारा ध्यान मन्त्रों के अर्थों में हो और दृष्टि हमारी प्रदीप्त अग्नि की ज्वाला में एकाग्रचित्त से हो, जैसे **बाह्य त्राटक** होता है। इसे परमात्मा का ज्योति-स्वरूप समझकर उसका अवलोकन करें। इससे धारणा सिद्ध होकर आन्तरिक ध्यान बन जाएगा और आत्म-अग्नि प्रज्वलित हो जाएगी। इससे बढ़कर ध्यान का अन्य कोई साधन श्रेष्ठ नहीं हो सकता।

२५. **यज्ञ-अग्नि की ज्वाला पर त्राटक का महत्त्व**

याजक में अग्नि के गुण आ जाते हैं। उसके मल, अवर्ण, विषय, विकार, खोट दूर होते हैं। निर्मलता, ज्ञान, प्रकाश और जैसे अग्नि की ज्वाला ऊपर को उठती है, वैसे ही वह ऊँची आध्यात्मिक उन्नति करता है।

त्राटक किसे कहते हैं

किसी शान्त स्थान पर आसन की स्थिति में ढ़ाई फुट

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की दूरी पर बैठकर रुपये के बराबर किसी काले बिन्दु पर खुले नेत्रों से लगातार देखते रहने का अभ्यास बाह्य त्राटक कहलाता है। अधिक बोझ आँखों पर न पड़े, उतनी देर यह अभ्यास किया जाता है। ऐसे ही आन्तरिक त्राटक होता है, इस अभ्यास से ही जादूगर मिस्मरेजम और हिप्नाटेजम की महती शक्तियाँ प्राप्त करते हैं।

२६. बाह्य त्राटक से यज्ञ-समय ध्यान जब अग्नि की ज्योति में समाहित रहता है, तो उसके पश्चात् वही अभ्यास हृदय-मन्दिर को आलोकित और ज्योतित कर लेता है और अग्नि की ज्योति आसानी से वहाँ टिक जाती है। उस हृदय में टिकाये विशुद्ध अग्नि-स्वरूप पर आभ्यान्तर-त्राटक से उसी ज्योति में ध्यान की पराकाष्ठा को प्राप्त हो समाधि बन आएगी। आतमा का मल अवर्ण, विक्षेप उस पवित्र अग्नि से आयी हुई पावन-ज्योति से दूर हो जायेंगे। आत्म-स्थिति, सम्पर्ग्यात्-समाधि निश्चय बन आएगी। बाद में विदेह अवस्था रहेगी। आगे परमातम-दर्शन में फिर क्या देर हो सकती है ? अग्नि अखण्ड करके इसमें यदि यज्ञ हो तो इसका महत्व विशेष होगा।

ये इस यज्ञ का आध्यात्मिक लाभ है। आदि दैविक लाभ है, देवों के ऋण से उऋण होना।

आदि भौतिक लाभ है। जल वायु की शुद्धि और वर्षा से अन्न की वृद्धि।

अब हम समझें कि अखण्ड अग्नि से पवित्रतम ज्वालायें प्रकाशित हों। इसके लिए सर्व श्रेष्ठ शुद्ध घी और सामग्री (गाय के दूध से मिश्रित) हो तथा निर्मल अन्तःकरण से वेद-मन्त्रों को मधुर कण्ठ से गाकर प्रसन्नमन, हँसमुख और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम भरी श्रद्धा से **ओ३म् स्वाहा** कह कर नम्रता एवं सत्कार पूर्वक आहुति समर्पित करें, तो बहुत लाभ होगा।

२७. **ओ३म् स्वाहा** (वाह ! वाह !) में हमारी भावना हो कि परमात्म-ज्योति स्वरूप का तेजस्वी, सुनहरा रूप हवन-कुण्ड से प्रगट हो रहा है। भक्त-याजक को वह अपने प्यारे प्रीतम का अतिशय सुन्दर स्वरूप हृदय को ऐसा भाता और प्यारा लगता है कि अकस्मात् बरबस वह **ओ३म् स्वाहा** कहे बिना नहीं रह सकता। जैसे किसी महान् कवि की हृदयस्पर्शी, रोचक, विचित्र कविता का मधुर गायन के रसास्वादन से सहसा, अनायास, तत्काल, बेसोचे-समझे मुख से वाह-वाह निकले बगैर नहीं रहती और अपने आप हाथों से ताली पिट जाती है। यह स्वाभाविक है, कौन नहीं जानता ?

वैसे ही जब भक्त को अपने परम पिता परमात्मा की अतिशय सुन्दर झाँकी दृष्टिगोचर हो रही हो, वह कैसे गदगद हृदय से **ओ३म् स्वाहा** ! **ओ३म् स्वाहा** !! **ओ३म् स्वाहा** !!! नहीं कहता जाएगा।

दो साल पहले मैं किसी सज्जन के यहाँ उनके लड़के के नाम-करण संस्कार के उपलक्ष में एक विशेष-यज्ञ करवा रहा था; उसमें मैंने और वेद के मन्त्रों के साथ अपनी शैली के अनुसार **ओ३म् स्वाहा** कह कर आहुतियाँ दीं। उनके यहाँ आर्य समाज के एक विद्वान् और संन्यासी भी आमन्त्रित थे; उन्होंने मुझसे कहा कि "ऋषियों ने स्वाहा के साथ ओ३म् लगाना नहीं लिखा है।" मैंने उनसे नम्रतापूर्वक कहा कि "आप यह बतायें कि ओ३म् न लगाये, यह कहाँ लिखा है।" इस पर वे प्रमाणित उत्तर नहीं दे सके, केवल हवन मन्त्रों की पुस्तक से दिखाया कि सिर्फ स्वाहा लिखा है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब मैंने कहा सिर्फ़ यजुर्वेद के पहले मंत्र के साथ ओ३म् छपा है और चारों वेदों में किसी मंत्र के साथ नहीं, इसलिए सिवाय "**ओ३म् इषे त्वोर्जे त्वा**" इस मंत्र के अलावा किसी और के साथ 'ओ३म्' नहीं लगाना चाहिए। उन्होंने कहा "हम बहस नहीं करना चाहते।"

२८. लाभ भावना से होता है, परम वन्दनीय महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज ने इसे निम्नलिखित उदाहरण से दर्शाया था।

किसी ने नदी में जाल डाल कर खाने के लिए मछली पकड़ी, बाहर निकाली, जाल एक जगह से थोड़ा कटा हुआ था, वहाँ से निकल कर वह पुनः जल में चली गई। अब यद्यपि उसने मछली खाई नहीं, फिर भी उसे खाने जैसा पाप लगेगा।

दूसरे किसी आदमी ने देखा कि पेड़ पर एक साँप चढ़ा जा रहा है। ऊपर पक्षी के घोंसले में नन्हें बच्चे हैं, उन्हें खा जाएगा। उसने उसे मारने को पत्थर ज़ोर से फेंका, ग़ल्ती से वह साँप के बजाय पक्षी के नवजात बच्चे को लगा और वह ज़ख्मी हो कर नीचे गिरकर मर गया। इसका अपराध उसे नहीं लगेगा। बल्कि उसकी यज्ञ-भावना का मानसिक पुण्य मिलेगा।

सरकारों के न्याय-कानून में भी ऐसे अपराध का कोई दण्ड नहीं मिलता।

२९. दैनिक यज्ञ के साथ किसी न किसी **वेद का यज्ञ** निरन्तर करते रहें। पहले यजु०, साम०, छोटे वेदों से प्रारम्भ करें, फिर ऋग्०, अथर्ववेद से। तकरीबन ३० आहुति रोज़ देने से दो साल में चारों वेदों का यज्ञ-लाभ हो जाएगा। यदि ऐसा न करें तो गायत्री-माला की एक आहुति दें, जिसमें

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दस मिनट तक लगते हैं। बीमारी की हालत में या जब कभी बाहर हों तो केवल ज्योति जगा कर उसमें घी की आहुति देकर यज्ञ कर लें। यज्ञ करते समय एक हाथ से आहुति दें और दूसरा हाथ ज्ञान-मुद्रा में हो।

यज्ञ की समिधा:—पीपल, बड़, ढाक, आम, पलाश, जड़, बेरी की होनी चाहिए।

याजक को यज्ञोपवीत अवश्य धारण किये रहना चाहिए

बीड़ी-सिगरेट पीने वाला, अण्डा-मांस खाने वाला यज्ञ न करे। उसे कोई लाभ नहीं होगा या ये दोष छोड़ने का संकल्प लेकर शुरू करें।

यज्ञ की समाप्ति पर कोई भक्ति-भजन, स्तुति, उपासना, प्रार्थना, वैराग्य, त्याग, चेतावनी का बड़ी श्रद्धा से गाना चाहिए।

तदनन्तर किसी वेद-मन्त्र की विनय या व्याख्या पढ़नी चाहिए। इसके लिए **'वैदिक विनय', वेदालोक, वेद मन्जरी' स्वाध्याय-सिन्धु, श्रुति सौरभ** आदि हैं। अथवा किसी भी ऋषि ग्रन्थ या महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज की जैसी पुस्तकों को पढ़ना चाहिए, अन्त में शान्ति-पाठ हो।

यह कार्यक्रम एक घण्टा करना चाहिए। जो सूर्योदय से कुछ मिनट पहले समाप्त हो जाए।

सूर्यदेव नमस्कार

३०. फिर यज्ञ-स्थल से उठकर जहाँ सूर्य भगवान् के शुभ दर्शन हो सकें, वहाँ जायें और सूर्यदेव को नमस्कार करें।

सूर्योदय से ७ मिनट पहले और ८ मिनट बाद तक उषा की लालिमा और सूर्य को निहारें। फिर आँखे बंद कर के मानसिक दृष्टि से वही स्वरूप आज्ञा चक्र पर देखें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब वह दृश्य विलीन हो जाए, तो पुनः ऐसा अभ्यास करें। इससे आंखों की दृष्टि तेज होती है।

ऐसे ही यज्ञ की अग्नि की ज्वाला पर खुली और बंद दृष्टि से अभ्यास करें, तो यह ज्योति पहले आज्ञा-चक्र में और फिर हृदय-चक्र में कुछ महीनों के बाद स्थिर हो आएगी। इस विश्वास के साथ मैंने स्वयं ऐसा अभ्यास शुरू कर दिया है।

आँखों का देवता सूर्य है। यदि नयन अपने देवता के आगमन की प्रतीक्षा में उनके स्वागत के लिए बेताब और बेकरार नहीं होते तो शक्तिशाला नहीं रह सकते। उभरते सूर्य की सुनहरी रश्मियाँ गर्मियों में नंगे शरीर पर और सर्दियों में कम से कम निर्वस्त्र छाती पर प्रतिदिन धारण करें। जिससे आरोग्यता का अतिशय लाभ हो।

३१. हम दैनिक यज्ञ में इन मन्त्रों की आहुतियाँ देते हैं।

ओ३म् सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥

ओ३म् सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥

ओ३म् ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥

(i) परम सूर्य परमात्मा की ज्योति से प्रकाशित सूर्य के लिए हमारी प्रसन्नता भरी आहुति समर्पित है।

(ii) सर्वप्रकाशक, जगत् प्रकाशक, सूर्य की काँति, सूर्य द्वारा प्राप्ति के लिए हमारी आह्लादित आहुति समर्पित है।

(iii) जिस सर्व प्रेरक, परम देव सूर्य की ज्योति से सब ब्रह्माण्ड जगमगा रहे हैं, ऐसे सूर्यों के सूर्य दिनकर को अनुग्रह के लिए आहुति समर्पित है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे सूर्य के प्रति, जिनको हमने यज्ञ की आहुतियों द्वारा सम्मानित किया है, उनके प्रत्यक्ष दर्शनों की अभिलाषा लिए आत्म-प्रणाम होना चाहिए।

जैसे सूर्य के सम्मुख होकर कमल खिल जाता है, उसी प्रकार हमारे हृदय-कमल में आत्मा अपने प्यारे ज्योति-स्वरूप की ज्योति सूर्य के माध्यम से देख कर प्रफुल्लित हो जाती है। इसे श्रद्धा के नयनों से देख लें।

३२. वेद का परमज्ञानी भक्त ऋषि इस मन्त्र में उदय होते सूर्य के दर्शनों की अभिलाषा लिए परमात्मा से आशीर्वाद माँग रहा है।

देवता-विश्वेदेवा

ओ३म् विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्।
तथा करत् वसुपतिर्वसूनां देवां ओहानो अवसागमिष्ठः॥

—(ऋ० ६-५२-५)

अर्थ:—

वसुपतिर्वसूनां=हे वसुओं के वसुपति! अनन्त ऐश्वर्यों के भण्डार प्रभु! (हम तेरे अनुग्रह से)

विश्वदानीं=सदा सर्व काल

सुमनसः स्याम=प्रसन्न मन वाले, आनन्दित हँसमुख रहें।

नु उच्चरन्तम् सूर्यम्=और उदय होते हुए सूर्य को

पश्येम=देखते रहें (ज्ञान-प्रकाश के आलोक में जीवन बसर करें और)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवाँ श्रोहानो = देवों, विद्वानों आप्त गुरुजनों से युक्त रहें (और)

तथा करत् = उनके उपदेशों के अनुसार वैसा करें।

श्रवसा श्रागमिष्ठः = हे रक्षण-शक्तियों से निकटतम आने वाले सर्वश्रेष्ठ प्रभु ! हमें सदा अपनी रक्षा में लें।

३३. **अर्थ कविता में:—**

हे सर्वधनों-देनों के स्वामी, कृपा ऐसी महान् करें।
उदित सूर्य के दर्शन करते, हृदय-ज्योति तेरी धरें ॥

गुरुजनों से ज्ञान को पाकर, आचरण तदनुसार करें।
तेरी रक्षा में रह कर प्रसन्न मन हम सदा रहें ॥

ऐसी सूर्य-सम्मुख प्रार्थना तक हमारी सारी इन्द्रियाँ, प्यारे प्रभु-निमित्त अर्पण हो जाती हैं, अब हम इनको भौतिक कार्यों में लगायें।

३४. यदि प्रातःकाल के यज्ञ में सायंकाल की आहुति दे देते हैं तो फिर सायंकाल केवल सन्ध्या सूर्यास्त के समय पश्चिमाभिमुख होकर करें। इसमें आत्म-निरीक्षण अत्यावश्यक है। जैसे पुस्तक के पृष्ठ २३४-२३५ पर अन्तिम कॉलम में लिखा है। इसमें मन की भी पड़ताल किया करें (जो इन्द्रियों का स्वामी है, जिसके कारण इन्द्रियों में दोष आते हैं) कि इसमें ईर्ष्या, राग, द्वेष, वैर, विरुद्ध भावना, दुश्चिन्तन आदि तो नहीं आया ? यदि किसी भी इन्द्रिय से कोई अधर्म कार्य हुआ हो, तो प्रायश्चित करें और प्रभु से प्रार्थना करें कि ऐसी भूल फिर न हो तथा स्वयं पापों-अपराधों से बचते रहें। वरना रुद्रदेव के कठोर दण्ड से बच नहीं सकते। पापों,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपराधों से तब बच सकते हैं, जब यह जानें और मानें कि सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी और कर्मफलदाता, देव सविता हमें निरन्तर देख रहे हैं। जैसे चौक पर सिपाही खड़ा हमें देख रहा हो तो हम यातायात के किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं करते; इस भय से कि अभी १००/- या २००/- रुपये का जुर्माना हो जाएगा। इसी प्रकार हमें परमात्मा की सर्वव्यापकता से सदा यह ज्ञान, भान और ध्यान रहे कि हम उसके अटल नियमों के अनुसार तत्काल उस अपराध के दण्ड के भागी हो जाते हैं और कदापि बच नहीं सकते।

३५. परमात्मा हमें देखते हैं, अपने देवदूतों द्वारा।

१. प्रभात की गुलाबी उषा और सन्ध्या की पुलकित सुनहरी लालिमा से।

२. अनन्त सूर्य की रश्मियों और ज्योतिकिरणों से।

३. रात को चाँद-सितारों के नैनों से।

४. व्यापक आकाश से, जिसका कैमरा अन्दर-बाहर हर क्षण हर जगह लगा हुआ है। निरन्तर चल रहा है, कभी बन्द नहीं होता, खराब नहीं होता और वह हमारे चिन्तन, भाव, संकल्पों, कल्पना, हमारी वृत्ति, प्रवृत्ति और अधिक सूक्ष्म गति-विधि की भी फिल्म ले रहा है। जिसके अनुसार निश्चय कर्म-फल भोगना पड़ता है।

३६. इसके बाद सात्विक भोजन करके सोते समय रात्रि के शिव-संकल्प के ६ मन्त्र जो पृष्ठ २१८ पर दिए हैं, अर्थों सहित पढ़कर या गाकर १० बजे तक निद्रा की गोद में चले जायें।

सन्ध्या, हवन आदि भगवान् राम, कृष्ण हमारे सभी पूर्वज करते थे। बाल्मीकि रामायण में जब विश्वामित्र जी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राक्षसों के वध और यज्ञ की रक्षा हेतु राम एवं लक्ष्मण जी को अयोध्या से लेकर आ रहे थे तो रास्ते में सरयू नदी के किनारे शिवाश्रम में उन्होंने विश्राम किया। तब मुनि जी ने इनको जगाते हुए कहा कि "हे कौशल्यानन्दन राम ! प्रातः-काल होने को है और प्रातः कृत्य (नित्य कर्म) सन्ध्या, यज्ञादि करो।"

दोनों राजकुमार परमोदार महर्षि के वचन सुन कर उठ-बैठे और स्नान-आचमन करके पहले गायत्री-जप करने लगे।

वे श्लोक इस प्रकार हैं—

कौशल्या सुप्रजा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्त्तते।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्त्तव्य दैवमाह्निकम्॥

—(रामा० बा० का० १४-२)

तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नृपात्मजौ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जेपतुः परमं जपम्॥

—(रामा० बा० का० १४-३)

इससे आगे जब महर्षि विश्वामित्र का यज्ञ शुरू हुआ तो वहाँ राम और लक्ष्मण पहले स्वयं मुनियों को प्रणाम कर सन्ध्या-यज्ञ करके तब उस यज्ञ की रक्षा किया करते थे।

३८. अयोध्याकाण्ड में आया है कि जब भगवान् राम गोमती नदी को पार कर निषाद जाति के गुह नामक राजा की राजधानी में प्रवेश करते हैं तो वहाँ पर एक रमणीक स्थान पर उन्होंने सुमन्त को आज्ञा दी कि 'रथ यहाँ रोक दो ! आज रात यहीं विश्राम करेंगे।' आगे बाल्मीकि रामायण के अनुसार संक्षिप्त में उन श्लोकों के अर्थ इस प्रकार हैं—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इल्म राजा गुह को जब, उनकी आमद का हुआ,
खुशनसीबी समझ कर विदा स्वागत को हुआ ॥ १ ॥

जिस घड़ी देखा पुराने मित्र को आते हुए।
राम ने बढ़ कर लगाया, अपने हृदय से उसे ॥ २ ॥

गुह ने तत्काल मस्तक झुका, प्रणाम चरणों में किया।
और बड़ी विनम्रता से कर जोड़ ये उनसे कहा ॥३॥

मैं धन्य हुआ जो ठहरने की, इस जगह कृपा करी।
अयोध्या की तरह यह भी है नगरी आपकी ॥४॥

मुझको अपना जानकर, प्रभु कृतार्थ कीजिए।
बस, रहकर अब यहाँ, खिदमत का मौका दीजिए ॥५॥

साथ लाया हूं मैं खाने, पीने और सोने का सामान।
घोड़ों का है चारा और कीजे कुछ फरमान ॥६॥

राम ने मुग्धकण्ठ से प्रेम भरे शब्दों में धन्यवाद किया।
पूछा सारा हाल उनका और फिर उनसे अरशाद किया ॥७॥

चारपाई बिस्तरों पर, अब हमें सोना नहीं।
बिछाकर पत्तों को, कर लेंगे विश्राम यहीं ॥८॥

और कोई वस्तु को लेने का न आग्रह कीजिए।
फ़क्त चारा घोड़ों का दे दीजिए ॥९॥

मजबूर हो गुह ने वैसा किया।
घास दाना घोड़ों को डलवा दिया ॥

सेवा में स्वयं वहां उनकी रहा।
सूर्य छुपने को था अब हो रहा ॥१०॥

राम, लक्ष्मण, सीता ने हाथ-मुंह धो जल से किया आचमन।
सन्ध्या-जप ध्यान में वे बैठ गये होकर मगन ॥११॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदनन्तर भोजन न कर केवल उन्होंने जल पिया।
और तृण-पत्तों में सीता-राम ने फिर शयन किया ॥१२॥
गुह, सुमन्त और लक्ष्मण रात भर ।
राम-सीता की रक्षा में रहे जागकर ॥१३॥

अन्तिम तीन पदों का भाव इन श्लोकों में है:—

ततश्चीरोत्तरासङ्गः सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम् ।
जलमेवाददे भोज्यं लक्ष्मणेनाहृतं स्वयम् ॥
—(रामा० अ० का० ३६-२६)

तस्य भूमौ शयनास्य पादौ प्रक्षाल्य लक्ष्मणः ।
सभार्यस्य ततोऽभ्येत्य तस्थौ वृक्षमुपाश्रितः ॥
—(रामा० अ० का० ३६-२७)

गुहोऽपि सह सूतेन सौमित्रिमनुभाषयन् ।
अन्वजाग्रत्ततो राममप्रमत्तो धनुर्धरः ॥
—(रामा० अ० का० ३६-२८)

इसी प्रकार लंका में अशोक वाटिका में रहती सीता द्वारा सन्ध्या आदि करने का हनुमान् जी ने वर्णन किया है।

३६. गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी अपने रामचरित मानस में यही कहा हैं—

(i) जहाँ जप यज्ञ योग मुनि करहीं,
अति मारीच सुबाहुहि डरहीं।
देखत यज्ञ निसाचर धावहिं,
करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं ॥
(बा० का० २०६-२)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थः —

जहाँ मुनि जन जप, यज्ञ और योग करते थे, किन्तु मारीच और सुबाहु से डरते थे, यज्ञ को देखते ही राक्षस दौड़ आते और उपद्रव करते थे जिससे मुनिलोग दुःख पाते थे।

मुनि विश्वामित्र जी इसके बाद यज्ञ की रक्षा के लिए भगवान् राम और लक्ष्मण को लाते हुए रास्ते में शिवाश्रम में आकर ठहरे तो तुलसी दास जी लिखते हैं—

(ii) **विगत दिवस आयुष पायी**
सन्ध्या करन चले दोउ भाई ॥

—(बा० का० २२३६-६)

मुनि की आज्ञा पाकर दोनों भाई संध्या करने लगे।

४०. भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज भी अपना नित्यकर्म इसी तरह करते थे। जब श्री कृष्ण चन्द्र जी पाण्डवों की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर दुर्योधन को मिलने हस्तिना पुर जा रहे थे तो रास्ते में सूर्यास्त हो गया। तब उनकी सन्ध्या का वर्णन महर्षि व्यास जी ने इन शब्दों में किया है—

अवतीर्य रथात् तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि।
रथमोचनमादिश्य सन्ध्यामुपविवेश ह ॥

(महा० उद्यो० ८४-२१)

श्री कृष्ण ने रथ से उतर कर सारथी को रथ खोलने की आज्ञा दी और विधिपूर्वक शौच और स्नान करके सन्ध्या उपासना करने लगे।

अब कौरवों की सभा में जाने से पूर्व श्रीकृष्ण जी का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णन भी इसी प्रकार निम्न श्लोक में है—

कृतोदकानुजप्यः सहु ताग्निः समलंकृतः ।

(महा० उद्यो० ९४-६)

श्री कृष्ण स्नान, जप और अग्निहोत्र करके अलंकृत हो कर कौरव-सभा को चले ।

४१. हमारे आर्य समाज अशोक विहार-फेज II के साथ बड़ा आलीशान प्रसिद्ध सनातन-धर्म मन्दिर है। एक साल पहले मैंने उसके अधिकारियों से मिलकर रामायण, गीता आदि के प्रमाण देकर दैनिक देवयज्ञ करने के लिए प्रार्थना की। तो उन्होंने कहा कि हम इसे मीटिंग में रखकर निर्णय लेंगे और आपको उसकी सूचना दे देंगे। आप आ जाना।

२ महीने पश्चात् मुझे इनकी एक मीटिंग का पता लगा, मैं उसमें गया । उन्होंने कहा कि हमारा प्रातः काल का समय रामायणादि की कथा में बीत जाता है। यज्ञ में कोई शामिल नहीं हो सकता है। गीता-रामायण के पाठ में ही सब धर्म-कर्म आ जाते हैं।

भगवान् राम और कृष्ण जी की आज्ञाओं का आजकल ऐसा पालन हो रहा है।

४२. परन्तु अब मुझे अवसर मिला है कि मैं पुण्यआत्मा स्वर्गीया पूज्य माता जय रानी जी के सनातनधर्म मन्दिर ए-४८, अशोक विहार फेस II, दिल्ली-५२ में दैनिक यज्ञ आरम्भ करूं। उनका परलोक-गमन ७-१२-८६ को हुआ था वे अपनी दोनों वसीयत "Will" में मुझे भी उनका एक Executer बना गई हैं।

चंद माह में ऊपर की बिल्डिग बननी शुरू हो जाएगी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ शाला पहले बनवाऊँगा। बाकी चार ट्रस्ट्रियों ने भी मेरे सुझाव को सहर्ष स्वीकार कर लिया है। जिनका मैं हृदय से आभारी हूँ। मेरा वहां अखंड अग्नि करने का विचार है। पूज्य माता जी की पहली बरसी के उपलक्ष्य में यजुर्वेद का यज्ञ करवाया जाएगा। इसकी पूर्ण आहुति की सूचना दिल्ली के सभी सनातन धर्म मन्दिरों और आर्य समाजों में दी जाएगी।

परमात्मा का नाम 'अग्ने' है, उसके नाम की वाचक अग्नि को यज्ञ कुण्ड में अखंड रखना, ज्योति जगानी है। श्रद्धा से रखी हुई यह प्रेरक और सुखवर्धक होती है। जिन दिनों विजय बेटा बीमार था, मुझे पूर्ण विश्वास था कि उसकी यज्ञ की अखंड अग्नि उसे चिरायु रखेगी। परमात्मा की ऐसी ही कृपा हुई।

४३. प्रायः लोग कहते हैं कि ३०-४० साल सन्ध्या-यज्ञ करने वालों की भी कोई उन्नति देखने में नहीं आती। यह इसलिये कि उनकी क्रिया में अर्थों का ज्ञान, मन में श्रद्धा और हृदय में प्यारे प्रभु का प्रेम नहीं होता। न तदनुसार आचरण करते हैं। बहुतों की आहुति अपनी नहीं होती, समाज के घी या सूखी सामग्री (बिना घी-दूध मिलाये) से करते हैं और फिर यज्ञ-अग्नि का सम्मान नहीं करते। सर्दियों में मना करने पर भी हाथ सेकते हैं। जबकि इस अग्नि से कोई और काम नहीं लेना चाहिए। यज्ञ की राख को बजाय नदी या दरिया में बहाने के कूड़े में फेंक देते हैं। वेद और ऋषि-ग्रन्थों को ज़मीन की दरी पर रखते हैं। चौंकी पर नहीं। इत्यादि।

४४. लाभ तब होता है जब साधक सन्ध्या, जप, ध्यान, योग, यज्ञ आदि में ज्ञानपूर्वक अभ्यास में पूरी निष्ठा, एकाग्रता, तल्लीनता, समग्रता और समर्पण-भावना से बैठे। इस पर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकबर बादशाह का सत्य उदाहरण जान लें।

एक बार बादशाह अकबर कहीं से वापस आ रहे थे। रास्ते में शाम की नमाज़ का वक्त आ गया। एक नदी के किनारे वे सफ़ बिछाकर हाथ-मुंह धो नमाज़ पढ़ने लग गये। उधर से एक ग्वालन, जिसका पति नगर में दूध देकर दोपहर से पहले लौट आता था, नहीं आया। उसको ढूंढने की धुन में नमाज़ के आसन पर पैर रख कर गुज़र गयी। यह देखकर अकबर को बहुत बुरा लगा। थोड़ी दूर गयी थी कि उसका पति आता हुआ मिल गया, तब वे दोनों वापस आ रहे थे और बादशाह नमाज़ पढ़कर जाने को था, तो उन्होंने देवी से नाराज़ होकर कहा कि "तुम्हें दीखता नहीं था कि मैं नमाज़ पढ़ रहा हूँ और तुम मेरे मुसल्ले पर से गुज़र गयी।'

उसने उत्तर दिया—

नर राची सूझी नहीं, तुम कस लखियो सुजान।
कुरान पढ़त बौरे भयो नहिं रच्यौ रहमान।।

अर्थात् मैं तो अपने पतिदेव की खोज में खो चुकी थी, पर तुम तो खुदा की भक्ति में लीन थे। तुमने मुझे कैसे देख लिया। मालूम होता है कि केवल कुरान शरीफ़ पढ़ कर बौखला गये हो, रहमान (भगवान) से सच्चा प्रेम नहीं हुआ।

अकबर इस ज्ञान को लेकर चला गया।

नमाज़, सन्ध्या, उपासना आदि ध्यान योग हैं, जिनमें वृत्ति बाहर नहीं जानी चाहिए, इसलिए गवालन ने ठीक कहा था।

४५. आजकल अपने आपको महर्षि, भगवान् और परम योगी कहलाने वाले विदेशों में योग का प्रचार यम, नियम और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खास कर ब्रह्मचर्य पालन रहित कर रहे हैं। यह बिना प्राण के जीवन देने के समान है। योग-साधना की एक हो निश्चित आहुति है, सत्यव्रत धारी होकर प्रभु-भक्ति से समर्पण की, जिससे मृत्यु से अमरपद की प्राप्ति होती है। ऐसे धर्म-आचरण, प्रभु-प्रेम और भक्ति-भावों पर तो बल देते नहीं। परमात्मा का साक्षात्कार कैसे करा सकते हैं? वे जानें कि योग की आत्मा ईश्वर-प्राणिधान है। प्राण यम-नियम हैं तथा सार समाधि है, जिससे मोक्ष होता है।

४६. किस नित्यकर्म से मुक्ति मिलती है, पेज नं 345 की तालिका से जानें:—

४७. योग-दर्शन के अनुसार तीनों गुणों सत-रज-तम का अपने कारण में लीन होने का नाम कैवल्य अर्थात् मोक्ष है। जिसका साधन असम्पर्ग्यात् ममाधि है। अर्थात् योग-अभ्यास ही अन्तिम साधना है, जिससे परमात्मा का साक्षात्कार हो सकता है। अन्य कोई नहीं।

और जाना कि योग-अभ्यास के तीन मुख्य अंग हैं—

ज्ञानकाण्ड	**कर्म काण्ड**	**उपासना काण्ड**
इनके अन्तर्गत हैं:—		
स्वाध्याय	पञ्चमहायज्ञ	अष्टाङ्ग-योग
आत्म-निरीक्षण		
सन्ध्या अर्थात्		
ब्रह्मयज्ञ		

४८. तालिका में दिए साधनों से जाति, आयु और भोग पैदा करने वाली वृत्तियों, वासनाओं और संस्कारों को दग्ध किया जा सकता कि जिससे मुक्त हों।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहला साधन—सन्ध्या

इसके लिए आवश्यक साधन हैं—

१. जीवन काल में शरीर नीरोग रहे, जिसके लिए सन्ध्या के प्रथम आचमन-मन्त्र में सुखों के अद्भुत दाता परमात्मा से प्रार्थना की गयी कि हम पर सब ओर से—

२. कोई चीज़ मुफ्त नहीं मिलती, इसके लिए साधना करनी होगी, कैसो ?

३. इस साधना के लिए साधन हैं इन्द्रियां और साध्य हैं—

४. इन्द्रियों में ये गुण आयें और दोष जायें। इसके लिए ईश कृपा और गर्व का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	अवसान हों सो संध्या के मन्त्र हैं— अंग स्पर्श, मार्जन, प्राणायाम, अघमर्षण जिनमें प्राथना, आत्म-निरीक्षण और परमात्मा की महान् शक्ति का अवलोकन हैः—	२ से ७	८ से १३	१४ से १६ सन्ध्यामन्त्र।	
५.	यथा प्रार्थना तथा कर्मसाधना का फल होगा—	मल	अवर्ण	विक्षप	रहित होना

दूसरा साधनः—

६.	इसके लिए दूसरी क्रिया है—	पञ्चयज्ञ	गायत्री-जप	योग-अभ्यास प्रतिदिन करना	

तीसरी साधना हैः—

७.	योग के अंगों का **पालन** करें, **वे** क्या हैं ?	यम-नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार	धारणा	ध्यान	समाधि
८.	इस अभ्यास से क्या होगा—	कर्म सिद्धि	ज्ञान सिद्धि	ध्यान सिद्धि	का पराकाष्ठा
९.	इसका महत्व क्या होगा ?	भूः	भुवः	स्वः	में प्रवेश
१०.	इसकी देन क्या होगी ?	पृथ्वी के सुख	अन्तरिक्ष के सुख	द्यौ लोक के सुख	आधि भौतिक आध्यात्मिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न				
				आधिदैविक दुःखों से निवृत्ति।
११. ये सुख विशेषतया शरीर के किस भाग को मिलेंगे ?	स्थूल	सूक्ष्म	कारण	शरीर के तीनों भागों को।
१२. और क्या लाभ होगा ?	अन्नमय	प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय	आनन्दमय	कोश पवित्र होंगे।
१३. इन कोशों का किस शरीर की अवस्था से सम्बध है ?	जागृत	स्वप्न	सुषुप्ति	अवस्था से।
१४. इन अवस्थाओं में किन शरीरों से काम होता है ?	तीनों शरीरों से	सूक्ष्म और कारण से	कारण शरीर में ही आत्मा अपने स्वरूप में स्थित होती है।	जिससे समाधि और मोक्ष के आनन्द की सी प्रतीति होती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

				बाहर वृत्ति नहीं जाती।
१५.	इनमें प्रकृति के कौन से गुण रहते हैं ?	सत-रज-तम	सत-रज	केवल सत गुण रहते हैं।
१६.	इससे क्या निष्कर्ष निकला ?	जब जीवात्मा का सम्पर्क स्थूल और सूक्ष्म शरीर से रहता है तो तमाम दुनिया के दुःख-सन्ताप, कष्ट क्लेश विघ्न-बाधाएँ आदि प्रकृति के तीनों गुणों के कारण आते हैं।	जब जीवात्मा का सम्पर्क सिर्फ सूक्ष्म शरीर से रहता है तो केवल मानसिक और आत्मिक कष्टों का आभास होता है।	और जब जीवात्मा अपने कारण में स्थित रहता है तब सभी शारीरिक और मानसिक दुःखों से निवृत्ति रहती है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कारों की लीनता का कर्म इस प्रकार है:—

वृत्तियों के संस्कार मन में लीन हो जाते हैं
मन के संस्कार अहंकार में लीन हो जाते हैं
अहंकार के संस्कार बुद्धि में लीन हो जाते हैं
बुद्धि के संस्कार चित्त में लीन हो जाते हैं
क्योंकि सब के संस्कार चित्त में रहते हैं।

इस नित्य कर्म की:—

आत्मा—वेद-स्वाध्याय है।

प्राण – सन्ध्या-यज्ञ हैं।

सार—परमात्म-दर्शन।

४९. महाभारत में आया है कि गुरु द्रोणाचार्य जी कौरवों और पाँडव-पुत्रों के आचार्य थे और विद्याओं के साथ उन्हें तीर-अन्दाज़ी भी सिखाते थे। इस विषय की परीक्षा के इम्तहान का दिन आया, एक ऊँचे वृक्ष की शाखा पर एक चिड़िया की मूर्ति लटका दी। प्रश्न रखा कि इस चिड़िया की दाईं आँख की पुतली पर निशाना लगाना है। दुर्योधन को सबसे पहले बुलाया और उससे पूछा कि क्या सब ठीक नज़र आता है? उसने कहा महाराज आप सबको, वृक्ष, पक्षी आदि को खूब देख रहा हूँ, तो उन्होंने कहा लगाओ निशाना नहीं लग पाया, मायूस होकर बैठ गया।

उसके और भाई आते रहे, आचार्य वैसे ही पूछते रहे। किसी ने ऐसे कह दिया कि दरख्त और उस पर पक्षी देख रहा हूँ। कोई निशाना न लगा सका।

अब पांडवों में अर्जुन से वही प्रश्न पूछा, उसने उत्तर दिया कि "इस वक्त सिवाय पक्षी की पुतली जहां

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निशाना लगाना है उस बिंदु के अलावा और कुछ नज़र नहीं आता।" निशाना लगाया और उस पक्षी की पुतली को बीन्ध दिया।

ऐसे ही जब साधक ज्ञान के धनुष पर कर्म की डोरी को खींच कर उपासना का तीर आत्म-स्थित होकर चलाता है तो ब्रह्म-लक्ष्य का बेधन हो जाता है।

इसलिए चित्त-वृत्ति-निरोध से ही परमात्मा का मिलन होता है

५० साक्षात्कर्त्ता जीवात्मा है। जो एक देशीय है। मिलन तब होता है जब दोनों एक दूसरे-के सम्मुख हों। जीवात्मा शरीर के अन्दर स्थित और परमात्मा सर्वव्यापक हैं। इसलिए उसे परमात्मा के दर्शन वहीं आत्म-स्थिति में होंगे। जिसका साधन केवल योग-अभ्यास है।

मूर्त्ति-पूजक कहते हैं कि ईश्वर मूर्त्ति में भी हैं। बेशक परन्तु आत्मा जिसे देखना है, वह तो वहाँ बाहर नहीं है और शरीर की किसी भी इन्द्रिय से परमदेव का साक्षात्कार हो नहीं सकता।

मिलने प्रीतम को बाहर का आडम्बर न करे कोई।
वे तो अन्दर है, दिल का शीशा तो करे कोई॥

५१. ज्ञान-कर्म-उपासना तीनों का महत्व इस उदाहरण से जान लें। जैसे बहते जल अपने इष्ट समुद्र में तब जाकर लीन होते हैं, जब उनका प्रवाह निरन्तर होता है और उसके रक्षक दो किनारे साथ-साथ दृढ़ रहते हैं, इसी प्रकार उपासना प्रेम भक्ति का सोम तब बनता और ब्रह्म-सागर में लीन होता है, जब सत्य, ज्ञान और यज्ञ कर्मों का योग किनारों की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह उसके साथ रहता है और यह अभ्यास प्रतिदिन होता रहे। अतः एव इसका नाम नित्यकर्म है।

५२. इस नित्यकर्म से साधक उपरिलिखित १६ कलाओं से सम्पन्न हो जाता है।

यदि कोई भी मतानुयायी अन्य कोई साधन, प्रमाण सहित मोक्ष-प्राप्ति का बता दे, तो मैं उनकी अनुपम जानकारी और अविष्कार का स्वागत करूँगा और अगले संस्करण में धन्यवाद से उसे प्रकाशित कर दूंगा।

५३. जैसे कोई ग़लत बस या गाड़ी में बैठकर कभी अपनी मंज़िल तक नहीं पहुँच सकता। उलटा उसे कई गुना लम्बा कर लेता है, वैसे ही वास्तविक उपासना-विधि का ज्ञान न होने पर समय को खोना और लक्ष्य से दूर होना है। इसलिए:—

प्रभु के दर्शन तभी सुलभ हैं,
यदि ठीक इसकी विधि जान लें॥

५४. अब इस अध्याय को इस प्रार्थना के भजन से सम्पन्न करता हूँ। प्रभु कृपा करें कि हम पूरी श्रद्धा और विश्वास के साथ निरन्तर योग-मार्ग पर चलते रहें तो एक दिन निश्चय अपने प्यारे प्रियतम से सुखद प्रिय-मिलन हो जायेगा।

हम को दो भक्ति वरदान

हे परम दयालु दयानिधान।
तेरे नहीं कोई समान॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढूंढ लिया सारा जहान्।
हम को दो भक्ति वरदान॥

आपकी भक्ति में है शक्ति।
ऐसी भर दो नाम की मस्ती॥

झुके रहें करुणा निधान।
हमको दो भक्ति वरदान॥ २॥

जैसे ऋषि-मुनि थे भजते।
सुमिरण करके नहीं थे रजते॥

ऐसा लगे हमारा ध्यान।
हमको दो भक्ति वरदान॥ ३॥

दुनिया के सब रंग मिटा दो।
अपने प्रेम का रंग चढ़ा दो॥

झूम-झूम गायें स्तुति-गान।
ऐसा दो भक्ति वरदान॥ ४॥

श्वाँस-श्वाँस तुझे ध्यायें।
वृथा श्वाँस न कोई गवायें॥

घट में बस जाओ भगवान्।
हम को दो भक्ति वरदान॥ ५॥

हर क्षण तुझसे प्रीति बढ़े।
सच्ची तुझसे लगन लगे॥

तन-मन-धन कर दें कुर्बान।
हम को दो भक्ति वरदान॥ ६॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञों में सदा लगे रहें
नागा कभी न कोई करें।

रहे तेरी करुणा महान।
हमको दो भक्ति वरदान॥ ७॥

जन्म-मरण का फन्दा छूटे।
आवागमन का चक्र मिटे॥

कृपा करो ऐसी महान्।
हम को दो भक्ति वरदान॥ ८॥

॥ ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!! ओ३म्॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

१४. वरेण्यम् की सिद्धि

१. आज ३१-१-८७ तक यह पुस्तक छप जानी चाहिए थी, क्योंकि इसका विमोचन फरवरी के मध्य में होना है। इस लिए इस अध्याय में अधिक नहीं लिख पा रहा। शिव-पार्वती रूपक द्वारा वरेण्यं की व्याख्या इस पुस्तक के भाग दो में पढ़ें, जो छप चुकी है। विचार किया है कि तीसरा भाग विजय बेटे के १०१ यजुर्वेद की पूर्ण आहुति के उपलक्ष्य में वेद के अखंड यज्ञ के द्वारा २ अक्टूबर, १९८७ को वितरण करेंगे।

२. इसमें विस्तार से लिखना था कि—

i. किन कारणों से कोई वस्तु दिखाई नहीं देती? परमात्मा के दर्शन इसलिए नहीं होते कि वे अत्यन्त सूक्ष्म और अत्यन्त समीप हैं।

ii. योग के आठ अंग और धर्म के दस लक्षणों की तुलना।

iii. मुक्ति के साधनः—विवेक, वैराग्य षष्ठक सम्पत्ति और मुमुक्षत्व।

iv. षष्ठ सम्पत्ति—शम, दम्भ, प्रतीक्षा, उप्रीति, श्रद्धा और समाधान।

v. परमात्मा जिसका युवा सखा हो जाता है, उससे महान् यज्ञ-कर्म होने लगते हैं। (साम-१३३९)

vi. धर्ममेघ समाधि की सिद्धि से मोक्ष की प्राप्ति होती है और समाधियों का भी विवेचन।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

vii. सन्ध्या द्वारा वरेण्यम् की सिद्धि की योग्यता।

viii. कुछ कविताओं के पद, दृष्टाँत आदि।

३. वरेण्यम् की सिद्धि कैसे होती है ? इसके लिए एक वेद मंत्र दे रहा हूं:—

देवता—रुद्र

ओ३म् त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
ऊर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्।
ऊर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः॥

(ऋग्० ७-५९-१२) यजु० ३-६०)

प्रथम दो पंक्तियाँ ऋग्वेद में हैं और पूर्ण मंत्र यजुर्वेद में आया है। इस मंत्र का नाम महामृत्युञ्जय इसलिए है कि इसके अनुष्ठान से मृत्यु पर विजय पाई जा सकती है। सनातन धर्मी भाई मानते हैं कि इससे ग्रह-उपग्रहों के कुप्रभाव का शमन होता है। तान्त्रिक इसका अनुष्ठान सिद्धियाँ प्राप्त करने के लिए करते हैं और योगी अमर पद पाने के लिए।

त्र्यम्बकं =(हे) तीन नेत्रों वाले त्रिलोचन ! तीनों लोकों, तीनों कालों के दृष्टा। उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करने हारे। भूत, वर्तमान और भविष्य के जानने वाले। ऋग्., यजु., साम विद्याओं के दाता भूः भूवः स्वः। प्राणों से प्यारे, दुःख विनाशक, सुखों के दाता, जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था में रक्षा करने हारे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान, कर्म, उपासना से जिसका संगतिकरण होता है और जो हमारा सच्चा माता-पिता और आचार्य है।

सुगन्धि =दिव्य गुणों की सुगन्धि से युक्त,

पुष्टिवर्द्धनम् =बलशक्ति दाता,

पतिवेदनम् =वेदना को मिटाने वाले, परम रक्षक-पति परमेश्वर

यजामहे =(हम आपका) सत्कार पूर्वक याजन, पूजन, वन्दना, उपासना द्वारा संगत होकर समर्पित होते हैं।

उर्वारुकमिव =जैसे खरबूजा बेल द्वारा प्रकृति, धरती-माता से जुड़ा होता है और इस लता के माध्यम से स्वतः डाली से अलग हो जाता है।

बन्धनान्मृत्योः =और पूर्णतया पकने पर स्वतः बन्धन-रहित हो जाता है।

मुक्षीय =इसी प्रकार आत्मा याजन-पूजन के माध्यम से मृत्यु-पाश से छूट जाता है।

माऽमृतात् =अमृत से कदापि नहीं।

कविता में अर्थ—

हे त्रिकाल दृष्टा सर्वरक्षक शक्ति के भंडार प्रभु!
हम भक्त उपासक मांग रहे वरदान विभु॥
पके हुए खरबूजे भांति, मृत्यु पाश से छूट जाएँ।
अमृत से हों युक्त, आनन्द-मुक्ति का फिर पाएँ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खरबूजे का उपदेश—

बेल से लगा खरबूजा कह रहा है बाग्रसर।
शरीर के बंधन से छुटकारे, की ख्वाहिश है अगर ।।

देख मैं धरती माँ से, हूँ जुड़ा बस इसलिए।
सुख से उसकी गोद में, विकसित होने के लिए ।।

यजामहे =(हम आपका) सत्कारपूर्वक यजन, पूजन, वन्दना, उपासना द्वारा सुसंगत होकर समर्पित होते हैं। (और)

उर्वारुकमिव बन्धानात् =जैसे खरबूजा बेल द्वारा प्राकृति, धरती-माता से जुड़ा होता है और पूर्णतया पकने पर स्वतः बन्धन-रहित हो जाता है।

मृत्योः मुक्षीय =(इसी प्रकार हम भी) मृत्युपाश से छूट जाएँ।

माऽमृतात् =अमृत से कदापि नहीं।

पुरुष दोनों मिलकर यज्ञ करते हों, वहाँ यजुर्वेद में आए (Double) मंत्र से आहुति दें।

५. कई महान् विद्वानों ने "पतिवेदनम्" मंत्र के भाग का अर्थ यह किया है कि इस में स्त्री या कन्या भक्त की तरह प्रार्थना करती है 'इतो मुक्षीय मामुतः' इधर से छुड़ा दो, उधर से नहीं। इधर का अभिप्राय 'पितृगृह' से है और उधर का अभिप्राय है 'पतिगृह से।' मैं क्षमा चाहता हूँ कि यह अर्थ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान, कर्म, उपासना से जिसका संगतिकरण होता है और जो हमारा सच्चा माता-पिता और आचार्य है ।

सुगन्धि =दिव्य गुणों की सुगन्धि से युक्त,

पुष्टिवर्द्धनम् =बलशक्ति दाता,

माऽमृतात् =अमृत से कदापि नहीं ।

कविता में अर्थ—

हे त्रिकाल दृष्टा सर्वरक्षक शक्ति के भंडार प्रभु !
हम भक्त उपासक मांग रहे वरदान विभु ।।
पके हुए खरबूजे भांति, मृत्यु पाश से छूट जाएँ ।
अमृत से हों युक्त, आनन्द-मुक्ति का फिर पाएँ ।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खरबूजे का उपदेश—

बेल से लगा खरबूजा कह रहा है बाअसर।
शरीर के बंधन मे छुटकारे, की ख्वाहिश है अगर ॥

देख मैं धरती माँ से, हूँ जुड़ा बस इसलिए।
सुख से उसकी गोद में, विकसित होने के लिए ॥

सुगन्धि, रस और पुष्टि से, अपने को भरने के लिए।
और पककर टूट पाऊँ, मैं हमेशा के लिए ॥

ऐसे ही तू भक्त बनकर, ईश माँ की ले शरण।
याजन पूजन से रिझाओ, छूट जाए तेरा मरण ॥

४. हर एक भक्त अपने परम प्यारे प्रभु देव को प्यार से याद करने के लिए किसी एक नाम माता, पिता या पति से सम्बोधित करता है। मुझको माता कहना प्रिय लगता है। देवियों को पति कहना भाता है, यह उनके लिए स्वाभाविक है। पतिव्रता स्त्री का अपने पति से प्रेम का स्वभाव बन चुका होता है। उसी आगाध स्नेह से वह परमात्मा से अपनी प्रीति और लौ लगा लेती है और परमेश्वर को शीघ्र ही साक्षात् कर लेती है, पुरुषों की अपेक्षा। जहां स्त्रियाँ और पुरुष दोनों मिलकर यज्ञ करते हों, वहाँ यजुर्वेद में आए (Double) मंत्र से आहुति दें।

५. कई महान् विद्वानों ने "पतिवेदनम्" मंत्र के भाग का अर्थ यह किया है कि इस में स्त्री या कन्या भक्त की तरह प्रार्थना करती है 'इतो मुक्षीय मामुतः' इधर से छुड़ा दो, उधर से नहीं। इधर का अभिप्राय 'पितृगृह' से है और उधर का अभिप्राय है 'पतिगृह से।' मैं क्षमा चाहता हूँ कि यह अर्थ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी समझ में नहीं आते। इसलिए—

i. मंत्र के दोनों भागों में केवल इतना ही अंतर है कि पहले में 'पुष्टिवर्धनम्' शब्द आया है और दूसरे में 'पतिबेदनम्'। ये दोनों ही परमात्मा के गुणवाचक सम्बोधन हैं। प्रार्थना दोनों में समान है।

ii. वेद की सभी प्रार्थनाएँ ऐसी होती हैं जो साध्य हों और मुमकिन न हों। यदि स्त्री की यह प्रार्थना मानी जाए कि मैं लौकिक पति से सदा संयुक्त रहूँ तो यह असम्भव है; क्योंकि उसका सुहाग और सौभाग्य एक पल में लुट सकता है। इसलिए यह प्रार्थना कि मैं पति से युक्त रहूँ; विफल हो जाएगी, साकार नहीं हो सकती।

iii. एक मंत्र में पुरुष और स्त्री की भिन्न-भिन्न प्रार्थना न कोई है और न इसका अमुमान हो सकता है, क्योंकि अनुमान उसका हो सकता है, जिसका कभी प्रत्यक्ष हुआ है।

(iv) हर बुद्धिमती स्त्री समझती है कि मृतक (पुरुष) से जुड़ना और अमर पद की कामना, दोनों सर्वथा एक दूसरे के विपरीत गुण हैं। क्योंकि यह अटल सिद्धांत है कि एक समय में दो विरोधी गुण किसी एक वस्तु में कदापि नहीं रह सकते। जैसे रोशनी में अंधेरा, अग्नि में जल, बाँझ का पुत्र होना इत्यादि। इसलिए मेरी समझ में पति शब्द परमेश्वर के लिए ठीक रहता है, क्योंकि वे ही हमारे कष्टों की वेदना को दूर कर सकता है, पति (पुरुष) नहीं।

६. वेद के परम ज्ञानी महाऋषि ने बन्धन मुक्त होने की उपमा और किसी फल आम आदि से न देकर पके हुए खरबूजे से देकर कमाल कर दिया है। इसका महत्त्व इससे देख लें—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(i) खरबूजा पृथ्वी माता की गोदी में पलता, पकता है। पुष्टि, मिठास, सुगन्धि, रंग-रूप, सौन्दर्य, निखार आदि धारण करता है। ऐसे ही हम प्यारे प्रभु के समर्पण होकर उसके गुण, कर्म, स्वभाव को धारण करके बल, यश को प्राप्त हों।

(ii) यह निरभिमान, निरहंकार, नम्र होकर बगैर किसी दिखावे के भूमि पर पड़ा, छुपकर गुप्त रीति से पकता है। उपासक भी अपनी परिपक्व होने की साधना इसी प्रकार करें।

(iii) यह दूर से सुगन्धि द्वारा अपने पकने का परिचय देता है। उपासक का तपोमय जीवन भी इसी प्रकार गुणों की सुगन्धि से आकर्षक हो।

(iv) यह बेल से जुड़ा तो पका और जब पका तो छूटा। स्पष्ट हुआ कि जब तक उपासक अपने इष्ट देव परमात्मा से युक्त नहीं होता तो वह मुक्ति की परिपक्व अवस्था तक नहीं पहुंचता। जब तक इस प्रकार पकता नहीं तो मृत्यु के बंधन से छटकारा नहीं पा सकता।

(v) खरबूजा अपनी माता प्रकृति से बेल द्वारा जुड़ा है। इसी प्रकार जीवात्मा याजन, पूजन के द्वारा परमात्मा से सुसंगत है।

(vi) इसमें आठ या दस फाँके बाहर से दिखाई देती हैं, जो ८ योग के अंग और १० धर्म के लक्षणों की याद दिलाते हैं।

(vii) इसकी फाँके यह संकेत करती हैं कि मुझे अकेला न खाओ, मिल-बाँट कर खाओ। यह त्याग-भावना को उत्पन्न करती हैं।

(viii) यह धूप-छाँव में पकता है। इससे उपदेश मिलता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि हम तप से द्वन्द्वों को सहन करते हुए ज्ञान-कर्म की उपासना में परिपक्व हों।

(ix) खरबूजे में बेल से टूटने की क्षमता तब आई, जब उसने अपनी माता प्रकृति के पंचभूतों के गुणों को अपने अन्दर धारण किया। पृथ्वी से गंध को, जल से रस को, अग्नि से रूप को, वायु से विकास की गति को, आकाश से समता को अपने रोम-रोम में बसाया। तब जाकर पका और बेल से छूटा। ऐसे ही जब तक हम अपनी जगत्-जननी अम्बा (माता) के गुण, कर्म, स्वभाव धारण नहीं करते, हम इस संसार की मृत्यु रूपी बेल से मुक्त नहीं हो सकते।

७. आचमन-मंत्र में उपासक का इष्ट जल था। इस मंत्र में वेद-माता ने हमारा आदर्श पथ प्रदर्शक, रहनुमा, गुरु, देवता मृत्यु-बन्धन से छूट कर अमृतानन्द की प्राप्ति के के लिए पका हुआ खरबूजा रखा है। पूजनीय स्वामी दीक्षा-नन्द जी महाराज ने अपनी पुस्तक "मृत्युञ्जय सर्वस्व" में खरबूजे के पकने की बहुत अच्छी पहचान लिखी है। ताकि उसकी कसौटी पर कस कर देख लें कि इसमें पककर निवृति होने की योग्यता आ रही है या नहीं। मैं उसको संक्षिप्त में उनका धन्यवाद करते हुए लिख रहा हूँ। अधिक जानकारी के लिए इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें।

साधक को इसके अनुसार यह आत्म निरीक्षण करते रहना चाहिए कि वह कितना मोक्ष के समीप पहुँच रहा है।

(i) खरबूजा पकने पर उसकी डाली बेल के साथ लगा रह जाता है, इसी प्रकार हम पड़ताल करें कि वासना रहित हुए या नहीं। वासना बन्धन का कारण होती है।

(ii) बिना बेल से बंधे सुगन्धि आती नहीं और बिना छूटे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुगन्धि फैलती नहीं। हम देखें कि हमारी कीर्त्ति दिग्-दिगन्त में व्याप्त हो गई है तो अपने को मुक्ति का पात्र मानें।

(iii) पका खरबूजा जहाँ दूर जाते व्यक्ति को अपनी सुगन्धि से अपने समीप लाता है; वहाँ उसका रूप समीप आए व्यक्ति को प्रभावित करता है। अपने साथी को अपना रंग देता है। हम देखें कि हमारे गुण भी दूसरे को प्रभावित करते हैं, या नहीं ?

(iv) खरबूजे में उसका रस समा नहीं पाता वह फूट कर बहने लगता है। हम देखें क्या हमारा हृदय-स्रोत जनता जनार्दन की प्यास बुझाने को फूट पड़ा है या नहीं ?

(v) खरबूजा मिश्री सा मीठा और शहद सा शीरीं होता है। हम देखें कि क्या हमारी वाणी मीठी और हृदय माधुर्य से भरपूर है ?

(vi) पके खरबूजे में रस के साथ मिठास एक रंग और एक रूपता होती है। बाहर की विविधता का उसके अन्तःकरण पर कोई प्रभाव नहीं होता। क्योंकि यह अद्वितीय परब्रह्म की देन है। जिसके रूप-रंग और रस में एकता है। हम देखें कि क्या हमारी भावनायें भी सबके लिए सम और निष्पक्ष हैं ?

(vii) खरबूजे के बीज गूदे में गढ़े नहीं रहते, अलग हो जाते हैं। हम देखें कि हमारे अन्तःकरण में कहीं राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि वासनाओं और संस्कारों के बोज तो नहीं जम रहे ?

(viii) खरबूजे के ऊपर बनी दस फाँके दस अंगुलियों के प्रतीक हैं। हम देखें कि क्या इन हाथों के पुरुषार्थ की कमाई हम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाते हैं या नहीं ? दूसरे यह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियों की छाप भी दिखाई देती है। हम देखें कि क्या हम प्रकृति रूपी छिलके को पृथक करके ब्रह्म-आनन्दरस का पान करते हैं, जैसे कि खरबूजे के रस और गूदे का पान करते हैं और छिलके को फेंक देते हैं।

(ix) खरबूजा फल के मूल में लगा हुआ तन्तु जब सूखता है तो पकता है, फिर टूटता है। जैसे बाल पककर स्वतः झड़ जाते हैं। वैसे ही क्या हमारी वासनायें पक कर जाती रही हैं।

(x) खरबूजा कच्ची अवस्था में अंगुलि के इशारे से सड़ जाता है। हाथ से इधर-उधर करने से कुछ नहीं होता। यह बड़ी विचित्र बात है। हम कुछ नहीं कह सकते कि अंगुलि से कौन सी विद्युत् निकलती है कि जिससे फल मुरझा जाता है, सड़ जाता है। हम देखें कि कोई ऐसा काम तो नहीं कर रहे कि लोगों की अंगुलि हमारी ओर उठे और हमारा जीवन-फल मुरझा जाए।

८. जैसे दिन-रात, सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, हानि-लाभ, यश-अपयश, मान-अपमान, खुशी-गमी, धूप-छाँव आपस में जुड़े हुए हैं। अर्थात् दोनों एक ही सिक्के के दो अनिवार्य अंग हैं। एक को पाने के लिए दूसरा साथ रहेगा ही। क्योंकि सिक्के की दूसरी तरफ अलग हो ही नहीं सकती। इसी प्रकार सुख-दुःख रूपी सिक्के से भी दुःख कभी पृथक् नहीं हो सकता, सुख को पकड़ेंगे तो साथ ही दुःखों के काँटे भी अवश्य सहने पड़ेंगे।

ज्ञानी विवेकी पुरुष को इसलिए सब दुःख ही दुःख नजर आते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणामतापसंस्कार दुःखैर्गुण वृत्ति विरोधाच्च दुःख-मेव सर्वं विवेकिनः ।

—(यो० द० २-१५)

विवेकी पुरुष को तो परिणाम दुःख, ताप-दुःख, संस्कार दुःख तथा गुण-बृत्ति-विरोध-दुःख ही दीखते हैं।

परिणाम दुःख=संसार के सभी भोग, भोजन, वस्त्र, मकान, सवारी, घड़ी इत्यादि परिणामी हैं। भोजन खाने के बाद ही भूख लगनी शुरू हो जाती है। कपड़ा पहना तो मैला और फटना शुरू हो जाता है। मकान में प्रति वर्ष मरम्मत करवानी पड़ती है और टैक्स आदि के झंझट लग जाते हैं। इसी तरह सवारी, घड़ी आदि बिगड़नी शुरू हो जाती हैं। हर एक का रूप, यौवन ढल जाता है। बीमारी मृत्यु आती है। इसलिए संसार के समस्त भोगों में ह्रास, परिवर्तन और क्षति है। इसलिए सुख की प्रत्येक सामग्री में परिणाम-दुःख निहित है।

ताप-दुःख=मनुष्य जब सुखों का उपभोग करता है तो उसके हृदय में उन सुखों के बाधक साधनों से द्वेष रहता है। जिस से चित्त सन्तप्त होता है, यही ताप-दुःख है।

संस्कार दुःख—जब मनुष्य पुण्य-कर्म करता है तो उसे सुख मिलता है। उस सुख से उसके संस्कार और वासना उत्पन्न होती है। फिर उसकी स्मृति और याद से राग पैदा होता है। इससे उस सुख को पाने की पुनः प्रवृत्ति बनती है और फिर वह इच्छानुसार कर्म करता है, जिससे फिर संस्कार बनते हैं। फिर वही वासना, राग, प्रवृत्ति, कर्म, इच्छा का चक्र सदा चलता रहता है। जिससे मनुष्य का छूटना कभी नहीं हो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता, यह संस्कार दुःख है।

गुण-वृत्ति-विरोध दुःख—प्रकृति के सत्, रज और तम तीन गुण हैं, जो तीनों पथ पर विरोधी हैं। एक की प्रबलता में शेष दो विरोध करते रहते हैं। इस प्रकार गुणों की प्रवृत्ति मनुष्य के हृदय में बाकी रहती है, यह देवासुर संग्राम भीतर जारी रहता है। योगी जब तक इन गुणों से अतीत नहीं होता, गुण-वृत्ति विरोध दुःख से बच नहीं सकता।

९. ये दुःख तीन अवस्थाओं में रहते हैं। भूत दुःख, वर्त्तमान दुःख और अनागम (भावी) दुःख। इनसे कैसे बचा जाए ? महामुनि पतञ्जलि ने इसका उत्तर दिया:—

हेयं दुःखमनागतम् ।

—(यो० द० २-१६)

जो दुःख अनागत (अभी आया नहीं है, परन्तु आ सकता है) है, वही हटाने के योग्य है। क्योंकि जो भोग चुके, उनका विचार ही व्यर्थ है, जो दुःख वर्त्तमान काल में मिल रहा है वह भी एक पल में भूतकाल में चला जाएगा और किए हुए कार्यों का फल होने से अनिवार्य है। और इन दुःखों से बचने का कोई उपाय नहीं है। भावी दुःख हमारे वर्त्तमान काल के कर्मों के फल रूप होते हैं इसलिए इन्हें ही ठीक करके आगामी दुःख से बचा जा सकता है।

अब इस भजन के साथ इस अध्याय को समाप्त करता हूँ जो 'वरेण्यम् की सिद्धि' के लिए सहायक है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भजन

दिव्य मन नित्य ओ३म् जपाकर, ओ३म् जपाकर, ओ३म् जपाकर।
घड़ी-२ पल-पल, क्षण-क्षण, निसदिन ओ३म् जपाकर॥

रात के पिछले पहर में, उषा की ब्रह्म-वेला में।
संध्या की पुलकित रजनी में, चांद तारों की आभा में॥
राग द्वेष से रहित हुए, दिव्य मन ....

हृदय के अन्तराल से चित्त की निरोध-अवस्था से।
प्रेम भरी मीठी वाणी से, भक्तिमय नम्र भाव से॥
श्रद्धा को उर में संजोए, दिव्य मन ....

स्वाँस स्वाँस से ओ३म् तू भज ले, व्यर्थ स्वास न जाए।
क्या जाने यह स्वास ही अपना, अन्त समय का होए॥
इसको सदा ध्यान में रखकर, दिव्य मन ....

सार तत्व हो खोज किए जा, वेदज्ञान रस रोज पिए जा।
अग्निहोत्र यज्ञ किए जा, देवों की आशीष लिए जा।
शिव-संकल्पों में तू रहकर, दिव्य मन.........

गहरा सागर दूर किनारा, सूझे न कोई पारावारा।
मानवतरणी ओ३म् खिवैया, पकड़ लिया जब उसका सहारा॥
हो जाएगे भव से पार, दिव्य मन.........

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!! ओ३म्॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

नम्र प्रणाम

देवता-रुद्र

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः
शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च
शिवतराय च ॥

—(यजु० १६-४१)

अर्थः—

सुख शान्ति आनन्द स्रोत प्रभु जी, अर्पित नम्र प्रणाम मेरा।
अत्यन्त मंगल कल्याण के दाता, क्या गाऊँ गुणगान तेरा॥

विशेषः—

१. वाणी मेरी एक पिताजी, देनें तेरी अनन्त अपार।
शब्द भी नहीं कुछ पास मेरे, जो करें प्रकट आभार॥

२. स्वयं अन्तर्यामी हों, सब घट की जानन हारे हो।
हार्दिक धन्यवाद स्वीकार करो, निरोगिता आपने बख्शी जो॥

३. जैसी मिली प्रेरणा आपसे, कुछ व्यक्त कर पाया हूँ।
दो भगवन् आशीष मुझे, कि ऐसा करता सदा रहूँ॥

४. और नहीं है चाहना कोई, निरन्तर तेरी ओर बढ़ूँ।
वेद माता का ज्ञान मिले, तो उसका मैं प्रचार करूँ॥

॥ ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!! ओ३म् ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो छपने से रह गया

पृष्ठ ९ स्तुता मया वरदा......

मंत्र का पता (अथर्व १९-७१-१)

भक्त के गुणों की जल से उपमा के अन्तर्गत पृष्ठ २६५ पर ओर पढ़ें—

(xiv)	भक्त-उपासक सहनशील होता है। किसी तरह की गई हिंसा को अपना कर्मभोग समझकर हिंसक के प्रति कोई द्वेष या बदले की भावना नहीं रखता।	जैसे जल पर डण्डा मारने से उस पर लकीर या निशान नहीं पड़ता।

देव दयानन्द जी को जगन्नाथ ने ज़हर दी और उसके बदले में उन्होंने उसे क्षमा करते हुए धन दे दिया कि भाग जाओ, वरना मारे जाओगे।

पर यह ऋषियों का धर्म होता है।

(xv)	उपासक के पास आकर सन्तप्त शांत हो जाते हैं।	जैसे बर्फ के समीप पहुंचकर ठंडक मिलती है।
(xvi)	उपासक तप की अग्नि से शरीर रहित मुक्त-आत्मा हो, परमात्मा में लीन हो जाता है।	जैसे जल अग्नि के वेग से भाप बनकर आकाश में व्याप्त हो जाता है।

अब हमने जान लिया कि जल के तीनों रूप (बर्फ, जल और भाप) के गुण उपासक में होने चाहिएं। इसलिए भक्त का देवता-जल कहा है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्ध्या के आरम्भ में जल के तीन आचमन के सम्बन्ध में पृष्ठ २३६ पर लिखा है कि इनसे

"तीन आचमन का प्रयोग शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शान्ति की प्रार्थना को संजीव करने का भाव है।"

अब इसके साथ दूसरा महत्त्व यह जोड़ लें कि पहले आचमनके साथ यह भावना हो कि हमने बर्फ समान आन्तरिक शांति को स्थिर करना है। दूसरे से जल के गुणों को आचरण में लाना है। तीसरे से तपोमय जीवन बनाकर परमातम साक्षात करना है।

तीन आचमनों से तीसरी भावना यह रखें कि हम गुनों से ज्ञानी, याजक (कर्मकाण्डी), भक्त (उपासक) अर्थात् ऋग्वेदी, यजुर्वेदी और सामवेदी बनें।

जल के हर आचमन के बाद पवित्र 'ओ३म्' का उच्चारण करें जिस का यह अर्थ है कि हम परमात्मा से यह याचना करते हैं कि प्रभु देव आपकी कृपा से हमारी हार्दिक मौन भावनाएँ साकार हों।

पृष्ठ २९३ पर दर्शाया है कि शब्द की आत्मा उसका **भाव** होता है इस का महत्त्व इतना है कि जैसे एक कौड़ी के कागज़ पर सरकारी भावना की मोहर छपने से वे एक हज़ार रुपये का नोट बन जाता है। ऐसे ही हमारी यह जल-गुण धारणा करने का दृढ़ संकल्प और श्रद्धामयी **भावना** हम पतन को रतन कर देगी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वन्दनीय स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती ने इस पुस्तक की समालोचना के दूसरे पैरे में यह लिखा है कि:—

"पुस्तक के कई स्थलों पर लिखी बातों से हमारा लेखक से सहमत होना कठिन है।"

उन्होंने तीन उदाहरण दिए हैं जिनमें से एक महात्मा प्रभु आश्रित जी की पुस्तक में से जो उनके शब्द गायत्री मंत्र सम्बन्धी मैंने पुस्तक के पृष्ठ १४ पर उद्धृत किये हैं उसके सम्बन्ध में है।

दूसरा मनुस्मृति के एक श्लोक २/७९ के बारे में कि वे प्रक्षिप्त है, जिसके अर्थ मैंने पृष्ठ ११ पर दिए हैं।

क्योंकि मुझे अपने विचारों से समाधान तथा उनका समर्थन करना है, अब पुस्तक जिल्द हो चुकी है। इसलिए यह दोनों आलोचना और अपना उत्तर 'वरेण्यम्' के तीसरे भाग में विस्तार से दूंगा जो अगले साल १९८८ में प्रकाशित हो सकेगी क्योंकि समय की पुकार ने मुझे उत्तेजित तथा कर्तव्यबद्ध किया है कि एक पुस्तक अंग्रेजी में "**Challenge**" (To union of India) के नाम से प्रकाशित की जाए, जिसमें शास्त्रों के प्रमाणों से सिद्ध किया जाए कि हमारे देश में इस वक्त विनाश के सारे चिन्ह दृष्टिगोचर हो रहे हैं, जिसकी जननी अदालतों में सर्वथा सत्य और न्याय का लोप होना है।

विद्वानों से मेरा नम्र निवेदन है कि इस राष्ट्रीय यज्ञ कार्य के लिए इसकी पुष्टि में सम्बन्धित वेद आदि मंत्रों से अवगत करायें। उनका आभार उस पुस्तक में प्रगट कर दिया जाएगा। राष्ट्र-भृत अग्निहोत्र-यज्ञ जो करवा रहे हैं उनसे विशेष मेरा यह अनुरोध है। उस पुस्तक के द्वारा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र हित यज्ञों से कई गुना अधिक लाभ होगा, प्यारे प्रभु की कृपा से मुझे ऐसा विश्वास है।

तीसरी बात पूज्य स्वामी जी ने यह लिखी है जिसके लिए मैं उनका अतिशय धन्यवाद करता हूं।

"पृष्ठ २०१ पर आदिशंकर का जन्म काल सन् ७८८ लिखा है यह तारीख पाश्चात्य विद्वानों द्वारा निर्धारित की गई है। भारतीय परम्परा और शंकराचार्य द्वारा स्थापित मठों में सुरक्षित सामग्री के आधार पर शंकर की जन्म तिथि ईसा से पूर्व ५०६ बनती है। ऐसी ही बात स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखी है।"

मैंने इनका जीवन काल इन दो पुस्तकों से लिया था—

(१) **Saints and sages of India by prof Pritam Sing M. A. page 39.**

(२) "**श्री शंकराचार्य**" लेखक के० वी० रामकृष्ण राय। जिसके पृष्ठ ८ पर यह लिखा है।

"विद्वानों के अनुसार श्री शंकराचार्य का काल खंड सन् ७८८ से ८२० वर्ष का रहा।"

इसलिए अब श्री शंकराचार्य जी का जीवन काल ५०६ से ४७७ ई० पूर्व कृपया ठीक कर लें।

ऐसे ही जो सज्जन मुझे इस पुस्तक के विषय में अपने विचार तथा साधना सम्वन्धी अनुभव लिख देंगे तो उनको अपनी अगली पुस्तक में धन्यवाद सहित प्रकाशित कर दूंगा।

—साधक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशुद्धि पत्रम्

पृ. सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	अन्तिम	उनका	उनकी
५	५	प्रम	प्रेम
१६	३	,,	१०-३५
१७	२	अभ्नवेश	अभिनिवेश
२०	नोट (२)	लिए है	दिए हैं
२१	१५	मल	मूल
२२	१०	धारण	धारणा
३१	१७	उसके	उसकी
३५	१२	वालो को	वाला का
४४	७	कर देता	करता
५४	१४	शिक्षा	भिक्षा
५५	११	रहस्यों	रहस्य
५६	१४	प्रार्थना	उपासना
६३	२२	दश	दर्शा
७५	१२	है	हूँ
	२०	'न'	ना
८१	अन्तिम	जर्म	जुर्म
८७	१७	द्वष	द्वेष
९६	१	यथाथ	यथार्थ
	२२	तब उसके	अपने
११३	७	वेश	देश
११५	६	त	तू
१३०	१५	द्धि	बुद्धि
१५५	६	बैठकर नहीं	बैठकर भी कर सकते हैं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५६	१०	लगा जाता	लगाता
१६८	६	रोग से	से
	२०	ययाति	जैसे ययाति को
२०६	१०	लौबारे	चौबारे
२२४	३	अन्त में	द्वितीय भाग में
२३४	३	सुरीला	सुरीली
२५०	१०	१६०-५	१-१६०-५
२६४	अन्तिम	ढाढस	सान्तवना
२७७	६	निराश	निराश हो
	१०	मुख ही	मुख
२८२	५	आत्मा	जिसमें आत्मा
	१७	जब	ऐसे ही जब
३०२	२१	नहीं रहा	नहीं वो रहा
३१२	अन्तिम	(नोट) वाका	वाला
३१६	२०	आपके	आपकी
३३२	२	ज्योति जगा	जोत जला
३४६	४	यज्ञ-हैं	यज्ञ-योग है
३५०	अन्तिम	सत्य, ज्ञान	सत्य-ज्ञान
३५७	६	याजन	यजन
३५८	१	आते	आता
		इसलिए	इसलिए कि
३६०	१७	इसमें	हममें
३६४	३	पथ पर	परस्पर

पृष्ठ ३६२ पर तीसरी लाईन में हम के बाद और प्रकृति से पहले यह शब्द लिख लें—

'ज्ञानपूर्वक कर्म और'

Entered in Database
Signature with Date

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar